स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

B.Ed. E- 08

Knowledge and Curriculum - I

(ज्ञान और पाठ्यचर्या–I)

शान्तिपुरम् (सेक्टर–एफ), फाफामऊ, प्रयागराज – 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर– 1800–120–111–333

कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

संदेश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेन्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। वर्तमान परिस्थितियों ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जिसके कारण मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो चुकी है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में जागरूकता में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चियन की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ाया गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

"गुरुकुल से छात्रकुल" के सूक्त वाक्य को आत्मसात करते हुए विश्वविद्यालय ने शिक्षार्थियों को विश्वविद्यालय द्वारा तैयार किये गये गुणवत्तापूर्ण स्वअध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने के साथ-साथ विश्वविद्यालय की वेबसाइट पर भी उपलब्ध कराया गया है। छात्रहित को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों द्वारा तैयार व्याख्यान को भी ऑनलाईन उपलब्ध कराया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, वेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी हैं।

प्रो0 सत्यकाम
कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

B.Ed. E- 08
Knowledge and Curriculum - I
(ज्ञान और पाठ्यचर्या–I)

खण्ड – 01 : ज्ञान की समझ 3–42

इकाई 1 : ज्ञान– संकल्पना, स्वरूप और प्रकार 5

इकाई 2 : ज्ञान के स्रोत 19

इकाई 3 : ज्ञान प्राप्त करने की विधियाँ 31

खण्ड – 02 : ज्ञान का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य 43–80

इकाई 4 : तत्वमीमांसा : अर्थ, अवधारणाएँ और शिक्षा में इसके शैक्षिक निहितार्थ 45

इकाई 5 : ज्ञान मीमांसा : अर्थ, अवधारणाएँ और शिक्षा में इसके शैक्षिक निहितार्थ 53

इकाई 6 : मूल्यमीमांसा : अर्थ, अवधारणाएँ और शिक्षा में इसके शैक्षिक निहितार्थ 68

खण्ड – 03 : ज्ञान का निर्माण 81–110

इकाई 7 : ज्ञान का प्रतिमान परिवर्तन 85

इकाई 8 : ज्ञान एवं शिक्षणशास्त्र : रचनावाद, वैकल्पिक और मिश्रित 96

इकाई 9 : ज्ञान की निर्माण प्रक्रिया 107

खण्ड – 04 : शिक्षा और ज्ञान 111–143

इकाई 10 : शिक्षा के चार स्तंभ (डेलर्स आयोग रिपोर्ट) 116

इकाई 11 : शिक्षा का भविष्य विज्ञान 124

इकाई 12 : ज्ञान के निर्माता 135

खण्ड – 05 : ज्ञान और शक्ति 144–192

इकाई 13 : ज्ञान का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य 149

इकाई 14 : पाठ्यक्रम में विभिन्न सामाजिक समूहों के ज्ञान का समावेशन एवं बहिष्करण 165

इकाई 15 : विविधताएँ दूर करने में शिक्षा की भूमिका 189

B.Ed. E- 08
Knowledge and Curriculum - I
(ज्ञान और पाठ्यचर्या–I)

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो. सत्यकाम — **कुलपति**
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

प्रो. पी.के. स्टालिन	निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. पी.के. पाण्डेय	प्रोफेसर, शिक्षा विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. छत्रपाल सिंह	प्रोफेसर, शिक्षा विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. के.एस. मिश्रा	पूर्व कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. धनन्जय यादव	विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो. मीनाक्षी सिंह	आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
डा. जी.के. द्विवेदी	सह आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. दिनेश सिंह	सह आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ. सुरेन्द्र कुमार	सहायक आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ० दिनेश सिंह	सह आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई–1, 2, 3)
डॉ० श्रवण कुमार	सहायक आचार्य, शिक्षक शिक्षा विभाग, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई– 4, 5, 6)
डॉ० सरोज यादव	सह आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई– 7, 8, 9)
डॉ० के० के० त्रिपाठी	सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजॉल, मिजोरम (इकाई–10)
डॉ० पुष्पेन्द्र कुमार वर्मा	सहायक आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज (इकाई–11, 12)
डॉ० ऐश्यवर्या सिंह	सहायक आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग, नवयुग कन्या डिग्री कॉलेज, लखनऊ (इकाई– 13, 14, 15)

सम्पादक

डॉ. जी.के. द्विवेदी	सह आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

परिमापक

प्रो. पी.के. स्टालिन	निदेशक, शिक्षा विद्याशाखा उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार	सहायक आचार्य, शिक्षा विद्याशाखा उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक

2024 (मुद्रित)

© उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

ISBN : 978-93-48270-54-2

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन : उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक : कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार, उ0प्र0 राजर्षि टण्डन विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 211021

मुद्रक : चंद्रकला यूनिवर्सल प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज– 211006

खण्ड– 01 : ज्ञान की समझ

खण्ड परिचय

शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञान प्राप्त करना तथा ज्ञान की समझ विकसित करना एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। प्रस्तुत खंड 'ज्ञान की समझ' में ज्ञान की संकल्पना, स्वरूप और प्रकार, ज्ञान के स्रोत तथा ज्ञान प्राप्त करने की विधियों का अध्ययन किया जा रहा है। इस खण्ड में ज्ञान– संकल्पना, ज्ञान के स्त्रोत तथा ज्ञान प्राप्त करने की विधियों आदि की चर्चा की गयी है।

इकाई 01 में ज्ञान के अर्थ और संकल्पना पर प्रकाश डाला गया है। ज्ञान का विश्वास, सूचना, बुद्धि तथा कौशल के साथ संबंध तथा अंतर का स्पष्टीकरण किया गया है। इसके साथ ही साथ ज्ञान के स्वरूप, ज्ञान की विशेषताओं एवं ज्ञान के विभिन्न प्रकारों को समझने का प्रयास किया गया है। ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है और यह हमें नई चुनौतियों का सामना करने तथा नई सम्भावनाओं की खोज करने के लिए प्रेरित करती है।

इकाई 02 में ज्ञान प्राप्त करने के विभिन्न स्रोत जैसे इंद्रिय अनुभव, साक्ष्य, तर्क बुद्धि तथा अंतः प्रज्ञा आदि की विस्तार पूर्वक चर्चा की गई है। इंद्रियों के अंतर्गत दृष्टि, श्रवण, स्पर्श, स्वाद व गंध इंद्रियों के माध्यम से ज्ञान प्राप्ति के स्रोत बताए गए हैं। साक्ष्य या प्रमाण को किसी भी दावे, विश्वास या सिद्धांत को सत्यापित करने के लिए प्रस्तुत की जाने वाली जानकारी के रूप में बताया गया है। तर्क बुद्धि विश्लेषण व तर्क के माध्यम से नई जानकारी और समझ विकसित करती है। अंतः प्रज्ञा ज्ञान प्राप्ति का एक विशेष स्रोत है जो तर्क और अनुभव से परे तत्काल समझ और अनुभव पर आधारित होता है।

इकाई 03 में ज्ञान प्राप्त करने की विभिन्न विधियों पर प्रकाश डाला गया है, जिससे हम ज्ञान प्राप्ति हेतु इन विधियों को अपना कर लाभ उठा सकें। ज्ञान प्राप्ति की विभिन्न विधियों के अंतर्गत विश्लेषणात्मक दर्शन, वैज्ञानिक विधि तथा द्वंद्वात्मक पद्धति आदि के आधार पर ज्ञान प्राप्त करने के तरीकों को बताया गया है।

इकाई– 1 : ज्ञान – संकल्पना, स्वरूप और प्रकार

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 इकाई के उद्देश्य

1.3 ज्ञान का अर्थ और संकल्पना

- 1.3.1 ज्ञान की परिभाषा
- 1.3.2 ज्ञान का दर्शन

1.4 ज्ञान, विश्वास, सूचना, बुद्धि और कौशल के मध्य अंतर तथा सम्बन्ध

- 1.4.1 ज्ञान और विश्वास
- 1.4.2 ज्ञान और सूचना
- 1.4.3 ज्ञान और बुद्धि
- 1.4.4 ज्ञान और कौशल

1.5 ज्ञान का स्वरूप, महत्व और विशेषताएँ

- 1.5.1 ज्ञान का स्वरूप
- 1.5.2 ज्ञान की विशेशताएँ
- 1.5.3 ज्ञान का महत्व

1.6 ज्ञान के प्रकार

1.7 सारांश

1.8 अभ्यास के प्रश्न

1.9 चर्चा के बिंदु

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

ज्ञान किसी व्यक्ति की सूचना, तथ्य और सच्चाई की समझ और जागरूकता को संदर्भित करता है, जो अनुभव, शिक्षा और अवलोकन के माध्यम से प्राप्त होता है। यह केवल सूचनाओं का संग्रह नहीं होता बल्कि इसका उपयोग करने की समझ भी शामिल होती है। ज्ञान हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करता है। यह व्यक्तिगत विकास, वैज्ञानिक उन्नति, सामाजिक सामंजस्य और आध्यात्मिक उन्नति का मार्गदर्शक होता है। ज्ञान का सही उपयोग हमारे समाज और दुनिया को बेहतर बनाने में मदद कर सकता है। ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है और यह हमें नई चुनौतियों का सामना करने और नई संभावनाओं का अन्वेषण करने के लिए प्रेरित करता है।। ज्ञान सूचना से तब विकसित होता है जब इसे अनुभव, विश्लेषण और समझ के माध्यम से प्रसंस्कृत किया जाता है। ज्ञान समृद्ध और उपयोगी होता है क्योंकि यह न केवल सूचना पर निर्भर करता है बल्कि इसे सही संदर्भ में लागू करने की क्षमता भी प्रदान करता है।

1.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

1. ज्ञान की संकल्पना और अर्थ को बता सकेंगे।
2. ज्ञान, सूचना, बुद्धि आदि के साथ संबंध और अंतर को बता सकेंगे।
3. ज्ञान के स्वरूप और विशेषताओं के बारे में बता सकेंगे।
4. ज्ञान के महत्व की विवेचना कर सकेंगे।
5. ज्ञान के विभिन्न प्रकारों में अंतर कर सकेंगे।
6. ज्ञान के विभिन्न प्रकारों को दैनिक जीवन में उपयोग कर सकेंगे।

1.3 ज्ञान का अर्थ और संकल्पना

ज्ञान शब्द का मूल संस्कृत से लिया गया है, जिसका अर्थ है "जानना" या "समझना"। यह एक व्यापक और गहन अवधारणा है, जो कई स्तरों और पहलुओं को समेटे हुए है। ज्ञान को कई दृष्टिकोणों से समझा जा सकता है, जैसे कि व्यक्तिगत, सामाजिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक। ज्ञान का तात्पर्य उन तथ्यों, जानकारी और कौशल से है, जिन्हें व्यक्ति अनुभव, शिक्षा या प्रशिक्षण के माध्यम से प्राप्त करता है। यह समझ, तर्क और विश्लेषण की क्षमता को भी शामिल करता है। ज्ञान की संकल्पना एक जटिल और बहुआयामी अवधारणा है जो मानव समझ, अनुभव और चेतना के विभिन्न पहलुओं को समेटे हुए है। यह संकल्पना न केवल जानकारी के संग्रह को दर्शाती है, बल्कि इसे सही संदर्भ में उपयोग करने की क्षमता और बुद्धिमत्ता को भी सम्मिलित करती है। ज्ञान की संकल्पना मानवता की बौद्धिक और सांस्कृतिक यात्रा का महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह न केवल व्यक्ति को जीवन में सफल होने में मदद करता है, बल्कि समाज और दुनिया को बेहतर बनाने में भी योगदान देता है। ज्ञान की खोज और प्रसार की प्रक्रिया अनवरत चलती रहती है और यह मानव जीवन के हर पहलू को समृद्ध बनाती है।

1.3.1 ज्ञान की परिभाषा

दार्शनिक दृष्टिकोण से ज्ञान को आमतौर पर "यथार्थपूर्ण सत्य और तर्कसंगत विश्वास" के रूप में परिभाषित किया जाता है। यह परिभाषा "Justified True Belief' पर आधारित है और यह तीन प्रमुख तत्वों पर निर्भर करती है–

- विश्वास (Belief) ज्ञान के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति किसी चीज़ पर विश्वास करता हो।
- सत्य (Truth) जिस वस्तु या तथ्य पर विश्वास किया जा रहा है, वह सत्य होना चाहिए।
- यथार्थता (Justification) व्यक्ति के पास अपने विश्वास के समर्थन में ठोस प्रमाण या तर्क होने चाहिए।

पंचशिख के अनुसार – ''एक ही दर्शन है, ख्याति ही दर्शन है और ख्याति का अर्थ ज्ञान है।'' इस प्रकार सांख्य दार्शनिक पंचशिख ने ज्ञान को ख्याति के रूप में परिभाषित किया है।

भाट्टमीमांसकों के अनुसार – ''ज्ञान आत्मा का धर्म है।''

एस0 पी0 गुप्ता के अनुसार – ''ज्ञान वास्तव में एक छतरीनुमा व्यापक शब्द है जिसमें अनेक शब्द समाये रहते हैं। तथ्य, स्वयं सिद्धि, अन्तर्सम्बन्ध, सिद्धान्त, नियम, अभिधारणा, विश्वास, प्रक्रिया, व्याख्या, अनुप्रयोग तथा भविश्यवाणी जैसे शब्द किसी न किसी रूप में ज्ञान को इंगित करते हैं।''

ज्ञान किसी विषय या क्षेत्र की गहरी और व्यवस्थित समझ है। सामान्तः ज्ञान का प्रयोग समझ, संज्ञान, बुद्धि, व्यवहार, उपलब्धि, स्मृति आदि के रूप में किया जाता है। यह तथ्यों, सिद्धांतों, अवधारणाओं और अनुभवों का संयोजन होता है, जिसे व्यक्ति ने आत्मसात कर लिया है। वास्तव में ज्ञान किसी व्यक्ति की सूचना, तथ्य

और सच्चाई की समझ और जागरूकता को संदर्भित करता है, जो अनुभव, शिक्षा और अवलोकन के माध्यम से प्राप्त होता है। यह केवल सूचनाओं का संग्रह नहीं होता, बल्कि इसमें उपयोग करने की समझ भी शामिल होती है।

1.3.2 ज्ञान का दर्शन

ज्ञान को जितना अधिक हम समझते हैं, उतना ही अधिक हम अपनी और अपने समाज की क्षमता को पहचान सकते हैं और इसका प्रभावी उपयोग कर सकते हैं। ज्ञान के दार्शनिक अर्थ का अध्ययन ज्ञानमीमांसा (Epistemology) की शाखा के अंतर्गत आता है, जो यह विश्लेषण करती है कि ज्ञान क्या है, इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है, और इसकी सीमाएँ क्या हैं। दार्शनिक दृष्टिकोण से ज्ञान की परिभाषा, स्रोत, सत्यता, और मूल्य के अनेक पहलू होते हैं। ज्ञान के दार्शनिक अर्थ में इसकी गहनता, विविधता और जटिलता का व्यापक अध्ययन शामिल है। यह अध्ययन मानवता को न केवल भौतिक विश्व की समझ प्रदान करता है, बल्कि हमारे अस्तित्व, नैतिकता और सामाजिक संबंधों के मूलभूत प्रश्नों का भी उत्तर देता है। दार्शनिक दृष्टिकोण से ज्ञान की खोज और समझ निरंतर चलती रहती है, जो हमें जीवन के हर पहलू में गहराई से विचार करने और नई संभावनाओं को खोजने के लिए प्रेरित करती है। ज्ञान की यह गहरी समझ हमें जीवन में अधिक समझदारी और संवेदनशीलता के साथ कार्य करने की क्षमता प्रदान करती है, जो समाज और मानवता के समग्र विकास में योगदान देती है। यहां हम ज्ञान के दार्शनिक अर्थ का विस्तृत वर्णन करेंगे। ज्ञान के दर्शन को हम निम्नलिखित आधार पर समझ सकते हैं–

ज्ञानमीमांसा (Epistemology) – यह दर्शनशास्त्र की एक शाखा है, जो ज्ञान की प्रकृति, स्रोत और सीमाओं का अध्ययन करती है। यह प्रश्न उठाती है कि हम कैसे जानते हैं और हम क्या जानते हैं?

सापेक्षतावाद (Relativism) – सापेक्षतावाद का सिद्धांत कहता है कि ज्ञान का कोई निश्चित या सार्वभौमिक सत्य नहीं होता। यह संदर्भ और दृष्टिकोण के आधार पर बदलता रहता है।

नियतिवाद (Determinism) – नियतिवाद के अनुसार, सभी घटनाएँ और परिणाम पूर्व निर्धारित होते हैं, और ज्ञान का उद्देश्य इन निर्धारित कारकों की पहचान करना है।

आशावाद (Optimism) – आशावाद का मानना है कि ज्ञान और समझ के माध्यम से मानवता सभी चुनौतियों और समस्याओं का समाधान कर सकती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. ज्ञान से क्या तात्पर्य है?

_____

_____

2. ज्ञान के प्रमुख तत्व कौन से हैं?

_____

_____

3. ज्ञान मीमांसा से आप क्या समझते हैं?

_____

_____

1.4 ज्ञान, विश्वास, सूचना, बुद्धि और कौशल के मध्य अंतर तथा सम्बन्ध

ज्ञान, विश्वास, सूचना, बुद्धि और कौशल का सामान्यतया एक ही अर्थ समझा जाता है। यदि हम ज्ञान, विश्वास, सूचना, बुद्धि और कौशल का गहनता पूर्वक अध्ययन करें तथा इनकी प्रकृति, स्वरूप तथा विशेषताओं के आधार पर इनका विश्लेषण करें तो ज्ञान का विश्वास, सूचना, बुद्धि और कौशल से अन्तर स्पष्ट हो जायेगा। आइये ज्ञान तथा विश्वास, सूचना, बुद्धि और कौशल के मध्य के अन्तर तथा सम्बन्ध को जानते हैं।

1.4.1 ज्ञान और विश्वास

ज्ञान का अर्थ है किसी वस्तु या तथ्य की सटीक और तर्कसंगत समझ जबकि विश्वास का अर्थ है किसी वस्तु या तथ्य पर बिना प्रमाण के विश्वास करना। ज्ञान को सत्यापन और तर्क की आवश्यकता होती है, जबकि विश्वास तर्क और प्रमाण की अनुपस्थिति में भी अस्तित्व में हो सकता है।

किसी व्यक्ति की सूचना, तथ्य, और सच्चाई की समझ और जागरूकता को संदर्भित करता है, जो अनुभव, शिक्षा, और अवलोकन के माध्यम से प्राप्त होती है। यह केवल सूचनाओं का संग्रह नहीं होता, बल्कि इसका उपयोग करने की समझ भी शामिल होती है।

1.4.2 ज्ञान और सूचना

ज्ञान और सूचना के बीच अंतर को समझना महत्वपूर्ण है क्योंकि दोनों का उपयोग अक्सर समानार्थी के रूप में किया जाता है, लेकिन वे वास्तव में अलग–अलग अवधारणाएँ हैं। आइए दोनों के बीच के अंतर को विस्तार से समझते हैं।

ज्ञान एक संगठित और संरचित रूप में होता है। यह अनुभव और समझ पर आधारित होता है जो अनुभव, शिक्षा, और अभ्यास से प्राप्त होता है। इसमें जानकारी के साथ–साथ व्याख्या और मूल्यांकन भी शामिल रहता है। ज्ञान को अक्सर संदर्भ में देखा जाता है और इसे समझने के लिए परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता होती है। इसका उपयोग समस्या समाधान, निर्णय लेने, और नए विचारों और नवाचारों को विकसित करने में किया जाता है। यह तर्कसंगत सोच और समझ को बढ़ावा देता है। जैसे – गणित के नियम, किसी भाषा की समझ, चिकित्सा विज्ञान में विशेषज्ञता आदि।

सूचना ऐसे तथ्य और आँकड़े हैं जो प्रसंस्कृत, व्यवस्थित, और विश्लेषण किए गए होते हैं, ताकि उनका अर्थपूर्ण उपयोग किया जा सके। यह डाटा का संग्रह होता है जिसे विश्लेषण और प्रसंस्करण के बाद संदर्भ के लिए उपयोग किया जा सकता है। सूचना (Information) की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

असंसाधित और असंरचित–: सूचना अक्सर कच्ची और असंरचित होती है, जिसमें अकेले कोई अर्थ नहीं होता।

डाटा पर आधारित–: सूचना आँकड़ों और तथ्यों का संग्रह होती है। यह संदर्भ और व्याख्या के बिना होती है।

स्थायी नहों–: सूचना का महत्व और प्रासंगिकता समय के साथ बदल सकता है।

संप्रषणीय–: सूचना को दूसरों के साथ साझा किया जा सकता है और इसे विभिन्न माध्यमों से संप्रेषित किया जा सकता है।

उदाहरण–: आँकड़े, रिपोर्ट, लेख, ग्राफ, रैंकिंग।

उद्देश्य–: सूचना का उपयोग लोगों को सूचित करने, जानकारी प्रदान करने और संचार की सुविधा के लिए किया जाता है। यह निर्णय लेने की प्रक्रिया में सहायता करती है लेकिन स्वयं निर्णय लेने में सक्षम नहीं होती।

ज्ञान और सूचना के बीच का अंतर

विशेषता	ज्ञान	सूचना
परिभाषा	अनुभव और शिक्षा के माध्यम से प्राप्त गहरी समझ	तथ्य और आँकड़ों का संग्रह
प्रकृति	गतिशील और व्याख्यात्मक	स्थिर और संरचित
आधार	अनुभव, प्रशिक्षण, और अभ्यास से उत्पन्न	डाटा और तथ्यों से प्राप्त
उपयोग	निर्णय लेने, समस्या हल करने, और नवाचार में	संचार, जानकारी प्रदान करने, और संदर्भ के लिए
संदर्भ	संदर्भ के साथ स्पष्ट और प्रासंगिक	संदर्भ के बिना अर्थहीन
उदाहरण	भाषा की समझ, विज्ञान में विशेषज्ञता, कला में निपुणता	सांख्यिकी रिपोर्ट, न्यूज़ आर्टिकल, ग्राफ़िक डाटा

ज्ञान और सूचना का सम्बन्ध

ज्ञान और सूचना के बीच का अंतर यह है कि सूचना केवल तथ्य और आँकड़ों का संग्रह होती है, जबकि ज्ञान इस सूचना को समझने और इसका अर्थ निकालने की क्षमता होती है। ज्ञान सूचना से विकसित होता है, जब इसे अनुभव, विश्लेषण, और समझ के माध्यम से प्रसंस्कृत किया जाता है। इस प्रकार, ज्ञान अधिक समृद्ध और उपयोगी होता है क्योंकि यह न केवल सूचना पर निर्भर करता है, बल्कि इसे सही संदर्भ में लागू करने की क्षमता भी प्रदान करता है। ज्ञान का उद्देश्य उन निर्णयों और कार्यों को प्रभावित करना है जो व्यक्ति या समाज के लिए फायदेमंद हो सकते हैं, जबकि सूचना का उद्देश्य लोगों को जानकारी देना और उनकी समझ को बढ़ाना है।

1.4.3 ज्ञान और बुद्धि

ज्ञान और बुद्धि के बीच का अंतर समझना महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये दोनों अवधारणाएँ अक्सर एक–दूसरे के स्थान पर उपयोग की जाती हैं, लेकिन वे अलग–अलग विशेषताएँ और भूमिकाएँ निभाते हैं। यहाँ हम इन दोनों के बीच के अंतर को विस्तार से समझते हैं ।

ज्ञान वह जानकारी, तथ्य, और सिद्धांत है जो व्यक्ति ने अनुभव, शिक्षा, या अध्ययन के माध्यम से सीखा और समझा है। यह विशेष रूप से किसी विषय के बारे में अर्जित जानकारी है। ज्ञान का उद्देश्य किसी विषय या क्षेत्र की समझ को बढ़ाना और इसे विभिन्न परिस्थितियों में लागू करना है। यह व्यक्ति को निर्णय लेने और समस्याओं को हल करने में मदद करता है। बुद्धि मानसिक क्षमता है जो व्यक्ति को समस्याओं को हल करने, विचारों का विश्लेषण करने, तर्क करने और नई स्थितियों के अनुकूल होने की क्षमता प्रदान करती है। यह व्यक्ति की संज्ञानात्मक और मानसिक प्रक्रियाओं का समग्र प्रतिनिधित्व है। बुद्धि की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

संज्ञानात्मक क्षमता – बुद्धि तर्क, विश्लेषण, और समस्या–समाधान की क्षमता से संबंधित है।

अनुकूलन क्षमता – यह नई परिस्थितियों के अनुकूल होने और नवीन समाधान खोजने की क्षमता को दर्शाती है।

सृजनात्मकता – बुद्धि में रचनात्मक सोच और नवीन विचार उत्पन्न करने की क्षमता शामिल होती है।

सीखने की क्षमता – यह व्यक्ति की सीखने और नई जानकारी को आत्मसात करने की क्षमता का माप होती है।

उदाहरण – "एक जटिल पहेली को हल करना", "सामाजिक स्थितियों को समझना और उचित प्रतिक्रिया देना।"

उद्देश्य – बुद्धि का उद्देश्य व्यक्ति को तर्कसंगत रूप से सोचने, समस्याओं का समाधान करने, और निर्णय लेने में सक्षम बनाना है। यह जीवन के विभिन्न पहलुओं में व्यक्तिगत विकास और अनुकूलन क्षमता को बढ़ाता है।

ज्ञान और बुद्धि के बीच का अंतर

विशेषता	ज्ञान	बुद्धि
परिभाषा	जानकारी और तथ्यों का संग्रह	मानसिक क्षमता और संज्ञानात्मक प्रक्रियाए
प्रकृति	स्थिर और संरचित	गतिशील और अनुकूलनीय
उपयोग	निर्णय लेने और विषय–विशेष की समझ	समस्या–समाधान और तर्कसंगत विचार
मूल तत्व	तथ्य, जानकारी, और अनुभव	तर्क, विश्लेषण, और रचनात्मकता
अनुकूलन क्षमता	प्रासंगिक जानकारी को लागू करना	नई स्थितियों में अनुकूलन और रचनात्मक समाधान
उदाहरण	भौतिकी के नियम, ऐतिहासिक तथ्य	एक जटिल गणितीय समस्या को हल करना

ज्ञान और बुद्धि का सम्बन्ध

ज्ञान और बुद्धि के बीच का संबंध भी महत्वपूर्ण है। बुद्धि की सहायता से व्यक्ति जानकारी और तथ्यों को समझकर उसे ज्ञान में परिवर्तित करता है। ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति अपनी बुद्धि का विकास करता है और विभिन्न स्थितियों में सही निर्णय लेने की क्षमता को बढ़ाता है। इस प्रकार, दोनों का समन्वय व्यक्ति के संपूर्ण मानसिक और बौद्धिक विकास में योगदान करता है। ज्ञान और बुद्धि दोनों ही व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाते हैं। ज्ञान व्यक्ति को विशेष विषयों की जानकारी और समझ प्रदान करता है, जबकि बुद्धि उसे तर्कसंगत रूप से सोचने, समस्याओं को हल करने, और नई स्थितियों में अनुकूलन करने में सक्षम बनाती है। ज्ञान को बुद्धि के माध्यम से सही ढंग से लागू किया जा सकता है, जिससे जीवन की जटिलताओं का सफलतापूर्वक सामना किया जा सकता है। इस प्रकार, ज्ञान और बुद्धि का सही संतुलन व्यक्ति के जीवन को समृद्ध और सफल बना सकता है।

1.4.4 ज्ञान और कौशल

ज्ञान और कौशल के बीच का अंतर समझना महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये दोनों अवधारणाएँ शिक्षा और व्यक्तिगत विकास में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। ज्ञान किसी विशेष क्षेत्र या विषय की जानकारी को संदर्भित करता है, जबकि कौशल उन क्षमताओं और दक्षताओं को संदर्भित करता है, जो इस जानकारी को व्यवहार में लागू करने में सक्षम बनाती हैं। आइए इन दोनों के बीच के अंतर को विस्तार से समझते हैं।

ज्ञान का अर्थ है जानकारी और तथ्यों का संग्रह, जिसे व्यक्ति ने अनुभव, अध्ययन या शिक्षा के माध्यम से प्राप्त किया है। यह किसी विषय के बारे में गहरी समझ का प्रतिनिधित्व करता है। कौशल वे विशिष्ट क्षमताएँ और दक्षताएँ हैं, जो व्यक्ति को कुछ कार्यों या गतिविधियों को प्रभावी ढंग से और दक्षता के साथ करने में सक्षम बनाती हैं। यह व्यावहारिक और क्रियात्मक क्षमता का प्रतिनिधित्व करता है। की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

व्यावहारिक – कौशल व्यावहारिक और क्रियात्मक होता है, जो व्यक्ति को किसी विशेष कार्य को करने में सक्षम बनाता है।

दक्षता – यह किसी विशेष कार्य या गतिविधि में व्यक्ति की दक्षता और क्षमता को दर्शाता है।

अनुभव पर आधारित – कौशल अभ्यास और अनुभव के माध्यम से विकसित होता है।

उदाहरण – "संगीत वाद्ययंत्र बजाना।", "कंप्यूटर प्रोग्रामिंग।", "अच्छा वक्ता बनना।"

उद्देश्य – कौशल का उद्देश्य किसी विशेष कार्य या गतिविधि को प्रभावी ढंग से करना है, जो कार्यक्षमता और उत्पादकता में सुधार करता है।

ज्ञान और कौशल के बीच का अंतर

विशेषता	ज्ञान	कौशल
परिभाषा	जानकारी और तथ्यों का संग्रह	विशिष्ट कार्य करने की क्षमता
प्रकृति	सैद्धांतिक और अमूर्त	व्यावहारिक और क्रियात्मक
उपयोग	जानकारी और समझ प्रदान करने के लिए	कार्यों और गतिविधियों को प्रभावी ढंग से करने के लिए
आधार	अनुभव, शिक्षा, और अध्ययन	अभ्यास और अनुभव
अनुकूलन क्षमता	नई जानकारी को आत्मसात करने में सक्षम	नई चुनौतियों और परिस्थितियों के लिए कौशल को अनुकूलित करने में सक्षम
उदाहरण	गणित के सिद्धांत, भौतिकी के नियम	खाना बनाना, गाड़ी चलाना, भाषण देना

ज्ञान और कौशल का संबंध

ज्ञान और कौशल के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध है। ज्ञान एक आधार के रूप में कार्य करता है जो कौशल के विकास में मदद करता है। कौशल को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए ज्ञान आवश्यक होता है, जबकि ज्ञान को व्यवहार में लाने के लिए कौशल की आवश्यकता होती है। इस प्रकार, दोनों का संयोजन व्यक्ति की सफलता और दक्षता में योगदान देता है।

1. शिक्षा

ज्ञान : शिक्षा में पाठ्यपुस्तकों और व्याख्यानों के माध्यम से विषय की जानकारी दी जाती है।

कौशल : शिक्षा में प्रयोगशालाओं, कार्यशालाओं, और परियोजनाओं के माध्यम से व्यावहारिक कौशल सिखाए जाते हैं।

2. कार्यस्थल

ज्ञान : किसी विशेष उद्योग या क्षेत्र के बारे में तकनीकी जानकारी।

कौशल : टीम वर्क, संचार कौशल, और समस्या समाधान की क्षमता।

3. व्यक्तिगत विकास

ज्ञान : स्व–विकास के लिए स्वयं सहायता पुस्तकों और सेमिनारों के माध्यम से जानकारी प्राप्त करना।

कौशल : आत्म–विकास के लिए ध्यान, योग, और समय प्रबंधन कौशल का विकास करना।

ज्ञान और कौशल दोनों ही व्यक्ति के विकास और सफलता के लिए आवश्यक हैं। ज्ञान व्यक्ति को समझ और जानकारी प्रदान करता है, जबकि कौशल उसे इस जानकारी को व्यवहार में लागू करने की क्षमता देता

है। दोनों का सही संतुलन व्यक्ति को न केवल व्यक्तिगत बल्कि व्यावसायिक जीवन में भी सफल बनाता है। इस प्रकार, ज्ञान और कौशल का विकास और समन्वय व्यक्ति की संपूर्ण क्षमता को बढ़ावा देता है और उसे जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार करता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

4. ज्ञान और विश्वास में क्या अंतर है ?

_____

_____

5. ज्ञान किस प्रकार सूचना से भिन्न है?

_____

_____

6. ज्ञान और बुद्धि में क्या संबंध है?

_____

_____

7. ज्ञान तथा कौशल के बीच अंतर बताइए।

_____

_____

1.5 ज्ञान का स्वरूप, महत्व और विशेषताएँ

विद्यार्थियों हम लागों ने ज्ञान तथा विश्वास, सूचना, बुद्धि और कौशल के मध्य के अन्तर तथा सम्बन्ध के विषय में अध्ययन किया और जाना समझा। चलिए अब ज्ञान के स्वरूप, ज्ञान के महत्व व विशेषताओं को जानते हैं।

1.5.1 ज्ञान का स्वरूप

ज्ञान का स्वरूप एक जटिल और विविध अवधारणा है जो समय, संस्कृति, और व्यक्तिगत अनुभवों के माध्यम से विकसित हुई है। ज्ञान का स्वरूप एक गहन और व्यापक अवधारणा है जो मानवता के समग्र विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ज्ञान क्या है? इसका स्वरूप कैसा है? इसे जानना व स्पष्ट करना अत्यन्त ही दुरूह कार्य है। भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिकों ने ज्ञान शब्द के अलग अलग अर्थ बतायें हैं तथा ज्ञान को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। यह न केवल व्यक्तिगत विकास को प्रोत्साहित करता है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में भी योगदान देता है। ज्ञान की प्रकृति और इसकी सीमाएँ हमें न केवल समझदारी से सोचने के लिए प्रेरित करती हैं, बल्कि यह भी सिखाती हैं कि हमें हमेशा सीखने और समझने के लिए खुले रहना चाहिए। ज्ञान के विभिन्न प्रकार, स्रोत, और विशेषताएँ हमें यह समझने में मदद करती हैं कि हम कैसे और क्यों जानते हैं, जो हमें जीवन की जटिलताओं को समझने और उन्हें प्रभावी ढंग से सामना करने की क्षमता प्रदान करता है।

1.5.2 ज्ञान की विशेषताएँ

ज्ञान की विशेषताएँ उसके स्वरूप, उत्पत्ति, और उपयोग के बारे में गहरी अंतर्दृष्टि प्रदान करती हैं। यह विशेषताएँ इस बात को समझने में मदद करती हैं कि ज्ञान कैसे कार्य करता है, कैसे उसे प्राप्त किया जाता है, और कैसे वह व्यक्ति और समाज के विकास में योगदान देता है। यहाँ ज्ञान की प्रमुख विशेषताओं का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया गया है:

1. **सत्यता (Truthfulness)** – ज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसकी सत्यता है। ज्ञान को सत्य और यथार्थ होना चाहिए ताकि इसे विश्वास और समर्थन प्राप्त हो सके। यदि ज्ञान असत्य या गलत साबित होता है, तो उसे वास्तविक ज्ञान नहीं माना जा सकता। उदाहरण – "पृथ्वी गोल है" एक सत्य ज्ञान है, जबकि "पृथ्वी चपटी है" गलत जानकारी है।

2. **विश्वसनीयता (Reliability)** – ज्ञान को विश्वसनीय और सटीक होना चाहिए। यह व्यक्ति को सही निर्णय लेने और समस्याओं का समाधान करने में सक्षम बनाता है। विश्वसनीय ज्ञान का आधार तर्क, प्रमाण, और अनुभव होते हैं। उदाहरण – वैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर प्राप्त निष्कर्ष, जैसे "पानी 100 डिग्री सेल्सियस पर उबलता है।"

3. **सुसंगतता (Consistency)** – ज्ञान को सुसंगत होना चाहिए, यानी इसके विभिन्न हिस्सों में कोई विरोधाभास नहीं होना चाहिए। एक सुसंगत ज्ञान प्रणाली विचारों और सिद्धांतों के बीच सामंजस्य स्थापित करती है। उदाहरण – भौतिकी के सिद्धांतों का आपस में सुसंगत होना जरूरी है, ताकि वे एक दूसरे के विपरीत न हों।

4. **व्यवस्थितता (Systematic Nature)** – ज्ञान को व्यवस्थित और संरचित होना चाहिए, ताकि इसे आसानी से समझा और उपयोग किया जा सके। व्यवस्थित ज्ञान का अर्थ है कि वह एक तार्किक और सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण –किसी विषय की पाठ्यपुस्तक जो अध्यायों में विभाजित होती है, ताकि पाठक को विषय का क्रमिक और तार्किक ज्ञान प्राप्त हो।

5. **आधारभूतता (Foundational Nature)** – ज्ञान को ठोस आधारों पर आधारित होना चाहिए। यह तर्कसंगत और प्रमाणित तथ्यों पर आधारित होता है, जिससे इसकी वैधता सिद्ध होती है। उदाहरण– गणितीय प्रमेय जिनके प्रमाण होते हैं और जिनका आधार तर्क होता है।

6. **विस्तारशीलता (Expandability)** – ज्ञान गतिशील होता है और यह समय के साथ विकसित और विस्तारित होता रहता है। नई खोजें, विचार, और अनुभव ज्ञान के विस्तार में योगदान देते हैं। उदाहरण – चिकित्सा क्षेत्र में नए–नए शोध और आविष्कार, जो चिकित्सा ज्ञान को लगातार बढ़ाते हैं।

7. **अनुप्रयुक्तता (Applicability)** – ज्ञान को व्यावहारिक रूप से लागू किया जा सकता है, जो इसे मूल्यवान बनाता है। इसका वास्तविक जीवन में प्रयोग उसे अधिक उपयोगी और प्रासंगिक बनाता है। उदाहरण – इंजीनियरिंग के सिद्धांतों का भवन निर्माण में उपयोग।

8. **प्रमाणन (Justification)** – ज्ञान को उचित तर्क और प्रमाण के माध्यम से समर्थन प्राप्त होना चाहिए। बिना प्रमाण के ज्ञान का कोई महत्व नहीं होता। उदाहरण – वैज्ञानिक निष्कर्ष जो प्रयोग और अवलोकन पर आधारित होते हैं।

9. **अनुभवजन्य प्रकृति (Empirical Nature)** – ज्ञान को अक्सर अनुभव और अवलोकन से प्राप्त किया जाता है। अनुभवजन्य ज्ञान को वास्तविक जीवन के अनुभवों और अवलोकनों के माध्यम से परीक्षण और पुष्टि की जाती है। उदाहरण – मौसम के पूर्वानुमान जो मौसम विज्ञान के अनुभव और डेटा पर आधारित होते हैं।

10. **सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भ (Cultural and Social Context)** – ज्ञान का स्वरूप और इसकी प्रासंगिकता सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भ पर निर्भर करती है। ज्ञान को समाज और संस्कृति के माध्यम से प्रभावित और परिभाषित किया जाता है। उदाहरण – विभिन्न समाजों में धार्मिक और नैतिक मान्यताएं जो सांस्कृतिक ज्ञान का हिस्सा होती हैं।

11. **ज्ञान का अंतर्ज्ञान (Intuition in Knowledge)** – कभी–कभी ज्ञान सहज रूप से प्राप्त होता है, जिसे अंतर्ज्ञान के माध्यम से समझा जाता है। यह ज्ञान का अमूर्त पहलू है। उदाहरण – किसी व्यक्ति का किसी समस्या का त्वरित समाधान बिना सोचे–समझे निकाल लेना।

12. **ज्ञान का संदर्भ (Contextual Nature)** – ज्ञान का अर्थ और प्रासंगिकता संदर्भ पर निर्भर करती है। एक संदर्भ में जो ज्ञान मूल्यवान हो सकता है, वह दूसरे संदर्भ में अर्थहीन हो सकता है। उदाहरण – प्राचीन चिकित्सा पद्धतियां, जो अपने समय में उपयोगी थीं, परंतु आधुनिक चिकित्सा संदर्भ में उतनी प्रासंगिक नहीं हो सकतीं।

13. **गतिशीलता (Dynamic Nature)** – ज्ञान समय के साथ बदलता और विकसित होता रहता है। नई खोज और प्रौद्योगिकी के विकास से यह निरंतर परिवर्तित होता रहता है।

14. **सापेक्षता (Relativity)** – ज्ञान का अर्थ और महत्व संदर्भ के अनुसार बदल सकता है। यह सांस्कृतिक, सामाजिक, और व्यक्तिगत दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

15. **संस्कृति–सापेक्षता (Cultural Relativity)** – विभिन्न संस्कृतियों में ज्ञान की धारणाएँ भिन्न हो सकती हैं। जैसे कि भारतीय दर्शन और पश्चिमी दर्शन के ज्ञान के दृष्टिकोण अलग–अलग हो सकते हैं।

1.5.3 ज्ञान का महत्व

1. **नैतिकता और नैतिक निर्णय** – ज्ञान नैतिकता और नैतिक निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जहाँ यह सही और गलत के बीच का अंतर स्पष्ट करता है।

2. **वैज्ञानिक अनुसंधान और खोज** – वैज्ञानिक अनुसंधान और खोज ज्ञान के आधार पर होते हैं, जो नई जानकारी और प्रौद्योगिकी के विकास में योगदान देते हैं।

3. **व्यक्तिगत विकास और शिक्षा** – ज्ञान व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास और शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो उसे आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी बनाता है। यह निर्णय लेने की क्षमता और समस्या समाधान कौशल को बढ़ावा देता है।

4. **सामाजिक विकास** – ज्ञान समाज के विकास और प्रगति का आधार है। यह सामाजिक सुधार, तकनीकी उन्नति और सांस्कृतिक समृद्धि में योगदान देता है।

5. **वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति** – वैज्ञानिक अनुसंधान और तकनीकी विकास ज्ञान पर आधारित होते हैं। यह मानव जीवन को सरल और समृद्ध बनाने में सहायक होता है।

6. **आर्थिक विकास** – ज्ञान अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख घटक है। ज्ञान–आधारित उद्योग और सेवाएँ आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

8. ज्ञान की गतिशीलता से क्या तात्पर्य है?

_____

_____

9. व्यक्तिगत विकास और शिक्षा में ज्ञान किस प्रकार सहायक है?

_____

_____

10. ज्ञान की अनुभवजन्य प्रकृति से आप क्या समझते हैं?

_____

_____

1.6 ज्ञान के प्रकार

ज्ञान को उसके विषय, प्रयोग, प्रकृति, स्वरूप, अधिगम्यता, उपलब्धता, विशेशताओं, उपयोग, संहिताकरण, प्रक्रिया आदि के आधार पर निम्नलिखित प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

तथ्यात्मक ज्ञान (Factual Knowledge) – यह ज्ञान तथ्यों और सूचनाओं से संबंधित है। इसमें इतिहास की तारीखें, वैज्ञानिक तथ्य, और सांख्यिकीय जानकारी शामिल होती है। जैसे– भारत को स्वतंत्रता 1947 में प्राप्त हुई।

प्रक्रियात्मक ज्ञान (Procedural Knowledge) – यह ज्ञान प्रक्रियाओं और तकनीकों के बारे में है। यह किसी कार्य को करने की विधि और कौशल का विवरण देता है। जैसे– साइकिल चलाना, खाना बनाना।

संवेदनात्मक ज्ञान (Sensory Knowledge) – यह ज्ञान व्यक्ति की इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त अनुभवों से संबंधित है। इसे अक्सर अनुभवजन्य ज्ञान के रूप में भी जाना जाता है। उदाहरण : "आइसक्रीम ठंडी और मीठी होती है।"

आधारभूत ज्ञान (Apriori Knowledge) – यह ज्ञान अनुभव से पहले का होता है और केवल तर्क और विश्लेषण के आधार पर प्राप्त होता है। उदाहरण : "सभी त्रिभुजों के तीन भुजाएँ होती हैं।"

संवेदी ज्ञान (Intuitive Knowledge) – यह ज्ञान अंतर्ज्ञान और अंतःप्रज्ञा से प्राप्त होता है। यह बिना किसी तार्किक विश्लेषण के सीधा अनुभव का ज्ञान होता है। उदाहरण : "किसी नए व्यक्ति से मिलकर उसका चरित्र जान लेना।"

संवैधानिक ज्ञान (Propositional Knowledge) – यह ज्ञान उस जानकारी से संबंधित है, जो किसी प्रस्ताव या कथन के रूप में व्यक्त की जा सकती है। उदाहरण : "जल का रासायनिक सूत्र H_2O है।"

प्रायोगिक ज्ञान (Empirical Knowledge) – यह ज्ञान अनुभवजन्य साक्ष्य और अवलोकन पर आधारित होता है। प्रायोगिक या अनुभवजन्य ज्ञान वह ज्ञान है, जिसे अनुभव के माध्यम से सीखा जाता है। यह ज्ञान व्यावहारिक कार्यों, अनुभवों और प्रत्यक्ष अवलोकनों के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। उदाहरण : "जल का उबलने का तापमान 100 डिग्री सेल्सियस होता है।"

व्यावहारिक ज्ञान (Practical Knowledge) – यह ज्ञान किसी विशेष कौशल या गतिविधि को करने की क्षमता से संबंधित होता है। उदाहरण : "संगीत वाद्ययंत्र बजाना।"

व्यक्तिगत ज्ञान (lndividual Knowledge) – व्यक्तिगत ज्ञान से तात्पर्य उस जानकारी और समझ से है, जो एक व्यक्ति अपने अनुभवों, शिक्षाओं और चिंतन के माध्यम से प्राप्त करता है। यह स्वयं की पहचान, क्षमताओं, और व्यक्तिगत विकास के रूप में परिलक्षित होता है।

वैज्ञानिक ज्ञान (Scientfic Knowledge) – यह वस्तुनिष्ठ और तार्किक आधार पर आधारित है, जिसे वैज्ञानिक पद्धतियों के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। यह प्रकृति के नियमों, तकनीकी आविष्कारों और खोजों के माध्यम से दुनिया की समझ को विस्तृत करता है। वैज्ञानिक ज्ञान सत्यापन योग्य और पुनःप्रमाणित होता है।

दार्शनिक ज्ञान (Philosphical Knowledge) – दार्शनिक ज्ञान का संबंध सत्य, नैतिकता, अस्तित्व, और चेतना की गहन समझ से होता है। यह तार्किक विश्लेषण, आलोचनात्मक चिंतन, और बौद्धिक विवाद के माध्यम से प्राप्त होता है। दार्शनिक ज्ञान अस्तित्व के अर्थ और मानव जीवन के मूलभूत प्रश्नों की खोज में मदद करता है।

सांस्कृतिक और सामाजिक ज्ञान (Cultural and Social Knowledge) – यह ज्ञान समाज और संस्कृति के रीति–रिवाजों, परंपराओं, और मूल्य प्रणालियों के माध्यम से प्राप्त होता है। सामाजिक ज्ञान हमें समाज में

सामंजस्यपूर्ण रूप से जीवन जीने, दूसरों के साथ बातचीत करने और सांस्कृतिक विविधता को समझने में मदद करता है।

आध्यात्मिक ज्ञान (Spiritual Knowledge) – आध्यात्मिक ज्ञान आत्मा, ईश्वर, और ब्रह्मांड के साथ संबंध की समझ को दर्शाता है। यह ध्यान, योग, और आध्यात्मिक साधनाओं के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। आध्यात्मिक ज्ञान व्यक्तिगत संतोष, शांति, और आंतरिक संतुलन को बढ़ावा देता है।

प्रौद्योगिकी और सूचना ज्ञान (Technological and Informative Knowledge) – तकनीकी ज्ञान सूचना प्रौद्योगिकी, कंप्यूटर विज्ञान, और डिजिटल मीडिया के माध्यम से प्राप्त होता है। यह आधुनिक युग में महत्वपूर्ण है, जहाँ डेटा और सूचना की भूमिका बढ़ती जा रही है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

11. संवेगात्मक ज्ञान से आप क्या समझते हैं?

_____
_____

12. व्यवहारिक ज्ञान का एक उदाहरण बताइए है?

_____
_____

13. सांस्कृतिक और सामाजिक ज्ञान से क्या तात्पर्य है?

_____
_____

14. आध्यात्मिक ज्ञान क्यों आवश्यक है?

_____
_____

1.7 सारांश

ज्ञान किसी विषय या क्षेत्र की गहरी और व्यवस्थित समझ है। यह तथ्यों, सिद्धांतों, अवधारणाओं, और अनुभवों का संयोजन होता है, जिसे व्यक्ति ने आत्मसात कर लिया है। ज्ञान का उपयोग निर्णय लेने, समस्या हल करने, और नए विचारों और नवाचारों को विकसित करने में किया जाता है। यह तर्कसंगत सोच और समझ को बढ़ावा देता है। ज्ञान और सूचना के बीच का अंतर यह है कि सूचना केवल तथ्य और आँकड़ों का संग्रह होती है, जबकि ज्ञान इस सूचना को समझने और इसका अर्थ निकालने की क्षमता होती है। ज्ञान सूचना से विकसित होता है, जब इसे अनुभव, विश्लेषण, और समझ के माध्यम से प्रसंस्कृत किया जाता है। इस प्रकार, ज्ञान अधिक समृद्ध और उपयोगी होता है क्योंकि यह न केवल सूचना पर निर्भर करता है, बल्कि इसे सही संदर्भ में लागू करने की क्षमता भी प्रदान करता है। ज्ञान और कौशल के बीच एक महत्वपूर्ण संबंध है। ज्ञान एक आधार के रूप में कार्य करता है जो कौशल के विकास में मदद करता है। कौशल को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए ज्ञान आवश्यक होता है, जबकि ज्ञान को व्यवहार में लाने के लिए कौशल की आवश्यकता होती

है। इस प्रकार दोनों का संयोजन व्यक्ति की सफलता और दक्षता में योगदान देता है। ज्ञान की विशेषताएँ सत्यता, विश्वसनीयता, सुसंगत व्यवस्थितता, आधारभूतता विस्तार, प्रमाण, अनुभवजन्य प्रकृति तथा गतिशीलता सापेक्षता आदि हैं। ज्ञान का महत्व नैतिक और नैतिक निर्णय लेने में, वैज्ञानिक अनुसंधान और खोज करने में, व्यक्तिगत विकास और शिक्षा के लिए, वैज्ञानिकों तकनीकी प्रगति तथा आर्थिक विकास में है।

1.8 अभ्यास के प्रश्न

1. ज्ञान की दार्शनिक अर्थ की विवेचना कीजिए।
2. ज्ञान किस प्रकार सूचना, बुद्धि और कौशल से भिन्न है? उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
3. ज्ञान की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
4. ज्ञान के महत्व की विवेचना कीजिए।
5. ज्ञान के विभिन्न प्रकारों की सूची तैयार कीजिए।

1.9 चर्चा के बिंदु

1. ज्ञान प्राप्ति के नवीन तरीकों के बारे में चर्चा कीजिए।

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ज्ञान (Knowledge) किसी व्यक्ति की सूचना, तथ्य, और सच्चाई की समझ और जागरूकता को संदर्भित करता है, जो अनुभव, शिक्षा, और अवलोकन के माध्यम से प्राप्त होती है।

2. विश्वास –ज्ञान के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति किसी चीज़ पर विश्वास करता हो।

सत्य – जिस वस्तु या तथ्य पर विश्वास किया जा रहा है, वह सत्य होना चाहिए।

यथार्थता –व्यक्ति के पास अपने विश्वास के समर्थन में ठोस प्रमाण या तर्क होने चाहिए।

3. यह दर्शनशास्त्र की एक शाखा है, जो ज्ञान की प्रकृति, स्रोत और सीमाओं का अध्ययन करती है। यह प्रश्न उठाती है कि हम कैसे जानते हैं कि हम क्या जानते हैं।

4. ज्ञान को सत्यापन और तर्क की आवश्यकता होती है, जबकि विश्वास तर्क और प्रमाण की अनुपस्थिति में भी अस्तित्व में हो सकता है।

5. ज्ञान और सूचना के बीच का अंतर यह है कि सूचना केवल तथ्य और आँकड़ों का संग्रह होती है, जबकि ज्ञान इस सूचना को समझने और इसका अर्थ निकालने की क्षमता होती है। ज्ञान सूचना से विकसित होता है, जब इसे अनुभव, विश्लेषण, और समझ के माध्यम से प्रसंस्कृत किया जाता है। इस प्रकार, ज्ञान अधिक समृद्ध और उपयोगी होता है ८

6. बुद्धि की सहायता से व्यक्ति जानकारी और तथ्यों को समझकर उसे ज्ञान में परिवर्तित करता है। ज्ञान के माध्यम से व्यक्ति अपनी बुद्धि का विकास करता है और विभिन्न स्थितियों में सही निर्णय लेने की क्षमता को बढ़ाता है। इस प्रकार, दोनों का समन्वय व्यक्ति के संपूर्ण मानसिक और बौद्धिक विकास में योगदान करता है।

7. ज्ञान और कौशल के बीच का अंतर समझना महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये दोनों अवधारणाएँ शिक्षा और व्यक्तिगत विकास में प्रमुख भूमिका निभाती हैं। ज्ञान किसी विशेष क्षेत्र या विषय की जानकारी को संदर्भित करता है, जबकि कौशल उन क्षमताओं और दक्षताओं को संदर्भित करता है ८

8. ज्ञान समय के साथ बदलता और विकसित होता रहता है। नई खोज और प्रौद्योगिकी के विकास से यह निरंतर परिवर्तित होता रहता है।

9. ज्ञान व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास और शिक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जो उसे आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी बनाता है।

10. ज्ञान को अक्सर अनुभव और अवलोकन से प्राप्त किया जाता है। अनुभवजन्य ज्ञान को वास्तविक जीवन के अनुभवों और अवलोकनों के माध्यम से परीक्षण और पुष्टि की जाती है।उदाहरणः मौसम के पूर्वानुमान जो मौसम विज्ञान के अनुभव और डेटा पर आधारित होते हैं।

11. यह ज्ञान व्यक्ति की इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त अनुभवों से संबंधित है। इसे अक्सर अनुभवजन्य ज्ञान के रूप में भी जाना जाता है।

12. समाज में व्यवहार और बातचीत के तरीके सीखना

13. यह ज्ञान समाज और संस्कृति के रीति–रिवाजों, परंपराओं, और मूल्य प्रणालियों के माध्यम से प्राप्त होता है। सामाजिक ज्ञान हमें समाज में सामंजस्यपूर्ण रूप से जीवन जीने, दूसरों के साथ बातचीत करने और सांस्कृतिक विविधता को समझने में मदद करता है।

14. आध्यात्मिक ज्ञान आत्मा, ईश्वर, और ब्रह्मांड के साथ संबंध की समझ को दर्शाता है। यह ध्यान, योग, और आध्यात्मिक साधनाओं के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। आध्यात्मिक ज्ञान व्यक्तिगत संतोष, शांति, और आंतरिक संतुलन को बढ़ावा देता है।

1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. उपाध्याय, हरिशंकर (1996), ज्ञानमीमांसा के मूल प्रश्न, पेनमैन पब्लिशर्स, दिल्ली।
2. गुप्ता, एस0 पी0 (2017), अनुसंधान संदर्शिका, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. मदान, पूनम (2022), ज्ञान एवं पाठ्यक्रम, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. शर्मा, बी० के० एवं कोली, एल० एन० (2002), ज्ञान जगत– संरचना एवं विकास, वाई० के० पब्लिशर्स, आगरा।
5. Armstrong, D. M. (1973), Blief, Truth and Knowledge, Cambridge University Press, London.
6. Velasquez, Manuel (2007), Philosophy Wardworth, Cengage learning, India private limited, New Delhi.

इकाई– 2 : ज्ञान के स्रोत

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 इकाई के उद्देश्य

2.3 ज्ञान के स्रोत

2.4 इंद्रिय अनुभव

- 2.4.1 इंद्रिय अनुभव का ज्ञान प्राप्ति में योगदान
- 2.4.2 इंद्रिय अनुभव की सीमाएं

2.5 साक्ष्य या प्रमाण

- 2.5.1 साक्ष्य के प्रकार
- 2.5.2 साक्ष्यों की भूमिका
- 2.5.3 साक्ष्यों की सीमाएं

2.6 तर्क बुद्धि

- 2.6.1 तर्क बुद्धि के प्रकार
- 2.6.2 तर्क बुद्धि के लाभ
- 2.6.3 तर्क बुद्धि की सीमाएं

2.7 अंतः प्रज्ञा

- 2.7.1 अंतः प्रज्ञा के प्रकार
- 2.7.2 अंतः प्रज्ञा के लाभ
- 2.7.3 अंतः प्रज्ञा की सीमाएं
- 2.7.4 अंतः प्रज्ञा का उपयोग

2.8 सारांश

2.9 अभ्यास के प्रश्न

2.10 चर्चा के बिंदु

2.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

ज्ञान के स्रोत का तात्पर्य उन स्थानों, माध्यमों, या प्रक्रियाओं से है जिनसे हमें जानकारी और समझ प्राप्त होती है। इसमें विभिन्न चीजें शामिल हो सकती हैं, जैसे– पुस्तकें और लेख, जो लिखित ज्ञान और

अनुसंधान का स्रोत होते हैं। अनुसंधान और प्रयोग जो नई जानकारी और तथ्यों को उजागर करते हैं। व्यक्तिगत अनुभव और जीवन की घटनाएं भी ज्ञान का महत्वपूर्ण स्रोत हो सकती हैं। ज्ञान के स्रोत केवल जानकारी प्राप्त करने का माध्यम नहीं हैं, बल्कि यह सोचने, समझने और सुधारने के उपकरण भी हैं। डिजिटल मीडिया, इंटरनेट, वेबसाइट्स और ऑनलाइन पाठ्यक्रम भी ज्ञान के स्रोत हो सकते हैं। इन स्रोतों का उपयोग करके व्यक्ति अपने ज्ञान को विस्तारित कर सकता है और नई जानकारियाँ प्राप्त कर सकता है। ज्ञान के स्रोतों का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि ये हमें विभिन्न दृष्टिकोण, जानकारी और अनुभव प्रदान करते हैं। ये स्रोत हमें सीखने, समझने और समस्याओं को हल करने में मदद करते हैं। सही स्रोतों से प्राप्त जानकारी सटीक और विश्वसनीय होती है, जो कि निर्णय लेने और विकास में सहायक होती है। ज्ञान के प्रमुख स्रोत इंद्रिय अनुभव, साक्ष्य, तर्क बुद्धि अंतः प्रज्ञा आदि होते हैं।

2.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

1. ज्ञान के स्रोतों को बता सकेंगे।
2. ज्ञान के स्रोत के रूप में इंद्रिय अनुभव को बता सकेंगे।
3. ज्ञान के स्रोत के रूप में साक्ष्य से परिचित हो सकेंगे।
4. ज्ञान के स्रोत के रूप में तर्क बुद्धि की विवेचना कर सकेंगे।
5. ज्ञान के स्रोत के रूप में अंतः प्रज्ञा की विवेचना कर सकेंगे।
6. ज्ञान के विभिन्न स्रोतों के मध्य अंतर को स्पष्ट कर सकेंगे।
7. ज्ञान के विभिन्न स्रोतों का दैनिक जीवन में प्रयोग कर सकेंगे।

2.3 ज्ञान के स्रोत

ज्ञान के स्रोत से तात्पर्य उन स्थानों या माध्यमों से है जहाँ से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। ये स्रोत विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं, जैसे–

- पुस्तकें और लेख – पुस्तकें, जर्नल्स, और शैक्षिक लेख ज्ञान के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।
- शिक्षक और गुरु – शिक्षकों, प्रोफेसरों, और विशेषज्ञों से प्राप्त ज्ञान।
- प्रश्नोत्तरी और अध्ययन – विभिन्न प्रश्नोत्तरी, शोध और अध्ययन से प्राप्त जानकारियाँ।
- अनुभव – व्यक्तिगत अनुभव और प्रयोग से सीखा गया ज्ञान।
- सांस्कृतिक परंपराएं और मौखिक परंपराएं – जो पीढ़ी दर पीढ़ी संचारित होती हैं और पारंपरिक ज्ञान का हिस्सा होती हैं।
- डिजिटल मीडिया – इंटरनेट, वेबसाइट्स, और ऑनलाइन पाठ्यक्रम भी ज्ञान के स्रोत हो सकते हैं।
- विविध दृष्टिकोण – विभिन्न स्रोत विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं, जिससे हमें किसी भी विषय को व्यापक और गहराई से समझने में मदद मिलती है। इससे हमारी सोच में विविधता और समृद्धि आती है।
- स्रोत की विविधता – पुस्तकें, शोध पत्र, इंटरनेट, और विशेषज्ञों का अनुभव विभिन्न प्रकार की जानकारी प्रदान करते हैं। जैसे, पुस्तकें अक्सर गहराई में जाकर विश्लेषण करती हैं, जबकि इंटरनेट ताजे और अद्यतन जानकारी प्रदान करता है।
- सीखने के तरीके – स्रोतों के आधार पर सीखने के विभिन्न तरीके होते हैं। उदाहरण के लिए, अध्ययन और अनुसंधान के माध्यम से हम सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, जबकि प्रायोगिक अनुभव से व्यावहारिक ज्ञान मिल सकता है।
- सही जानकारी – विश्वसनीय स्रोतों से प्राप्त जानकारी अधिक सटीक होती है और इससे गलतफहमी या भ्रांतियों की संभावना कम होती है। इससे निर्णय लेने में सहायक साक्ष्य और डेटा मिलते हैं।

- विकास और नवाचार – ज्ञान के स्रोत हमें नए विचार और नवीनतम अनुसंधान के बारे में अवगत कराते हैं, जो व्यक्तिगत और सामूहिक विकास के लिए आवश्यक होते हैं। ये नई तकनीकों, विचारों, और समाधानों को उत्पन्न करने में सहायक होते हैं।

इन सभी पहलुओं के कारण, ज्ञान के स्रोत केवल जानकारी प्राप्त करने का माध्यम नहीं हैं, बल्कि यह सोचने, समझने और सुधारने के उपकरण भी हैं। इन स्रोतों का उपयोग करके व्यक्ति अपने ज्ञान को विस्तारित कर सकता है और नई जानकारियाँ प्राप्त कर सकता है। ज्ञान के स्रोतों का महत्व बहुत अधिक है क्योंकि ये हमें विभिन्न दृष्टिकोण, जानकारी और अनुभव प्रदान करते हैं। ये स्रोत हमें सीखने, समझने और समस्याओं को हल करने में मदद करते हैं। प्रमुख स्रोतों में पुस्तकें, शोध पत्र, इंटरनेट, और विशेषज्ञों के अनुभव शामिल हैं। सही स्रोतों से प्राप्त जानकारी सटीक और विश्वसनीय होती है, जो कि निर्णय लेने और विकास में सहायक होती है। ज्ञान के स्रोतों का विस्तारपूर्वक वर्णन करने के लिए, हमें यह समझना होगा कि ज्ञान कई तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है। यहां कुछ प्रमुख ज्ञान के स्रोतों का विवरण दिया गया है–

1. इंद्रियाँ (Senses)

- **दृष्टि (Sight)** – आँखों के माध्यम से दृश्य जानकारी प्राप्त होती है, जैसे रंग, आकार, दूरी आदि।
- **श्रवण (Hearing)** – कानों के माध्यम से ध्वनि जानकारी प्राप्त होती है।
- **स्पर्श (Touch)** – त्वचा के माध्यम से तापमान, दबाव, और बनावट की जानकारी मिलती है।
- **स्वाद (Taste)** – जीभ के माध्यम से विभिन्न स्वादों की जानकारी मिलती है।
- **गंध (Smell)** – नाक के माध्यम से विभिन्न गंधों की जानकारी मिलती है।

2. अनुभव (Experience)

- **व्यक्तिगत अनुभव** – अपने जीवन में की गई व्यक्तिगत घटनाओं और अनुभवों से ज्ञान प्राप्त होता है।
- **व्यावसायिक अनुभव** – किसी विशेष क्षेत्र में कार्य करके प्राप्त किया गया ज्ञान।

3. प्रयोग और अवलोकन (Experimentation and Observation)

- **प्रयोग** – वैज्ञानिक प्रयोग और अनुसंधान के माध्यम से ज्ञान प्राप्त होता है, जो नई खोजों और सिद्धांतों को जन्म देता है।
- **अवलोकन** – पर्यावरण और समाज का अवलोकन करके ज्ञान अर्जित करना।

4. शिक्षा (Education)

- **औपचारिक शिक्षा** – स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों के माध्यम से प्राप्त शिक्षा।
- **अनौपचारिक शिक्षा** – पारंपरिक ज्ञान, सामुदायिक कार्यशालाओं और इंटरनेट के माध्यम से प्राप्त शिक्षा।

5. पुस्तकें और साहित्य (Books and Literature)

- इतिहास, विज्ञान, कला और अन्य विषयों पर लिखी गई पुस्तकें और साहित्य महत्वपूर्ण ज्ञान के स्रोत होते हैं।

6. प्रौद्योगिकी और इंटरनेट (Technology and Internet)

- इंटरनेट और डिजिटल मीडिया ने ज्ञान को अधिक सुलभ बना दिया है। ऑनलाइन लेख, वीडियो, पोडकास्ट और अन्य डिजिटल सामग्री से ज्ञान प्राप्त होता है।

7. सम्प्रेशण या संवाद (Communication)

- बातचीत और संवाद के माध्यम से दूसरों के विचारों और अनुभवों से ज्ञान अर्जित करना।

8. संस्कृति और परंपरा (Culture and Tradition)

- विभिन्न संस्कृतियों और परंपराओं के माध्यम से ज्ञान और मूल्यों का हस्तांतरण होता है।

9. साहित्यिक और सांस्कृतिक धरोहर (Literary and Cultural Heritage)

- पौराणिक कथाएँ, लोककथाएँ, और ऐतिहासिक दस्तावेज ज्ञान के समृद्ध स्रोत होते हैं।
- इन सभी स्रोतों के माध्यम से हम ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और इसे दूसरों के साथ साझा कर सकते हैं, जिससे व्यक्तिगत और सामाजिक विकास होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. कौन–कौन सी इंद्रियां ज्ञान ज्ञान प्राप्ति में सहायक होती हैं?

_____
_____

2. प्रयोग और अवलोकन किस प्रकार ज्ञान के स्रोत हैं?

_____
_____

3. ज्ञान के स्रोत के रूप में प्रौद्योगिकी और इंटरनेट किस प्रकार सहायक है?

_____
_____

4. साहित्य को सांस्कृतिक धरोहर किस प्रकार ज्ञान की स्रोत के रूप में प्रयुक्त होते हैं?

_____
_____

2.4 इंद्रिय अनुभव

ज्ञान के स्रोत के रूप में इंद्रिय अनुभव को समझने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि हम यह जानें कि इंद्रिय अनुभव क्या है और यह कैसे हमारे ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया में योगदान देता है? इंद्रिय अनुभव (Sense Experience) वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से हम अपनी पांच इंद्रियों – दृष्टि, श्रवण, स्पर्श, स्वाद और गंध का उपयोग करके बाहरी दुनिया के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। इस अनुभव के माध्यम से हमें अपने चारों ओर की वास्तविकता के बारे में जागरूकता और समझ प्राप्त होती है।

2.4.1 इंद्रिय अनुभव का ज्ञान प्राप्ति में योगदान

1. **प्रत्यक्ष अनुभव** – इंद्रिय अनुभव हमें प्रत्यक्ष जानकारी प्रदान करता है। जब हम किसी वस्तु को देखते हैं, छूते हैं, सूंघते हैं, चखते हैं, या सुनते हैं, तो हम उस वस्तु की विशेषताओं के बारे में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह ज्ञान वास्तविक और प्रत्यक्ष होता है।
2. **अवधारणाओं का निर्माण** – इंद्रिय अनुभवों से प्राप्त जानकारी हमारे मस्तिष्क में संग्रहीत होती है और इसका उपयोग अवधारणाओं और धारणाओं को बनाने के लिए किया जाता है। उदाहरण के लिए, एक बच्चा गर्म चाय के कप को छूकर गर्मी की अवधारणा विकसित करता है।
3. **सत्यापन और पुष्टि** – इंद्रिय अनुभव हमें किसी भी दावे या जानकारी की सत्यता की जांच करने में सक्षम बनाता है। उदाहरण के लिए, हम किसी फल की ताजगी का मूल्यांकन करने के लिए उसकी गंध और रूप को देख सकते हैं।
4. **अनुभवजन्य ज्ञान** – इंद्रिय अनुभवों पर आधारित ज्ञान को अनुभवजन्य ज्ञान कहा जाता है। विज्ञान में, यह अवलोकन और प्रयोगों के माध्यम से प्राप्त ज्ञान होता है।
5. **भविष्यवाणियों का आधार** – इंद्रिय अनुभव हमें भविष्य के घटनाक्रमों की भविष्यवाणी करने में भी मदद करता है। उदाहरण के लिए, आकाश में बादल देखकर हम बारिश का अनुमान लगा सकते हैं।

2.4.2 इंद्रिय अनुभव की सीमाएं

1. **संवेदनाओं की सीमितता** – हमारी इंद्रियाँ सीमित हैं और वे सभी सूचनाएँ ग्रहण नहीं कर सकतीं। कुछ सूक्ष्म या दूर की चीज़ें हमारी दृष्टि या अन्य इंद्रियों से बाहर होती हैं।
2. **व्यक्तिपरकता** – इंद्रिय अनुभव अक्सर व्यक्तिपरक होते हैं, क्योंकि दो लोग एक ही घटना या वस्तु को भिन्न रूप में अनुभव कर सकते हैं।
3. **भ्रम और गलतफहमी** – कभी–कभी हमारी इंद्रियाँ भ्रमित कर सकती हैं, जैसे मृगतृष्णा (मिराज) में पानी का आभास होना।
4. **परिस्थितिजन्य प्रभाव** – हमारे मन की स्थिति, स्वास्थ्य और पर्यावरण भी हमारे इंद्रिय अनुभवों को प्रभावित कर सकते हैं।

प्रत्यक्षवाद यह दर्शनशास्त्र की एक शाखा है जो यह मानती है कि सभी ज्ञान का स्रोत इंद्रिय अनुभव है। प्रसिद्ध दार्शनिक जॉन लॉक, डेविड ह्यूम और जॉर्ज बर्कले इस विचारधारा के प्रमुख समर्थक हैं। प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण में बाहरी संसार का ज्ञान केवल इंद्रिय अनुभव के माध्यम से संभव है। इंद्रिय अनुभव को मानवीय समझ और ज्ञान का आधार माना जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि इंद्रिय अनुभव ज्ञान के प्रमुख स्रोतों में से एक है, जो हमें हमारी दुनिया को समझने में मदद करता है। यद्यपि इसमें कुछ सीमाएँ हैं, यह हमारी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं और वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए एक आवश्यक आधार प्रदान करता है। इंद्रिय अनुभव के बिना, ज्ञान का अधिग्रहण अत्यंत कठिन होता।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

5. इंद्रिय अनुभव का ज्ञान प्राप्ति में क्या योगदान है?

_____

_____

6. इंद्रिय अनुभव की क्या सीमाएं हैं?

_____

_____

7. दर्शन में इंद्रिय अनुभव का किस प्रकार वर्णन किया गया है?

_____

_____

2.5 साक्ष्य या प्रमाण (Evidence/Testimony)

साक्ष्य ज्ञान के स्रोत के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये तरीके हमें दूसरों के अनुभवों, विश्लेषणों और रिपोर्टों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने में मदद करते हैं। साक्ष्य किसी भी दावे, विश्वास या सिद्धांत को सत्यापित करने के लिए प्रस्तुत की जाने वाली जानकारी या डेटा है। यह विभिन्न प्रकार का हो सकता है, जैसे कि वस्तुनिष्ठ डेटा, प्रायोगिक परिणाम या प्रलेखन। साक्ष्य का उद्देश्य यह साबित करना होता है कि एक विशेष दावा या तथ्य सही है या नहीं।

2.5.1 साक्ष्य के प्रकार

प्रमुख रूप से साक्ष्य तीन प्रकार के होते हैं –

1. **वस्तुनिष्ठ साक्ष्य** – यह साक्ष्य वस्तुनिष्ठ डेटा या तथ्य होते हैं, जैसे कि वैज्ञानिक प्रयोगों के परिणाम, सांख्यिकी या भौतिक प्रमाण।
2. **दस्तावेज़ी साक्ष्य** – इसमें लिखित रिकॉर्ड, रिपोर्ट या दस्तावेज शामिल होते हैं, जैसे कि सरकारी रिपोर्ट, अनुबंध या ऐतिहासिक ग्रंथ।
3. **प्रायोगिक साक्ष्य** – यह प्रयोगात्मक परिणामों या अनुसंधान से प्राप्त जानकारी होती है, जैसे कि प्रयोगशाला परीक्षणों के परिणाम।

2.5.2 साक्ष्यों की भूमिका

1. **विश्वसनीयता** – साक्ष्य किसी भी दावे की विश्वसनीयता को स्थापित करने में मदद करता है। यह सिद्धांतों और विचारों की ठोस आधारशिला प्रदान करता है।
2. **विवेकाधीन निर्णय** – साक्ष्य विभिन्न दृष्टिकोणों को विश्लेषित करने और विवेकाधीन निर्णय लेने में सहायक होता है।
3. **वैज्ञानिक पद्धति** – वैज्ञानिक अनुसंधान और प्रयोग साक्ष्य पर आधारित होते हैं, जो नए ज्ञान और सिद्धांतों के विकास में सहायक होते हैं।
4. **न्यायिक प्रणाली** – न्यायिक प्रणाली में साक्ष्य अपराध या विवादों को सुलझाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2.5.3 साक्ष्यों की सीमाएं

1. **साक्ष्य की सटीकता** – साक्ष्य कभी–कभी गलत हो सकता है या पक्षपाती हो सकता है, इसलिए इसकी सटीकता की जांच करना आवश्यक है।
2. **टेस्टिमोनी की वस्तुनिष्ठता** – गवाही अक्सर व्यक्तिगत दृष्टिकोण या पूर्वाग्रहों पर आधारित होती है, जिससे इसकी वस्तुनिष्ठता प्रभावित हो सकती है।

3. **साक्ष्य और टेस्टिमोनी की व्याख्या** – दोनों का विश्लेषण और व्याख्या सावधानीपूर्वक करनी चाहिए, क्योंकि कभी–कभी तथ्य या गवाही गलत समझी जा सकती है।

साक्ष्य ज्ञान के प्राप्ति में महत्वपूर्ण स्रोत हैं, जो हमें विभिन्न प्रकार की जानकारी और अनुभव प्रदान करते हैं। हालांकि, इनकी प्रभावशीलता और सटीकता पर ध्यान देना आवश्यक है, ताकि ज्ञान का सही और विश्वसनीय अधिग्रहण सुनिश्चित किया जा सके।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

8. साक्ष्य या टेस्टिमोनी से क्या तात्पर्य है?

_____

_____

9. साक्ष्य के कौन–कौन से प्रकार हैं?

_____

_____

10. साक्ष्य में विश्वसनीयता का क्या महत्व है ?

_____

_____

2.6 तर्क बुद्धि

ज्ञान प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत तर्क बुद्धि है, जो हमें तर्कशक्ति और विश्लेषण के माध्यम से नई जानकारी और समझ प्राप्त करने में मदद करता है। तर्क बुद्धि का उपयोग किसी विचार, सिद्धांत या समस्या की जांच करने, तर्क संगत निष्कर्ष पर पहुँचने और निर्णय लेने में किया जाता है। तर्क बुद्धि वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से हम तर्क, विश्लेषण, और मानसिक अभ्यस्तता का उपयोग करके ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसमें अवधारणाओं को व्यवस्थित करना, तर्कसंगत निष्कर्ष निकालना, और समस्याओं को सुलझाना शामिल है।

2.6.1 तर्क बुद्धि के प्रकार

1. **निगमनात्मक तर्क (Deductive Reasoning)** – यह तर्क विधि एक सामान्य सिद्धांत या सामान्यीकरण से विशिष्ट निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए उपयोग की जाती है। उदाहरण – यदि सभी मनुष्य मृत्युशील हैं (सार्वजनिक सिद्धांत) और सुश्री सारा एक मनुष्य है, तो सुश्री सारा भी मृत्युशील होगी (विशेष निष्कर्ष)। विशेषता है कि अगर प्रारंभिक धारणाएँ सही है तो निष्कर्ष निश्चित रूप से सही होगा।

2. **आगमनात्मक तर्क (Inductive Reasoning)** – यह तर्क विधि विशिष्ट मामलों से सामान्य सिद्धांतों या नियमों की ओर बढ़ने के लिए उपयोग की जाती है। उदाहरण – अगर हम देखते हैं कि सूर्य रोज़ पूर्व से उगता है, तो हम सामान्य निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सूर्य हमेशा पूर्व से उगेगा। निगमनात्मक तर्क में निष्कर्ष संभावित रूप से सही होता है, लेकिन 100 प्रतिशत सुनिश्चित नहीं होता।

3. **अब्डक्टिव तर्क (Abductive Reasoning)** – यह तर्क विधि सबसे अच्छे या सबसे संभावित स्पष्टीकरण पर पहुँचने के लिए उपयोग की जाती है। उदाहरण – यदि हमें अपने आँगन में गीला देखा, तो हम अनुमान लगा सकते हैं कि बारिश हुई है, हालांकि इसके कई अन्य संभावित कारण हो सकते हैं। इसकी

विशेषता है कि यह संभावित और सबसे संभावित स्पष्टीकरण पर आधारित होता है, लेकिन पूर्ण प्रमाण नहीं देता।

2.6.2 तर्क बुद्धि के लाभ

1. **समस्या समाधान** – तर्क बुद्धि समस्याओं और जटिल मुद्दों को समझने और हल करने में मदद करती है। यह समस्याओं के विभिन्न पहलुओं को विश्लेषित करने और संभावित समाधान की पहचान करने में सहायक होती है।
2. **विवेकाधीन निर्णय** – यह हमें विवेकाधीन और तर्कसंगत निर्णय लेने में सक्षम बनाती है। तर्क बुद्धि के माध्यम से हम विभिन्न विकल्पों का मूल्यांकन कर सकते हैं और सबसे उचित निर्णय ले सकते हैं।
3. **सत्यापन और विश्लेषण** – तर्क बुद्धि का उपयोग किसी भी दावे या सिद्धांत की सत्यता की जांच करने में किया जाता है। यह हमें तथ्यों और विचारों का विश्लेषण करने की क्षमता प्रदान करती है।
4. **सारगर्भित विचार** – यह हमें संगठित और सारगर्भित विचार प्रस्तुत करने की क्षमता प्रदान करती है, जिससे जटिल विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जा सकता है।

2.6.3 तर्क बुद्धि की सीमाएँ

1. **पूर्वाग्रह और धारणा** – तर्क अक्सर व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों और धारणाओं से प्रभावित हो सकता है, जो तर्क की निष्पक्षता को बाधित कर सकते हैं।
2. **अनिश्चितता और अपूर्ण जानकारी** – तर्क बुद्धि को अपूर्ण या असंभावित जानकारी पर आधारित तर्क से समस्या हो सकती है, जिससे निष्कर्ष सही नहीं हो सकते।
3. **विवाद और विविधता** – विभिन्न लोग एक ही तर्क को विभिन्न तरीकों से व्याख्यित कर सकते हैं, जिससे निष्कर्ष में विवाद और विविधता उत्पन्न हो सकती है।
4. **सीमित डेटा** – कभी–कभी उपलब्ध डेटा सीमित हो सकता है, जो तर्क के आधार पर सही निष्कर्ष निकालने में कठिनाई पैदा कर सकता है।

तर्क बुद्धि ज्ञान प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है, जो हमें समस्याओं को समझने, विश्लेषित करने और निर्णय लेने में सक्षम बनाती है। हालांकि, यह सीमाओं और बाधाओं से मुक्त नहीं है, और इसका प्रभावी उपयोग करने के लिए हमें सावधानीपूर्वक और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

11. तर्क बुद्धि से आप क्या समझते हैं?

_____

_____

12. तर्क बुद्धि के कौन–कौन से प्रकार हैं?

_____

_____

13. तर्क बुद्धि के क्या लाभ होते हैं?

_____

_____

2.7 अंतः प्रज्ञा

अंतः प्रज्ञा ज्ञान प्राप्ति का एक विशेष स्रोत है, जो तर्क और अनुभव से परे, तत्काल समझ और अनुभव पर आधारित होता है। यह एक प्रकार की "आंतरिक समझ" होती है जो बिना स्पष्ट तर्क या प्रमाण के आती है। अंतः प्रज्ञा वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से हम किसी चीज़ को बिना विचारशील विश्लेषण या प्रत्यक्ष अनुभव के समझते हैं। यह अक्सर एक "आंतरिक भावना" या "भान" के रूप में प्रकट होती है, जो हमें किसी दावे, निर्णय, या समस्या को सहज रूप से समझने में मदद करती है।

2.7.1 अंतः प्रज्ञा के प्रकार

1. **स्वाभाविक अंतः प्रज्ञा (Natural Intuition)** – यह प्रकार की अंतः प्रज्ञा स्वाभाविक रूप से आती है और किसी भी विशेष प्रशिक्षण या अनुभव पर निर्भर नहीं होती। यह सामान्य जीवन स्थितियों में उत्पन्न हो सकती है। उदाहरण – किसी व्यक्ति को अचानक यह एहसास होता है कि कोई विशेष निर्णय सही है, हालांकि उसने सभी तथ्य और तर्क नहीं देखे हैं।
2. **विशेषज्ञता से संबंधित अंतः प्रज्ञा (Expertize Intuition)** – यह अंतः प्रज्ञा तब उत्पन्न होती है जब किसी व्यक्ति ने किसी विशेष क्षेत्र में पर्याप्त अनुभव और विशेषज्ञता प्राप्त की होती है। इस प्रकार की अंतः प्रज्ञा को अक्सर विशेषज्ञ या पेशेवर दृष्टिकोण से देखा जाता है। उदाहरण – एक अनुभवी डॉक्टर को किसी रोग के निदान में त्वरित अंतः प्रज्ञा हो सकती है, जो उसकी लंबी अवधि की विशेषज्ञता से उत्पन्न होती है।

2.7.2 अंतः प्रज्ञा के लाभ

1. **त्वरित निर्णय** – अंतः प्रज्ञा हमें त्वरित निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है, जब तर्क या विश्लेषण के लिए समय या संसाधन सीमित होते हैं।
2. **सहजता और सहजता** – यह एक सहज और स्वाभाविक समझ प्रदान करती है, जो हमें जटिल समस्याओं को सरलता से समझने में मदद करती है।
3. **अदृश्य जानकारियाँ** – अंतः प्रज्ञा कभी–कभी ऐसी जानकारियाँ प्रदान करती है जो सामान्य अनुभव या विश्लेषण से बाहर होती हैं, जैसे कि किसी व्यक्ति की भावनात्मक स्थिति या भविष्यवाणी की समझ।
4. **रचनात्मकता** – यह रचनात्मक समाधान और नए विचारों की खोज में सहायक हो सकती है, जहां पारंपरिक तर्क और विधियाँ अपर्याप्त होती हैं।

2.7.3 अंतः प्रज्ञा की सीमाएँ

1. **स्वसिद्धता और गलतफहमी** – अंतः प्रज्ञा अक्सर व्यक्तिगत धारणाओं और भावनाओं पर आधारित होती है, जो गलतफहमी और पूर्वाग्रह को जन्म दे सकती है।
2. **साक्ष्य की कमी** – अंतः प्रज्ञा के आधार पर किए गए निर्णयों में साक्ष्य की कमी हो सकती है, जिससे निर्णय की सटीकता पर प्रश्न उठ सकते हैं।
3. **सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव** – समाज और संस्कृति द्वारा प्रभावित अंतः प्रज्ञा विभिन्न व्यक्तियों में भिन्न हो सकती है, जिससे वैयक्तिक मतभेद उत्पन्न हो सकते हैं।
4. **उपलब्ध जानकारी पर निर्भरता** – अंतः प्रज्ञा का आधार पूर्व अनुभव और उपलब्ध जानकारी पर निर्भर होता है। अगर पूर्व अनुभव सीमित है, तो अंतः प्रज्ञा भी सीमित हो सकती है।

2.7.4 अंतः प्रज्ञा का उपयोग

1. **व्यावसायिक निर्णय** – व्यापारिक निर्णयों में जब तर्क और डेटा पर्याप्त नहीं होते, तो अंतः प्रज्ञा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।
2. **रचनात्मक कार्य** – कला, साहित्य, और अन्य रचनात्मक क्षेत्रों में अंतः प्रज्ञा नए और अभिनव विचारों की उत्पत्ति में सहायक हो सकती है.
3. **यातायात और सुरक्षा** – अचानक परिस्थितियों में त्वरित निर्णय लेने के लिए अंतः प्रज्ञा का उपयोग किया जा सकता है, जैसे कि ड्राइविंग या आपातकालीन स्थितियों में।

अंतः प्रज्ञा ज्ञान प्राप्ति का एक विशेष स्रोत है जो सहज और आंतरिक समझ पर आधारित होती है। यह निर्णय लेने, समस्या सुलझाने और रचनात्मकता में सहायक हो सकती है, लेकिन इसके उपयोग में सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि यह कभी–कभी गलतफहमी और पूर्वाग्रह से प्रभावित हो सकती है। अंतः प्रज्ञा का सही उपयोग अनुभव और विश्लेषण के साथ संयोजन करके किया जा सकता है, जिससे अधिक सटीक और प्रभावी परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

14. अंतः प्रज्ञा का क्या अर्थ है?

_____

_____

15. अंतः प्रज्ञा के कौन–कौन से प्रकार हैं?

_____

_____

16. अंतः प्रज्ञा के क्या लाभ होते हैं?

_____

_____

2.8 सारांश

ज्ञान के स्रोत से तात्पर्य उन स्थानों या माध्यमों से है जहाँ से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। ये स्रोत विभिन्न प्रकार के हो सकते हैंप् ज्ञान के प्रमुख स्रोत इंद्रिय अनुभव, साक्ष्य, तर्क बुद्धि अंतः प्रज्ञा आदि होते हैंप् ज्ञान के स्रोत के रूप में इंद्रिय अनुभव को समझने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि हम यह जानें कि इंद्रिय अनुभव क्या है और यह कैसे हमारे ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया में योगदान देता है। इंद्रिय वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से हम अपनी पांच इंद्रियों – दृष्टि, श्रवण, स्पर्श, स्वाद, और गंध – का उपयोग करके बाहरी दुनिया के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। इस अनुभव के माध्यम से हमें अपने चारों ओर की वास्तविकता के बारे में जागरूकता और समझ प्राप्त होती है। ये तरीके हमें दूसरों के अनुभवों, विश्लेषणों और रिपोर्टों के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने में मदद करते हैं। तर्क बुद्धि वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से हम तर्क, विश्लेषण, और मानसिक अभ्यस्तता का उपयोग करके ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसमें अवधारणाओं को व्यवस्थित करना, तर्कसंगत निष्कर्ष निकालना, और समस्याओं को सुलझाना शामिल है। ज्ञान प्राप्ति का एक विशेष स्रोत है, जो तर्क और अनुभव से

परे, तत्काल समझ और अनुभव पर आधारित होता है। यह एक प्रकार की आंतरिक समझ होती है जो बिना स्पष्ट तर्क या प्रमाण के आती है।

2.9 अभ्यास के प्रश्न

1. ज्ञान के प्रमुख स्रोतों का वर्णन कीजिए।
2. इंद्रिय अनुभव किस प्रकार ज्ञान प्राप्ति में सहायक है?
3. साक्ष्य से क्या तात्पर्य है। यह किस प्रकार ज्ञान की स्रोत है?
4. तर्क बुद्धि को परिभाषित कीजिए। यह किस प्रकार ज्ञान का स्रोत हो सकती है?
5. अंतः प्रज्ञा से क्या तात्पर्य है। ज्ञान के स्रोत के रूप में इसकी विवेचना कीजिए।

2.10 चर्चा के बिंदु

1. ज्ञान के नवीन स्रोतों के बारे में चर्चा कीजिए।

2.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. दृष्टि श्रवण स्पर्श स्वाद और गंध आदि इंद्रियां ज्ञान प्राप्ति में सहायक है।
2. वैज्ञानिक प्रयोग और अनुसंधान के माध्यम से ज्ञान प्राप्त होता है, जो नई खोजों और सिद्धांतों को जन्म देता है।
3. इंटरनेट और डिजिटल मीडिया ने ज्ञान को अधिक सुलभ बना दिया है। ऑनलाइन लेख, वीडियो, पोडकास्ट और अन्य डिजिटल सामग्री से ज्ञान प्राप्त होता है।
4. पौराणिक कथाएँ, लोककथाएँ, और ऐतिहासिक दस्तावेज ज्ञान के समृद्ध स्रोत होते हैं।
5. ज्ञान के स्रोत के रूप में इंद्रिय अनुभव को समझने के लिए यह महत्वपूर्ण है कि हम यह जानें कि इंद्रिय अनुभव क्या है और यह कैसे हमारे ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया में योगदान देता है।
6. हमारी इंद्रियाँ सीमित हैं और वे सभी सूचनाएँ ग्रहण नहीं कर सकतीं। कुछ सूक्ष्म या दूर की चीज़ें हमारी दृष्टि या अन्य इंद्रियों से बाहर होती हैं।
7. इंद्रिय अनुभव ज्ञान के प्रमुख स्रोतों में से एक है, जो हमें हमारी दुनिया को समझने में मदद करता है। यद्यपि इसमें कुछ सीमाएँ हैं, यह हमारी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं और वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए एक आवश्यक आधार प्रदान करता है। इंद्रिय अनुभव के बिना, ज्ञान का अधिग्रहण अत्यंत कठिन होता।
8. साक्ष्य किसी भी दावे, विश्वास या सिद्धांत को सत्यापित करने के लिए प्रस्तुत की जाने वाली जानकारी या डेटा है। यह विभिन्न प्रकार का हो सकता है, जैसे कि वस्तुनिष्ठ डेटा, प्रायोगिक परिणाम या प्रलेखन।
9. वस्तुनिष्ठ साक्ष्य, दस्तावेज साक्ष्य और प्रायोगिक साक्ष्य ।
10. साक्ष्य किसी भी दावे की विश्वसनीयता को स्थापित करने में मदद करता है। यह सिद्धांतों और विचारों की ठोस आधारशिला प्रदान करता है।
11. तर्क बुद्धि ज्ञान प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है, जो हमें समस्याओं को समझने, विश्लेषित करने और निर्णय लेने में सक्षम बनाती है।
12. आगमनात्मक तर्क, निगमनात्मक तर्क, अब्डक्टिव तर्क ।

13. तर्क बुद्धि समस्याओं और जटिल मुद्दों को समझने और हल करने में मदद करती है। यह समस्याओं के विभिन्न पहलुओं को विश्लेषित करने और संभावित समाधान की पहचान करने में सहायक होती है।

14. अंतः प्रज्ञा वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से हम किसी चीज़ को बिना विचारशील विश्लेषण या प्रत्यक्ष अनुभव के समझते हैं। यह अक्सर एक आंतरिक भावना के रूप में प्रकट होती है, जो हमें किसी दावे, निर्णय, या समस्या को सहज रूप से समझने में मदद करती है।

15. स्वाभाविक अंतः प्रज्ञा, विशेषज्ञता से संबंधित अंतः प्रज्ञा।

16. अंतः प्रज्ञा हमें त्वरित निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करती है, जब तर्क या विश्लेषण के लिए समय या संसाधन सीमित होते हैं। यह एक सहज और स्वाभाविक समझ प्रदान करती है, जो हमें जटिल समस्याओं को सरलता से समझने में मदद करती है।

2.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. उपाध्याय, हरिशंकर (1996), ज्ञानमीमांसा के मूल प्रश्न, पेनमैन पब्लिशर्स, दिल्ली।
2. गुप्ता, एस0 पी0 (2017), अनुसंधान संदर्शिका, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. मदान, पूनम (2022), ज्ञान एवं पाठ्यक्रम, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. शर्मा, बी० के० एवं कोली, एल० एन० (2002), ज्ञान जगत– संरचना एवं विकास, वाई० के० पब्लिशर्स, आगरा।
5. Armstrong, D. M. (1973), Blief, Truth and Knowledge, Cambridge University Press, London.
6. Velasquez, Manuel (2007), Philosophy Wardworth, Cengage learning, India private limited, New Delhi.

इकाई– 3 : ज्ञान प्राप्त करने की विधियाँ

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 इकाई के उद्देश्य

3.3 ज्ञान प्राप्त करने की विधियाँ

3.4 विश्लेषणात्मक दर्शन

3.5 वैज्ञानिक विधि

- 3.5.1 वैज्ञानिक विधि के चरण
- 3.5.2 वैज्ञानिक विधि की विशेषताएँ
- 3.5.3 सीमाएँ और चुनौतियाँ

3.6 द्वंदात्मक पद्धति

- 3.6.1 द्वंदात्मक पद्धति की प्रक्रिया एवं कार्य
- 3.6.2 दर्शनशास्त्र में द्वंदात्मक पद्धति
- 3.6.3 द्वंदात्मक पद्धति का उपयोग

3.7 सारांश

3.8 अभ्यास के प्रश्न

3.9 चर्चा के बिंदु

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

ज्ञान प्राप्ति की विधियाँ विविध और अनेक प्रकार की होती हैं। एक प्रमुख विधि अनुभव से सीखना है, जिसमें व्यक्ति जीवन के अनुभवों से ज्ञान प्राप्त करता है और अपने निर्णयों और गलतियों से सबक लेता है। इसके अतिरिक्त पढ़ाई और शिक्षा के माध्यम से भी ज्ञान अर्जित किया जा सकता है, जिसमें किताबें, विद्यालय और शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शोध और अनुसंधान के माध्यम से भी गहन ज्ञान प्राप्त किया जाता है, जहाँ व्यक्ति किसी विशेष विषय पर विस्तृत अध्ययन करता है। संवाद और चर्चा के माध्यम से भी ज्ञान का आदान–प्रदान होता है, जिसमें विभिन्न दृष्टिकोणों को समझने का अवसर मिलता है। अंत में ध्यान और आत्ममंथन भी आत्मज्ञान की ओर ले जाते हैं, जो आंतरिक शांति और समझ प्रदान करते हैं। यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने व उसका विश्लेषण करने का अर्थ है आत्मनिरीक्षण और ध्यान के माध्यम से सत्य और वास्तविकता की गहन समझ विकसित करना। यह विधि विशेष रूप से पूर्वी दर्शन और धार्मिक परंपराओं में महत्वपूर्ण मानी जाती है, जहां आत्मनिरीक्षण को ज्ञान प्राप्ति का एक मुख्य साधन माना गया है।

3.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

1. ज्ञान प्राप्त करने की विधियों को समझ सकेंगे।
2. ज्ञान प्राप्त करने की विश्लेषणात्मक दर्शन को स्पष्ट कर सकेंगे।
3. ज्ञान प्राप्त करने की वैज्ञानिक विधि के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
4. तर्कसंगत सोच और आलोचनात्मक विश्लेषण की विवेचना कर सकेंगे।
5. द्वंदात्मक पद्धति की विवेचना कर सकेंगे।
6. ज्ञान प्राप्त करने की विधियों में अंतर कर सकेंगे।
7. ज्ञान प्राप्त करने की विधियों को दैनिक जीवन में प्रयोग कर सकेंगे।

3.3 ज्ञान प्राप्त करने की विधियाँ

यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने का अर्थ है सत्य और सटीक जानकारी या समझ प्राप्त करना जो वस्तुनिष्ठ और प्रमाणित हो। इसे हासिल करने के लिए कई विधियाँ और दृष्टिकोण हैं जो वैज्ञानिक, तर्कसंगत और अनुभवजन्य पद्धतियों पर आधारित हैं। नीचे यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने की कुछ प्रमुख विधियाँ दी गई हैं–

1. वैज्ञानिक विधि (Scientific Method)

- अवलोकन (Observation) : किसी घटना या प्रक्रिया का गहन अध्ययन करना और उसके बारे में जानकारी एकत्र करना।
- प्रश्न पूछना (Asking Questions) : अवलोकन के आधार पर महत्वपूर्ण प्रश्न तैयार करना।
- अनुमान लगाना (Hypothesis) : संभावित स्पष्टीकरण या अनुमान विकसित करना जिसे परीक्षण किया जा सके।
- प्रयोग करना (Experimentation) : अनुमानों का परीक्षण करने के लिए नियंत्रित परिस्थितियों में प्रयोग करना।
- विश्लेषण (Analysis) : एकत्रित डेटा का विश्लेषण करना और परिणामों का मूल्यांकन करना।
- निष्कर्ष निकालना (Conclusion) : परिणामों के आधार पर निष्कर्ष निकालना और अगर आवश्यक हो तो नए प्रश्नों का निर्माण करना।

2. तर्क और विवेक (Reason and Logic)

- विधिपूर्वक विचार (Systematic Thinking) : तर्कशक्ति का उपयोग करके समस्याओं का समाधान खोजना और जटिल विषयों को समझना।
- समालोचनात्मक चिंतन (Critical Thinking) : साक्ष्य और तर्कों का समालोचनात्मक मूल्यांकन करना, पूर्वाग्रहों को पहचानना और ठोस निष्कर्ष तक पहुँचना।
- द्वंद्वात्मक तर्क (Dialectical Reasoning) : विपरीत दृष्टिकोणों का मूल्यांकन करना और संश्लेषण के माध्यम से एक बेहतर समझ विकसित करना।

3. अनुभवजन्य अनुसंधान (Empirical Research)

- डेटा संग्रहण (Data Collection) : प्रायोगिक अध्ययन, सर्वेक्षण, साक्षात्कार, और फील्ड वर्क के माध्यम से वास्तविक डेटा एकत्र करना।

- सांख्यिकी और गणितीय विश्लेषण (Statistical and Mathematical Analysis) : जटिल डेटा का विश्लेषण करने के लिए सांख्यिकी का उपयोग करना।

4. प्रमाण आधारित दृष्टिकोण (Evidence Based Approach)

- साक्ष्य की समीक्षा (Reviewing Evidence) : सभी उपलब्ध प्रमाणों का निष्पक्ष और समग्र मूल्यांकन करना।
- मेटा–विश्लेषण (Meta & analysis) : विभिन्न अध्ययनों के परिणामों को संयोजित करके सामान्य निष्कर्ष निकालना।

5. समूह संवाद और परामर्श (Group Dialogue and Consultation)

- विशेषज्ञों से परामर्श (Consulting Experts) : किसी विशेष क्षेत्र में विशेषज्ञों की सलाह लेना।
- सहयोगी अनुसंधान (Collaborative Research) : कई व्यक्तियों या संगठनों के साथ मिलकर ज्ञान की खोज करना।

6. प्रौद्योगिकी और उपकरण (Technology and Tools)

- उन्नत उपकरणों का उपयोग (Use of Advanced Tools) : अनुसंधान और विश्लेषण के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग करना, जैसे कि कंप्यूटर सिमुलेशन, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आदि।
- डिजिटल डेटाबेस और ऑनलाइन संसाधन (Digital Databases and Online Resources) : वैज्ञानिक लेख, शोध पत्र, और डेटा संग्रह के लिए इंटरनेट और डिजिटल प्लेटफार्मों का उपयोग करना।

7. संवेदनशीलता और मान्यता (Perception and Cognition)

- अनुभवजन्य संवेदनशीलता (Empirical Sensitivity) : सूक्ष्म विवरणों को पहचानने की क्षमता को विकसित करना।
- संज्ञानात्मक मान्यता (Cognitive Recognition) : जानकारी का अर्थपूर्ण तरीके से प्रसंस्करण और व्याख्या करना।

8. आत्मचिंतन और ध्यान (Introspection and Meditation)

- आत्मनिरीक्षण (Introspection) : अपने विचारों और भावनाओं का गहन अध्ययन करना।
- ध्यान और योग (Meditation and Yoga) : मानसिक स्पष्टता और अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए ध्यान की तकनीकों का अभ्यास करना।

9. सांस्कृतिक और सामाजिक अध्ययन (Cultural and Social Studies)

- सांस्कृतिक प्रथाओं का अध्ययन (Study of Cultural Practices) : विभिन्न संस्कृतियों और समाजों का अध्ययन करके ज्ञान की विविधता को समझना।
- सामाजिक दृष्टिकोण का मूल्यांकन (Evaluation of Social Perspectives) : विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में ज्ञान का मूल्यांकन करना।

इन विधियों के माध्यम से यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया अधिक सटीक, विश्वसनीय और उपयोगी हो जाती है। इसका उद्देश्य न केवल सत्य को खोजना है बल्कि उसे समझने और व्यावहारिक रूप में लागू करना भी है। यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने का विश्लेषण करने का अर्थ है आत्मनिरीक्षण और ध्यान के माध्यम से सत्य और वास्तविकता की गहन समझ विकसित करना। यह विधि विशेष रूप से पूर्वी दर्शन और धार्मिक परंपराओं में महत्वपूर्ण मानी जाती है, जहां आत्मनिरीक्षण को ज्ञान प्राप्ति का एक मुख्य साधन माना गया है। आइए आत्मक दर्शन के माध्यम से यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करें।

1. **आत्मनिरीक्षण (Introspection) :**

- स्वयं की पहचान : आत्मनिरीक्षण के माध्यम से व्यक्ति स्वयं की गहरी पहचान और समझ विकसित करता है। यह विचारों, भावनाओं और इच्छाओं के प्रति जागरूकता बढ़ाता है।
- आत्मचिंतन : जीवन की घटनाओं और उनके प्रभावों पर चिंतन करने से व्यक्ति अपने अनुभवों से सबक सीख सकता है और यथार्थ ज्ञान की ओर अग्रसर हो सकता है।

2. **ध्यान (Meditation) :**

- मानसिक स्पष्टता : ध्यान के अभ्यास से व्यक्ति मानसिक स्पष्टता और शांति प्राप्त करता है, जिससे विचारों का अवलोकन और उनका नियंत्रण संभव होता है।
- वर्तमान में जीना : ध्यान व्यक्ति को वर्तमान में केंद्रित रहने की शिक्षा देता है, जिससे वह जीवन की वास्तविकताओं को अधिक स्पष्ट रूप से समझ सकता है।

3. **विपश्यना और समाधि (Vipassana and Samadhi) :**

- विपश्यना (Vipassana) : यह आत्मनिरीक्षण की एक विधि है जिसमें व्यक्ति शरीर और मन की गहराइयों का अवलोकन करता है, जिससे वास्तविकता की अंतर्दृष्टि प्राप्त होती है।
- समाधि (Samadhi) : यह एक ध्यान की अवस्था है जिसमें व्यक्ति आत्म–साक्षात्कार की स्थिति में पहुँचता है और यथार्थ ज्ञान का अनुभव करता है।

4. **अध्यात्मिक साधनाएं (Spiritual Practices) :**

- प्रभु चिंतन (Contemplation of God) : धार्मिक और अध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन, मंत्र जाप, और ईश्वर के प्रति समर्पण से व्यक्ति यथार्थ ज्ञान को प्राप्त कर सकता है।
- सद्गुरु का मार्गदर्शन (Guidance of a Spiritual Teacher) : सद्गुरु की शिक्षाओं और उनके साथ समय बिताने से व्यक्ति अपने भीतर की वास्तविकता को समझ सकता है।

5. **दर्शनशास्त्र (Philosophy) :**

- अध्यात्मिक तत्त्वज्ञान (Metaphysical Philosophy) : विभिन्न दर्शनों के माध्यम से जीवन और ब्रह्मांड के गूढ़ रहस्यों को समझने का प्रयास किया जाता है।
- तर्क और विवेक (Logic and Reason) : तर्कशक्ति और विवेक के माध्यम से सत्य की खोज की जाती है और भ्रांतियों का निवारण किया जाता है।

6. **योग और प्राणायाम (Yoga and Pranayama):**

- शारीरिक और मानसिक संतुलन : योग और प्राणायाम के अभ्यास से शरीर और मन के बीच संतुलन स्थापित होता है, जिससे व्यक्ति अधिक केंद्रित और जागरूक बनता है।
- प्राणायाम : श्वास–प्रश्वास के माध्यम से ऊर्जा का संचरण और चेतना की उच्चतर अवस्थाओं को प्राप्त करना।

7. **अनुभवजन्य सत्य (Empirical Truth) :**

- व्यक्तिगत अनुभव : व्यक्ति अपने जीवन के अनुभवों के माध्यम से सत्य का बोध प्राप्त करता है। ये अनुभव बाहरी और आंतरिक दोनों हो सकते हैं।
- प्रयोग और अवलोकन : वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में प्रयोग और अवलोकन के माध्यम से व्यक्ति सत्य और यथार्थता का पता लगाता है।

8. सांस्कृतिक और सामाजिक पहलू (Cultural and Social Aspects)

- सांस्कृतिक मान्यताएं : विभिन्न संस्कृतियों की मान्यताओं और परंपराओं का अध्ययन करके व्यक्ति यथार्थ ज्ञान की विविधता को समझ सकता है।
- सामाजिक अनुभव : समाज के साथ अंतःक्रिया और सामाजिक अनुभव व्यक्ति की यथार्थ ज्ञान की खोज में सहायक होते हैं।

आत्मक दर्शन में यथार्थ ज्ञान की प्रासंगिकता –

- सत्य की खोज : आत्मक दर्शन के माध्यम से यथार्थ ज्ञान की खोज व्यक्ति को उसकी अंतर्निहित सत्यता और अस्तित्व के वास्तविक उद्देश्य तक पहुंचाने का प्रयास करती है।
- आंतरिक शांति : आत्मनिरीक्षण और ध्यान के माध्यम से प्राप्त यथार्थ ज्ञान व्यक्ति को आंतरिक शांति और संतोष की स्थिति में पहुँचाता है।
- समग्र विकास : यह ज्ञान व्यक्ति के मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक विकास में सहायक होता है, जिससे उसका व्यक्तित्व अधिक संतुलित और समृद्ध बनता है।

आत्मक दर्शन के माध्यम से यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना एक गहन और व्यक्तिगत प्रक्रिया है। यह व्यक्ति को स्वयं के भीतर की सच्चाईयों और बाहरी दुनिया के वास्तविकताओं को समझने की क्षमता प्रदान करता है। आत्मनिरीक्षण, ध्यान, योग, और दर्शनशास्त्र के माध्यम से प्राप्त यह ज्ञान व्यक्ति के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन लाता है और उसे अधिक संपूर्ण और संतुलित बनाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. अनुभवजन्य अनुसंधान किस प्रकार ज्ञान प्राप्ति में सहायक है?

   _____
   _____

2. प्रमाण आधारित दृष्टिकोण में मेटा विश्लेषण क्या है?

   _____
   _____

3. आत्म चिंतन और ध्यान किस प्रकार ज्ञान प्राप्ति में सहायक है?

   _____
   _____

4. यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के विश्लेषण का क्या अर्थ है?

   _____
   _____

3.4 विश्लेषणात्मक दर्शन (Analytical Philosophy)

ज्ञान प्राप्ति का विश्लेषणात्मक दर्शन एक गहन अध्ययन है जो इस बात की जांच करता है कि ज्ञान क्या है, यह कैसे प्राप्त होता है, इसकी सीमाएँ क्या हैं, और हम इसे कैसे प्रमाणित कर सकते हैं? यह दर्शनशास्त्र की एक शाखा है जो ज्ञान के स्वभाव, स्रोत, और मान्यताओं की जांच करती है। यहाँ ज्ञान प्राप्ति के विश्लेषणात्मक दर्शन के मुख्य पहलुओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है:

1. ज्ञान का स्वभाव (Nature of Knowledge) :

परंपरागत रूप से ज्ञान को सत्य, विश्वास, और औचित्य के रूप में परिभाषित किया जाता है।

- सत्य : ज्ञान का एक महत्वपूर्ण घटक सत्य है। एक धारणा को ज्ञान के रूप में तभी स्वीकार किया जा सकता है जब वह वास्तविकता के अनुरूप हो।
- विश्वास : व्यक्ति को जिस चीज में ज्ञान है, उसमें विश्वास भी होना चाहिए। बिना विश्वास के कोई दावा ज्ञान के रूप में मान्य नहीं हो सकता।
- औचित्य : ज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि धारणा उचित औचित्य के साथ प्रमाणित हो। यह सुनिश्चित करता है कि धारणा संयोगवश नहीं बल्कि तर्कसंगत प्रमाण के आधार पर सही है।

2. ज्ञान के स्रोत (Sources of Knowledge)

- इन्द्रियजन्य ज्ञान : यह ज्ञान इंद्रियों के माध्यम से प्राप्त होता है। इसे 'संवेदी ज्ञान' भी कहते हैं। अनुभवजन्य ज्ञान परीक्षण और अवलोकन पर आधारित होता है।
- तार्किक ज्ञान : यह ज्ञान तर्क और विवेक पर आधारित होता है। इसमें गणितीय प्रमेय और तार्किक निष्कर्ष शामिल हैं जो अनुभव से स्वतंत्र होते हैं।
- प्रमाणिक ज्ञान : यह वह ज्ञान है जो अनुभव से पहले या बिना किसी अनुभव के प्राप्त होता है, जैसे कि गणितीय तथ्य और तर्कशास्त्रीय नियम।
- अनुभवपरक ज्ञान : यह ज्ञान अनुभव के बाद प्राप्त होता है और इसके लिए इंद्रियों का अनुभव आवश्यक होता है।
- प्रमाणित ज्ञान : यह ज्ञान प्रमाणित स्रोतों, जैसे कि विशेषज्ञों, ग्रंथों, और प्रामाणिक दस्तावेजों से प्राप्त होता है।

3. ज्ञान की सीमाएँ (Limits of Knowledge)

- अज्ञेयवाद (Agnosticism) : यह दृष्टिकोण मानता है कि कुछ मामलों में सत्य को पूरी तरह से जानना असंभव है, जैसे कि परमात्मा का अस्तित्व या ब्रह्मांड की अंतिम प्रकृति।
- संदेहवाद (Skepticism) : यह दर्शन मानता है कि ज्ञान के दावों पर संदेह किया जाना चाहिए। इसमें धारणा यह होती है कि हम किसी भी ज्ञान को पूर्ण रूप से सुनिश्चित नहीं कर सकते।
- सापेक्षवाद (Relativism) : यह दृष्टिकोण मानता है कि ज्ञान और सत्य सापेक्ष होते हैं, और वे संस्कृति, समाज, या व्यक्तिगत दृष्टिकोण के आधार पर बदल सकते हैं।

4. ज्ञान की संरचना (Structure of Knowledge)

- मूलन्याय (Foundationalism) : यह दृष्टिकोण कहता है कि ज्ञान की संरचना एक नींव पर आधारित होती है, और अन्य सभी ज्ञान उस नींव पर निर्मित होते हैं।

- सिद्धांतवाद (Coherentism) : यह मानता है कि ज्ञान की एक जटिल संरचना होती है जिसमें विभिन्न विश्वास और ज्ञान आपस में जुड़े होते हैं और परस्पर समर्थन करते हैं।

5. ज्ञान के प्रमाण और औचित्य (Justification and Evidence)

- तर्कसंगत औचित्य (Rational Justification) : यह विधि तर्कशक्ति और तर्कों का उपयोग करके ज्ञान के दावों को औचित्य प्रदान करती है
- अनुभवजन्य औचित्य (Empirical Justification) : इसमें ज्ञान के दावों को प्रमाणित करने के लिए अनुभव और अवलोकन का उपयोग किया जाता है।
- प्रमाणिक औचित्य (Authoritative Justification) : ज्ञान के दावों को प्रमाणित करने के लिए विशेषज्ञों और प्रमाणित स्रोतों का सहारा लिया जाता है।

6. ज्ञान के सिद्धांत (Theories of Knowledge)

- संवादात्मक सिद्धांत (Correspondence Theory) : यह सिद्धांत कहता है कि ज्ञान तब सही होता है जब यह वास्तविकता के साथ मेल खाता है।
- व्यावहारिक सिद्धांत (Pragmatic Theory) : यह सिद्धांत कहता है कि ज्ञान की सत्यता उसके व्यावहारिक उपयोगिता के आधार पर आंकी जाती है। यदि ज्ञान उपयोगी और व्यावहारिक है, तो यह सत्य है।
- सामंजस्य सिद्धांत (Coherence Theory) : यह सिद्धांत कहता है कि ज्ञान तब सही होता है जब यह व्यक्ति के अन्य विश्वासों और धारणाओं के साथ संगत होता है।

7. ज्ञान की समस्याएँ (Problems of Knowledge)

- ज्ञान दायित्व की समस्या (Gettier Problem) : यह समस्या दर्शाती है कि सत्य, विश्वास, और औचित्य के बावजूद, कभी–कभी ज्ञान के दावे त्रुटिपूर्ण हो सकते हैं। इसे Gettier समस्या के रूप में जाना जाता है।
- प्रेरण की समस्या (Problem of Induction) : यह समस्या इस पर आधारित है कि भविष्य के बारे में किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अतीत के अनुभवों का उपयोग करना हमेशा सटीक नहीं हो सकता।
- ज्ञान के स्रोतों में असंगति (Inconsistency in Sources of Knowledge) : विभिन्न स्रोतों से प्राप्त ज्ञान में विरोधाभास हो सकता है, जिससे वास्तविकता का सटीक निर्धारण कठिन हो सकता है।

8. समकालीन विचार (Contemporary Views)

- उत्तर आधुनिकता (Post Modernism) : यह दृष्टिकोण तर्क करता है कि सत्य और ज्ञान संदर्भों में और व्यक्ति के दृष्टिकोण में भिन्न हो सकते हैं। यह सभी निश्चित ज्ञान के दावों पर संदेह करता है।
- संबद्ध ज्ञान : यह दृष्टिकोण मानता है कि ज्ञान केवल एक विशेष संदर्भ में अर्थपूर्ण होता है और संदर्भ बदलने पर उसका अर्थ भी बदल सकता है।

विश्लेषणात्मक दर्शन ज्ञान के स्वरूप, स्रोत, सीमाएँ, और औचित्य की जटिलताओं का गहन विश्लेषण प्रदान करता है। यह दर्शनशास्त्र का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है जो हमें हमारे विश्वासों, धारणाओं, और जानकारी की जांच करने में सक्षम बनाता है, जिससे हम अधिक सटीक और तार्किक समझ विकसित कर सकते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

5. विश्लेषणात्मक दर्शन से क्या अभिप्राय है?

_____

_____

6. ज्ञान के प्रमाण और औचित्य क्यों आवश्यक है?

_____

_____

7. ज्ञान के संवादात्मक सिद्धांत से आप क्या समझते है?

_____

_____

8. ज्ञान के सिद्धांत क्या है?

_____

_____

3.5 वैज्ञानिक विधि

वैज्ञानिक विधि में वैज्ञानिक जांच–पड़ताल ज्ञान का एक महत्वपूर्ण स्रोत होता है जो तर्कसंगत सोच, अनुभवजन्य अवलोकन, और नियंत्रित प्रयोगों के माध्यम से विश्वसनीय और सत्यापित जानकारी प्रदान करता है। यह विधि प्राकृतिक दुनिया की घटनाओं को समझने के लिए एक व्यवस्थित दृष्टिकोण प्रदान करती है। यहां वैज्ञानिक जांच–पड़ताल के रूप में ज्ञान के स्रोत का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत है।

3.5.1 वैज्ञानिक विधि के चरण

वैज्ञानिक विधि ज्ञान प्राप्ति की आधारभूत प्रक्रिया है जो निम्नलिखित चरणों पर आधारित होती है:

- अवलोकन (Observation) – किसी घटना या समस्या का अवलोकन करना और उससे संबंधित डेटा एकत्र करना। उदाहरण के लिए, पौधों की वृद्धि पर प्रकाश का प्रभाव देखना।
- प्रश्न निर्माण (Question Formulation) – अवलोकन के आधार पर एक विशिष्ट प्रश्न तैयार करना। जैसे– क्या अधिक प्रकाश पौधे की वृद्धि को प्रभावित करता है?
- अनुमान लगाना (Hypothesis Formation) – एक संभावित उत्तर या स्पष्टीकरण देना जिसे परीक्षण किया जा सके। उदाहरण – यदि पौधों को अधिक प्रकाश मिलता है, तो उनकी वृद्धि तेज होती है।
- प्रयोग और परीक्षण (Experimentation and Testing) – नियंत्रित परिस्थितियों में प्रयोगों का संचालन करना। यह सुनिश्चित करता है कि परिणाम पूर्वाग्रह से मुक्त और पुनरावृत्त हो सकते हैं।
- डेटा विश्लेषण (Data Analysis) – प्रयोगों के परिणामों का विश्लेषण करना और यह निर्धारित करना कि वे अनुमान का समर्थन करते हैं या नहीं।
- निष्कर्ष (Conclusion) – विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकालना और यह तय करना कि क्या अनुमान सही था या नहीं।

- प्रकाशन और समीक्षा (Publication and Peer Review) – परिणामों को वैज्ञानिक समुदाय के साथ साझा करना ताकि अन्य शोधकर्ता समीक्षा कर सकें और प्रयोग को पुनः सत्यापित कर सकें।

3.5.2 वैज्ञानिक विधि की विशेशताएं

वैज्ञानिक विधि की प्रक्रिया में किये जाने वाले प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1. अनुभवजन्य साक्ष्य (Empirical Evidence)

- डेटा संग्रह (Data Collection) – वैज्ञानिक विधि का एक महत्वपूर्ण हिस्सा अनुभवजन्य डेटा का संग्रहण और मापन है। डेटा को सावधानीपूर्वक एकत्र और विश्लेषण किया जाता है, जो ज्ञान का एक ठोस आधार प्रदान करता है।
- मापन और विश्लेषण (Measurement and Analysis) – वैज्ञानिक जांच के दौरान, मापन की सटीकता और डेटा विश्लेषण की गहराई सुनिश्चित की जाती है, जिससे गलतफहमियों से बचा जा सके।

2. दोहराव और सत्यापन (Replication and Verification)

- दोहराव (Replication) – वैज्ञानिक निष्कर्ष की विश्वसनीयता के लिए विभिन्न शोधकर्ताओं द्वारा प्रयोगों को दोहराना आवश्यक है। यदि परिणाम लगातार मिलते हैं, तो निष्कर्ष को सत्यापित माना जाता है।
- सत्यापन (Verification) – अन्य वैज्ञानिकों द्वारा निष्कर्षों की समीक्षा और सत्यापन सुनिश्चित करता है कि परिणाम मान्य और प्रामाणिक हैं।

3. नियंत्रण और भिन्नता (Control and Variation)

- नियंत्रित प्रयोग (Controlled Experiment) – यह सुनिश्चित करता है कि परिणाम केवल उस कारक के कारण होते हैं जिसका परीक्षण किया जा रहा है। अन्य सभी कारकों को नियंत्रित या अपरिवर्तित रखा जाता है।
- भिन्नता का परीक्षण (Testing Variation)– विभिन्न चर के प्रभावों का अध्ययन किया जाता है ताकि यह समझा जा सके कि वे परिणामों को कैसे प्रभावित करते हैं

4. वैज्ञानिक सिद्धांत और नियम (Scientific Theories and Laws)

- सिद्धांत (Theory) – एक वैज्ञानिक सिद्धांत व्यापक साक्ष्य के समर्थन से समर्थित होता है और यह कई प्रयोगों और अवलोकनों के आधार पर बनाया जाता है। उदाहरण : सापेक्षता का सिद्धांत (Theory of Relativity)
- नियम (Law) – एक वैज्ञानिक नियम एक सार्वभौमिक सत्य होता है जो प्रयोगात्मक सबूतों के आधार पर स्थापित होता है। उदाहरण : गुरुत्वाकर्षण का नियम (Law of Gravity)

5. तर्कसंगत सोच और आलोचनात्मक विश्लेषण (Rational Thinking and Critical Analysis)

- तर्कसंगतता (Rationality) – वैज्ञानिक जांच में तर्कसंगतता महत्वपूर्ण होती है, जिससे धारणाओं को तर्कपूर्ण तरीके से परीक्षण किया जा सके।
- आलोचनात्मक दृष्टिकोण (Critical Perspective) – वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समस्याओं का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जाता है, जिससे पूर्वाग्रह और त्रुटियाँ पहचानी जा सकें।

6. अनुसंधान और विकास (Research and Development)

- अनुसंधान (Research) – वैज्ञानिक जांच नए विचारों और अवधारणाओं का अनुसंधान करती है, जिससे ज्ञान की सीमाएँ बढ़ती हैं।
- विकास (Development) – वैज्ञानिक ज्ञान का व्यावहारिक अनुप्रयोग नए उत्पादों और प्रौद्योगिकियों के विकास में मदद करता है।

8. साक्ष्य आधारित नीति निर्माण (Evidence Based Policy Making)

- नीति निर्माण (Policy Making) – वैज्ञानिक जांच के आधार पर बनाई गई नीतियाँ अधिक प्रभावी और विश्वसनीय होती हैं, क्योंकि वे अनुभवजन्य साक्ष्य पर आधारित होती हैं।
- समस्या समाधान (Problem Solving) – वैज्ञानिक जांच वास्तविक दुनिया की समस्याओं के समाधान के लिए साक्ष्य–आधारित दृष्टिकोण प्रदान करती है।

3.5.3 सीमाएँ और चुनौतियाँ (Limitations and Challenges)

- अनिश्चितता (Uncertainty) – कुछ वैज्ञानिक जांच में अनिश्चितता बनी रहती है, जिससे निष्कर्षों की सटीकता प्रभावित हो सकती है।
- नैतिक चुनौतियाँ (Ethical Challenges) – कुछ वैज्ञानिक अनुसंधानों में नैतिक प्रश्न उठ सकते हैं। जैसे कि मानव प्रयोग।
- वित्तीय संसाधन (Financial Resources) : वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होती है, जो कभी–कभी सीमित हो सकते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

9. वैज्ञानिक जाँच पड़ताल पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

_____

_____

10. अनुभवजन्य साक्ष्य का क्या महत्व है?

_____

_____

11. वैज्ञानिक सिद्धांत और नियम में क्या अंतर है?

_____

_____

12. तर्कसंगत सोच से क्या तात्पर्य है?

_____

_____

13. आलोचनात्मक विश्लेषण का क्या महत्व है?

_____

_____

14. साक्ष्य आधारित नीति निर्माण क्यों आवश्यक है?

_____

_____

3.6 द्वंदात्मक पद्धति

ज्ञान प्राप्ति की द्वंदात्मक पद्धति एक दर्शनशास्त्रीय दृष्टिकोण है, जो विचारों और अवधारणाओं के बीच विरोधाभासों और अंतर्विरोधों के माध्यम से ज्ञान को प्राप्त करने पर जोर देता है। इस पद्धति का उद्देश्य विचारों के विकास को समझना और नई अंतर्दृष्टियों को प्राप्त करना है।

3.6.1 द्वंदात्मक पद्धति को प्रक्रिया एवं कार्य

इस विधि में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया व कार्य निम्नवत हैं–

1. **थीसिस और एंटीथीसिस** – थीसिस एक मौजूदा विचार या प्रस्तावना है जबकि एंटीथीसिस थीसिस के विरोध में खड़ा विचार। द्वंदात्मक पद्धति के अनुसार, किसी भी विचार के विकास में थीसिस और एंटीथीसिस के बीच संघर्ष होता है, जिससे नया ज्ञान उत्पन्न होता है।
2. **संलयन (सिंथेसिस)** – संघर्ष के परिणामस्वरूप एक नया विचार या समाधान सामने आता है, जिसे संलयन (सिंथेसिस) कहा जाता है। यह नया विचार पुराने विचारों की समझ में सुधार लाता है और उनमें समायोजन करता है।
3. **निरंतर प्रक्रिया** – द्वंदात्मक पद्धति एक निरंतर प्रक्रिया है, जिसमें संलयन नए थीसिस के रूप में काम करता है और आगे नए एंटीथीसिस के साथ टकराकर नए संलयन की ओर बढ़ता है। इस प्रकार, ज्ञान का विकास निरंतर चलता रहता है।

3.6.2 दर्शनशास्त्र में द्वंदात्मक पद्धति

- **हेगेल का द्वंदवाद** – जर्मन दार्शनिक गे. डब्ल्यू. एफ. हेगेल ने द्वंदात्मक पद्धति को विस्तारपूर्वक समझाया। उन्होंने इसे एक प्रक्रिया के रूप में देखा जिसमें विचार समय के साथ विकसित होते हैं।
- **मार्क्सवादी द्वंदवाद** – कार्ल मार्क्स ने द्वंदात्मक भौतिकवाद को विकसित किया, जो समाज और इतिहास के भौतिक और आर्थिक पहलुओं पर जोर देता है।

3.6.3 द्वंदात्मक पद्धति का उपयोग

- नई परिकल्पनाओं और सिद्धांतों के विकास में द्वंदात्मक पद्धति का उपयोग होता है।
- समाज और राजनीतिक संरचनाओं के विश्लेषण और विकास को समझने में मदद करती है।
- शिक्षा और सीखने यह पद्धति शिक्षण और ज्ञान अर्जन की प्रक्रियाओं को गहराई से समझने का अवसर प्रदान करती है।
- यह पद्धति न केवल दार्शनिक दृष्टिकोण को प्रस्तुत करती है, बल्कि यह वैज्ञानिक और सामाजिक क्षेत्रों में भी अत्यधिक प्रभावी है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

15. द्वंदात्मक पद्धति से क्या आशय है?

_____

_____

16. संलयन किसे कहते हैं?

_____

_____

17. द्वंदात्मक पद्धति का प्रयोग कहाँ किया जाता है?

_____

_____

3.7 सारांश

ज्ञान प्राप्ति का विश्लेषणात्मक दर्शन एक गहन अध्ययन है जो इस बात की जांच करता है कि ज्ञान क्या है, यह कैसे प्राप्त होता है, इसकी सीमाएँ क्या हैं, और हम इसे कैसे प्रमाणित कर सकते हैं। यह दर्शनशास्त्र की एक शाखा है जो ज्ञान के स्वभाव, स्रोत, और मान्यताओं की जांच करती है। वैज्ञानिक जांच–पड़ताल ज्ञान का एक महत्वपूर्ण स्रोत है जो तर्कसंगत सोच, अनुभवजन्य अवलोकन, और नियंत्रित प्रयोगों के माध्यम से विश्वसनीय और सत्यापित जानकारी प्रदान करता है। यह विधि प्राकृतिक दुनिया की घटनाओं को समझने के लिए एक व्यवस्थित दृष्टिकोण प्रदान करती है। वैज्ञानिक जांच में तर्कसंगतता महत्वपूर्ण होती है, जिससे धारणाओं को तर्कपूर्ण तरीके से परीक्षण किया जा सके। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समस्याओं का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जाता है, जिससे पूर्वाग्रह और त्रुटियाँ पहचानी जा सकें। ज्ञान प्राप्ति की द्वंदात्मक पद्धति एक दर्शनशास्त्रीय दृष्टिकोण है, जो विचारों और अवधारणाओं के बीच विरोधाभासों और अंतर्विरोधों के माध्यम से ज्ञान को प्राप्त करने पर जोर देता है। इस पद्धति का उद्देश्य विचारों के विकास को समझना और नई अंतर्दृष्टियों को प्राप्त करना है।

3.8 अभ्यास के प्रश्न

1. आत्मक दर्शन के माध्यम से यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के विभिन्न पहलुओं का वर्णन कीजिए।
2. ज्ञान प्राप्ति के साधन के रूप में विश्लेषणात्मक दर्शन की विवेचना कीजिए।
3. वैज्ञानिक विधि द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के लिए विभिम्न चरण क्या है?
4. तर्कसंगत सोच और आलोचनात्मक विश्लेषण किस प्रकार ज्ञान प्राप्ति में सहायक है।
5. ज्ञान प्राप्ति की विधि के रूप में द्वंदात्मक पद्धति का वर्णन कीजिए।

3.9 चर्चा के बिंदु

1. ज्ञान प्राप्ति के नवीन विधियों के बारे में चर्चा कीजिए।

3.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. डेटा – प्रायोगिक अध्ययन, सर्वेक्षण, साक्षात्कार, और फील्ड वर्क के माध्यम से वास्तविक डेटा एकत्र करना।
2. मेटा–विश्लेषण –विभिन्न अध्ययनों के परिणामों को संयोजित करके सामान्य निष्कर्ष निकालना।
3. अपने विचारों और भावनाओं का गहन अध्ययन करना, मानसिक स्पष्टता और अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए ध्यान की तकनीकों का अभ्यास करना।
4. यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने का विश्लेषण करने का अर्थ है आत्मनिरीक्षण और ध्यान के माध्यम से सत्य और वास्तविकता की गहन समझ विकसित करना।
5. एक गहन अध्ययन है जो इस बात की जांच करता है कि ज्ञान क्या है, यह कैसे प्राप्त होता है, इसकी सीमाएँ क्या हैं, और हम इसे कैसे प्रमाणित कर सकते हैं।
6. तर्कशक्ति, तर्कों का उपयोग करके ज्ञान के दावों को औचित्य प्रदान करती है। ज्ञान के दावों को प्रमाणित करने के लिए अनुभव और अवलोकन का उपयोग किया जाता है।
7. संवादात्मक सिद्धांत – यह सिद्धांत कहता है कि ज्ञान तब सही होता है जब यह वास्तविकता के साथ मेल खाता है।

8. ज्ञान के सिद्धांत हैं– (i). संवादात्मक सिद्धांत (ii). व्यावहारिक सिद्धांत (iii). सामंजस्य सिद्धांत

9. वैज्ञानिक जांच–पड़ताल ज्ञान का एक महत्वपूर्ण स्रोत है जो तर्कसंगत सोच, अनुभवजन्य अवलोकन, और नियंत्रित प्रयोगों के माध्यम से विश्वसनीय और सत्यापित जानकारी प्रदान करता है।

10. अनुभवजन्य डेटा का संग्रहण और मापन है। डेटा को सावधानीपूर्वक एकत्र और विश्लेषण किया जाता है, जो ज्ञान का एक ठोस आधार प्रदान करता है।

11. वैज्ञानिक सिद्धांत व्यापक साक्ष्य के समर्थन से समर्थित होता है और यह कई प्रयोगों और अवलोकनों के आधार पर बनाया जाता है, जबकि वैज्ञानिक नियम एक सार्वभौमिक सत्य होता है जो प्रयोगात्मक सबूतों के आधार पर स्थापित होता है।

12. वैज्ञानिक जांच में तर्कसंगतता महत्वपूर्ण होती है, जिससे धारणाओं को तर्कपूर्ण तरीके से परीक्षण किया जा सके।

13. वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समस्याओं का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जाता है, जिससे पूर्वाग्रह और त्रुटियाँ पहचानी जा सकें।

14. वैज्ञानिक जांच के आधार पर बनाई गई नीतियाँ अधिक प्रभावी और विश्वसनीय होती हैं, क्योंकि वे अनुभवजन्य साक्ष्य पर आधारित होती हैं।

15. ज्ञान प्राप्ति की द्वंदात्मक पद्धति एक दर्शनशास्त्रीय दृष्टिकोण है, जो विचारों और अवधारणाओं के बीच विरोधाभासों और अंतर्विरोधों के माध्यम से ज्ञान को प्राप्त करने पर जोर देता है।

16. संघर्ष के परिणामस्वरूप एक नया विचार या समाधान सामने आता है, जिसे संलयन (सिंथेसिस) कहा जाता है। यह नया विचार पुराने विचारों की समझ में सुधार लाता है और उनमें समायोजन करता है।

17. नई परिकल्पनाओं और सिद्धांतों के विकास में द्वंदात्मक पद्धति का उपयोग होता है।

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. उपाध्याय, हरिशंकर (1996), ज्ञानमीमांसा के मूल प्रश्न, पेनमैन पब्लिशर्स, दिल्ली।
2. गुप्ता, एस0 पी0 (2017), अनुसंधान संदर्शिका, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. मदान, पूनम (2022), ज्ञान एवं पाठ्यक्रम, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. शर्मा, बी० के० एवं कोली, एल० एन० (2002), ज्ञान जगत–संरचना एवं विकास, वाई० के० पब्लिशर्स, आगरा।
5. Armstrong, D. M. (1973), Blief, Truth and Knowledge, Cambridge University Press, London.
6. Velasquez, Manuel (2007), Philosophy Wardworth, Cengage learning, India private limited, New Delhi.

खण्ड– 02 : ज्ञान का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य

खण्ड परिचय

ज्ञान का दार्शनिक परिप्रेक्ष्य (Philosophical Perspective of Knowledge), इस पाठ्यक्रम का **यह द्वितीय खंड** है। यह खंड वास्तविकता के सिद्धांत एवं यथार्थ व स्वत्व/सत्ता की मूलभूत–मौलिक प्रकृति, अस्तित्व, अस्मिता, परिवर्तन, दिक् और समय, कार्य–कारणता, अनिवार्यता तथा संभावना, ज्ञान, नैतिक मूल्यों या आचरण के प्रति आपकी समझ विकसित करने, इसके विभिन्न प्रकार और जानने की प्रक्रिया को समझने की दिशा में आपको प्रगति की ओर उन्मुख करेंगा। इस खंड के अर्न्तगत तीन इकाईयां हैं और प्रत्येक इकाई आपके क्षेत्र में आपके समझने की दृष्टिकोण को विस्तार प्रदान करेगी।

इकाई 04 में तत्व मीमांसा (Metaphysics) का विस्तृत अध्ययन करेंगे जिसके अन्तर्गत अस्तित्व, पहचान, परिवर्तन, स्थान और समय, कार्य– कारण, आवश्यकता और संभावना के सिद्धांतों का अध्ययन किया जाता है तथा साथ ही जो ब्रह्मांड के परम तत्व/ईश्वर की खोज के साथ उसके परम स्वरूप का विवेचन करती है।

इकाई 05 में ज्ञान मीमांसा (Epistemology) का विस्तृत अध्ययन करेंगे जिसके अन्तर्गत ज्ञान की व्युत्पत्ति, अवधारणा, प्रकृति, स्रोत, इसके विविध प्रकारों, तार्किकता, प्रसंगिकता, विश्वास, औचित्य व सीमाओं का निर्धारण किया जाता है।

इकाई 06 में मूल्य मीमांसा (Axiology) का विस्तृत अध्ययन करेंगे जिसके अन्तर्गत जीवन के बौद्धिक, नैतिक, सौन्दर्यपरक व आध्यात्मिक मूल्यों की चर्चा के साथ उसका विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

इकाई– 4 : तत्वमीमांसा– अर्थ, अवधारणाएँ और शिक्षा में इसके शैक्षिक निहितार्थ

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 इकाई के उद्देश्य

4.3 तत्व मीमांसा का अर्थ एवं अवधारणा

4.4 तत्व मीमांसा की परिभाषाएँ

4.5 तत्व मीमांसा के तत्व

4.6 शिक्षा के क्षेत्र में तत्वमीमांसा का प्रभाव

4.7 तत्व मीमांसा एवं शिक्षा के उद्देश्य

4.8 तत्व मीमांसा एवं पाठ्यक्रम

4.9 तत्व मीमांसा तथा शिक्षक एवं शिक्षार्थी

4.10 ज्ञान मीमांसा एवं तत्व मीमांसा का सम्बन्ध

4.11 तत्व मीमांसा में आत्मा, ईश्वर तथा जगत सम्बन्धी धारणाओं का शैक्षिक प्रभाव

4.12 तत्व मीमांसा के शैक्षिक निहितार्थ

4.13 सारांश

4.14 अभ्यास के प्रश्न

4.15 चर्चा के बिन्दु

4.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

मनुष्यों की जिज्ञासा एवं बौद्धिक क्षमता ने उसे अब तक के ज्ञात पूरे ब्रह्मांड का सबसे शक्तिशाली जीव बना दिया। हमने किसी भी वस्तु अथवा विषय को उसकी मूल अवस्था में कभी भी स्वीकार नहीं किया। अर्थात केवल विषयों के उपभोग करने तक ही इंसानी प्रवृत्ति सीमित नहीं रही है, वरन हमने सदैव यह प्रश्न किया है कि यदि किसी वस्तु का अस्तित्व है तो वह क्यों हैं। विश्व इतिहास में अनेक ऐसे दर्शनशास्त्री हुए हैं जिन्होंने न केवल स्वयं से बल्कि पूरी मानवता से समय–समय पर कुछ आसान प्रतीत होने वाले बेहद जटिल प्रश्न पूछे हैं। जैसे समय क्या है। अंतरिक्ष क्या है। क्या वास्तव में भगवान् हैं। क्या हमारे आसपास की दुनिया वास्तविक है। क्या संख्याएँ मौजूद हैं। क्या हम वास्तव में स्वतंत्र रूप से सोचते हैं। चेतना क्या है। वास्तविकता ऐसी क्यों है। किसी चीज के होने का क्या मतलब है। कुछ भी क्यों मौजूद है। इन प्रश्नों के उत्तर की खोज में अनेक महान बुद्धिजीवियों ने अपना पूरा जीवन समर्पित कर दिया, एवं इन प्रश्नों के अनुरूप दर्शनशास्त्र की एक उन्मुख शाखा का निर्माण कर दिया, जिसे आमतौर पर तत्वमीमांसा (Metaphysics) से सम्बोधित किया जाता है।

4.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य तत्वमीमांसा के बारे में गहराई से जानना है। तत्वमीमांसा के बारे में बिना कोई न तो तत्वमीमांसा की समस्याओं को समझ सकता है और न ही दार्शनिकों द्वारा बताये गए उपायों को जान सकता है। सभी महान दार्शनिक तत्वमीमांसक हुए हैं तथा उन्होंने सत् की समस्याओं का विवेचन किया है। यह विभिन्न प्रणालियों का सारांश मात्र नहीं है, वरन् इसका उद्देश्य विभिन्न तत्वमीमांसक प्रणालिओं के अन्तर्संबंध को भी प्रकट करना है। तत्वमीमांसा सभी सत्ताओं के पूर्ण अन्तिम कारण से सम्बंधित है। यह उस अन्तिम कारण को पहचानने और इसकी प्रकृति और क्रिया के बारे में जानने के लिए प्रयासरत रही है।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. तत्वमीमांसा की परिभाषाओं एवं उसके अर्थ को समझ सकेंगे।
2. दर्शन के तत्वमीमांसा का गहन ज्ञान प्राप्त कर उसके तत्वों को विश्लेषित कर सकेंगे।
3. तत्वमीमांसा का विषय क्षेत्र पर विस्तृत चर्चा कर सकेंगे।
4. तत्वमीमांसा को दर्शनशास्त्र की अन्य शाखाओं से सम्बद्ध स्थापित कर उसे समझ सकेंगे।

4.3 तत्व मीमांसा का अर्थ एवं अवधारणा

ज्ञान से सम्बन्धित इन प्रश्नों का मानव मस्तिष्क विश्व में तत्व या सत्ता से सम्बन्धित प्रश्नों का समाधान ढूँढ़ना चाहता है। सत्ता या तत्व क्या है। उसका स्वरूप क्या है। सत्ता एक है या दो या अनेक। सत्ता भौतिक है या आध्यात्मिक। यह जगत जो दिखायी देता है, क्या यही कारण वास्तविक रूप है या आभास मात्र है। यदि आभास मात्र है तो इसका वास्तविक स्वरूप क्या होगा। ऐसे ही अनेक प्रश्नों का उत्तर हमें दर्शन की जिस शाखा से प्राप्त होता है उसको तत्व मीमांसा या सत्ता शास्त्र कहते हैं।

तत्व या सत्ता मीमांसा दर्शन की वह शाखा है जिसमें सत्ता या तत्व के अस्तित्व एवं उससे सम्बन्धित अनेक मूलगत प्रश्नों का अध्ययन किया जाता है। तत्व मीमांसा को अँग्रेजी में 'मेटाफिजिक्स' (Metaphysics) कहते हैं। शाब्दिक दृष्टि से देखें तो यह दो शब्दों से मिलकर बना है मेटा+फिजिग्स (Meta + Physics)। जिसमें Meta का अर्थ है 'के परे' एवं Physics का अर्थ है भौतिक जगत। अर्थात् 'मेटाफिजिक्स' का तात्पर्य उस शास्त्र से है जो भौतिक जगत से परे के विषयों का अध्ययन करता है अर्थात् तत्व मीमांसा के अन्तर्गत भौतिक जगत 'से परे' परम् सत्ता का अध्ययन किया जाता है। परम सत्ता का क्या स्वरूप है। इसकी सत्या क्या है। परम सत्ता में कुछ लोग एकतत्ववाद, तो कुछ द्वितत्ववाद एवं कुछ बहुतत्ववाद को मानते हैं। ये समस्त प्रश्न तत्व मीमांसा के हैं जिसका उत्तर इस विचारधारा के माध्यम से दिया गया है।

4.4 तत्वमीमांसा की परिभाषाएँ

तत्वमीमांसा को अन्तिम कारणों और सत् के प्रथम और सर्वाधिक सर्वव्यापी सिद्धांतों का अध्ययन समझा जा सकता है। अन्तिम कारणों को निकटवर्ती के कारणों, जो तात्कालिक रूप से कुछ विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करते हैं, से पृथक माना जाता है। अन्तिम कारण या सर्वोच्च कारण, इनके विपरीत, दिये गये क्षेत्र में समस्त प्रभावों तक अपना प्रभाव रखता है। तत्वमीमांसा ब्रह्माण्ड के पूर्ण अन्तिम कारण को बताती है। यह इस कारण को पहचानने और उसकी प्रकृति और क्रिया के सम्बंध में अधिक जानने के लिए प्रयास करती है।

तत्वमीमांसा समस्त वस्तुओं के प्रथम और सर्वाधिक सर्वव्यापी सिद्धांतों का अध्ययन करती है। उन कारणों के अतिरिक्त, जो अपने प्रभाव विषयों के प्रभावों पर बाहर से डालते हैं, स्वयं प्रभावों में ऐसे आंतरिक तत्व होते हैं जो उन्हें निर्मित करते हैं और उनके होने और कार्य करने के ढ़ंगों को प्रभावित करते हैं। इन्हें सामान्यतः सिद्धांत कहते हैं। तत्वमीमांसा प्रथम और सर्वाधिक सर्वव्यापी सिद्धातों की खोज करती है, जो कि वे सिद्धांत होते हैं जो मूल रूप से सभी वस्तुओं को निर्मित करते हैं। इस प्रकार, दार्शनिक वास्तविकता के कुछ विशिष्ट पक्षों को सर्वाधिक आधारभूत तत्व और अन्य सब कुछ की उत्पत्ति (उदाहरण के लिए परिवर्तन या परिणाम, मात्रा, सार इत्यादि) का कारक समझते हैं। जब कोई व्यक्ति किसी तत्व को प्रत्येक विषय का प्रथम व

आन्तरिक सिद्धांत समझता है तब वह पहले से ही तत्वमीमांसीय स्तर पर गहनता के साथ चर्चा कर रहा होता है।

अरस्तू द्वारा तत्वमीमांसा सम्बन्धी विचार : प्राचीन यूनानी दार्शनिक अरस्तू की द मेटाफिजिक्स (The Metaphysics), जो दो हजार साल पहले लिखी गई थी, को अब तक के सबसे महान दार्शनिक कार्यों में से एक माना जाता है। पुस्तक के केंद्र में तीन प्रश्न हैं। सबसे पहले, अस्तित्व क्या है, और दुनिया में किस तरह की चीजें मौजूद हैं। दूसरे, चीजें कैसे बनी रह सकती हैं, और फिर भी प्राकृतिक दुनिया में हम अपने बारे में जो बदलाव देखते हैं, उससे कैसे गुजर सकते हैं। और अंत में, इस दुनिया को कैसे समझा जा सकता है। अरस्तू के द्वारा इन सवालों के दिए गए सटीक उत्तरों ने दुनिया भर के विचारकों को नई दिशा प्रदान किया है।

अन्ना मर्मोडोरो (Anna Marmodoro) द्वारा तत्वमीमांसा का परिचय : तत्वमीमांसा दर्शन के इतिहास के व्यापक संदर्भों में उन्होंने, पदार्थ, गुण, तौर–तरीके,सार, कार्य–कारण, नियतत्ववाद (Determinism) और स्वतंत्र इच्छा पर चर्चा करते हुए नवीनतम सिद्धांतों और तर्कों की रूपरेखा तैयार की हैं।

4.5 तत्व मीमांसा के तत्व

तत्व मीमांसा के स्वरूप को और अधिक स्पष्ट करने के लिये यदि दार्शनिकों के विचारों को देखें तो स्पष्ट होता है कि सभी ने एक परम सत्ता को स्वीकार किया है और उसी की तलाश से जगत की सार्थकता को सिद्ध करने का प्रयास किया। उसी सत्ता को किसी ने ईश्वर, किसी ने द्रव्य, किसी ने आब्सोल्यूट और किसी ने ब्रह्म कहा है। तत्व मीमांसा तत्व मीमांसा को ही अध्यात्मशास्त्र भी कहा जाता है। तत्व, ज्ञान, सत्ता के यथार्थ स्वरूप के विषय में द्वारा आत्मा जगत एवं ईश्वर के विषय में खोज करता है। तत्व मीमांसा के अन्तर्गत विभिन्न शाखाएँ हैं जिनका व्यापक अध्ययन इस मीमांसा के अन्तर्गत किया जाता है।

ईश्वर सम्बन्धी तत्वज्ञान– इसमें ईश्वर के अस्तित्त्व, उसके स्वरूप, उसकी एकरूपता अथवा अनेकरूपता, इन सबके प्रमाण आदि से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार किया जाता है।

आत्म सम्बन्धी– इसके अन्तर्गत आत्मा के स्वरूप के विषय में खोज की जाती है। इसमें मुख्य प्रश्न होते हैं– मैं कौन हूँ। सुकरात ने दर्शन की मुख्य समस्या 'अपनी आत्मा को जानना' माना है। उपनिषदों में 'अम आात्मा ब्रह्म' और 'अहम् ब्रह्मसि' जैसे सूत्र आत्मा के स्वरूप के परिचायक हैं।

ब्रह्माण्ड विज्ञान– इसमें ब्रह्माण्ड के स्वरूप, उसके अक्षर और नश्वर तत्त्वों, उसके सादि और सात तत्त्वों, इन विभिन्न तत्त्वों के आपसी सम्बन्धों से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार किया जाता है।

सृष्टि विज्ञान– इसमें ब्रह्माण्ड के विकास से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं पर विचार किया जाता है, जैसे ब्रह्माण्ड एक है अथवा अनेक। इसकी रचना भौतिक तत्त्वों के संयोग से हुई है अथवा आध्यात्मिक के संयोग से, आदि के द्वारा।

सृष्टि शास्त्र– इस क्षेत्र में सृष्टि की उत्पत्ति अथवा रचना से सम्बन्धित समस्याओं, जैसे सृष्टि की उत्पत्ति हुई है तो किस प्रकार हुई है। यदि उत्पत्ति न होकर रचना हुई है तो वह किस प्रकार हुई है। आदि पर विचार किया जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. तत्व मीमांसा का अर्थ बताइए।

.....

.....

2. तत्व मीमांसा में किसका अध्ययन किया जाता है।

.....

.....

3. तत्व मीमांसा के अन्तर्गत किन प्रमुख समस्याओं का अध्ययन करते हैं।

.....

.....

4.6 शिक्षा के क्षेत्र में तत्व मीमांसा का प्रभाव

मानव की उत्पत्ति के विषय में सबसे अधिक ध्यान तत्व मीमांसा के अन्तर्गत दिया जाता है चूँकि मानव ब्रह्माण्ड का एक भाग है तथा शिक्षा भी मानव का विकास करती है। इसलिये ब्रह्माण्ड के तत्त्वों का शिक्षा से सीधा सम्बन्ध है। शिक्षा के उद्देश्य और अन्य कार्यक्रम मानव और उसके ब्रह्माण्ड हेतु निश्चित होते हैं।

शिक्षा का उद्देश्य पाठन पद्धति अनुशासन–प्रशासन में तत्व मीमांसा आधार का कार्य करती है। शिक्षा की संरचना ही व्यक्ति के लिये होती है। व्यक्ति को इस संसार में अनुकूल हेतु तैयार किया जाता है। तत्व मीमांसा इस दृष्टि से हमारी सहायता करती है कि शिक्षा में कौन–सा दृष्टिकोण अपनाया जाय। अनुकूलन का अथवा दैवीय व्यवस्था का ईश्वर के सम्बन्ध में अनेक अभिधारणाओं पर तत्व मीमांसा में प्रकाश डाला जाता है। इस प्रकार भौतिक तथा अभौतिक तत्त्वों को समझने में तत्व मीमांसा बहुत सहायता करती है।

बालक के लिये अनुशासन, नियन्त्रण तथा स्वतन्त्रता का पक्ष बहुत महत्त्वपूर्ण है। उसके स्वता और नियन्त्रण की कोई सीमा होनी चाहिये। इस दृष्टि से भी तत्व मीमांसा बालक के निर्माण के प्रयास में अध्यापक एवं अभिभावक की बड़ी मदद करता है।

शिक्षा की प्रक्रिया किसी निश्चित सिद्धान्त पर आधारित होती है। सिद्धान्त के आधार पर ही शिक्षा का परिणाम प्राप्त होता है। सिद्धान्त निर्माण में तत्व मीमांसा का योगदान होता है। सत्ता आदि पर सम्यक् ज्ञान प्रदान करने में तत्व मीमांसा बालक की अधिकाधिक सहायता करता है। कहा जा सकता है कि तत्व मीमांसा के सिद्धान्त और सिद्धान्त से शिक्षा रूप विशाल वृक्ष विकसित होता है। तत्व मीमांसा का काम है कि यह निश्चित करे कि संसार के किसी एक पहलू अथवा समस्त पहलुओं के विषय में वास्तविकता क्या है।

यदि शिक्षा को हम देखें तो विद्यालयों और शिक्षा से सम्बन्धित समस्त सामग्रियों को भी वास्तविकताओं की समस्या का सामना करना पड़ता है क्योंकि उनका प्रत्येक स्तर पर प्रकृति के असंख्य पदार्थों से सामना करना पड़ता है। उनका तत्व मीमांसा विषयक चिन्तन विश्व की उस स्थिति तक पहुँचता है जिसकी वे अपने बालकों को परिचित कराना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में वास्तविकता की उन परस्पर घोर विपक्षी संकल्पनाओं को उदाहरण के लिये लीजिए जो कैथोलिक साम्प्रदायिक विद्यालयों को सार्वजनिक शालाओं से अलग करती हैं अथवा लाखों शिक्षित वयस्कों पर फलित ज्योतिषी का अन्धविश्वासी प्रभाव अथवा बहुत से अध्यापकों की इस बात में भी अयोग्यता कि वे बहुत ही साधारण बातों का भी वर्णन कर सकें (जैसे यह कह सकना कि प्रकृति में सर्वत्र विकास हो रहा है) जिन्हें वैज्ञानिक दूरवीक्षक और अणुवीक्षक यन्त्रों ने स्पष्ट कर दिया है। जो शैक्षिक तन्त्र अपनी ही तात्त्विक मान्यताओं की पूरी जाँच नहीं करता है उनके लिये अक्सर यह कहा जाता हैं कि तात्त्विक शालायें नवयुवकों को वास्तविक संसार का सामना करने के लिये तैयार नहीं करती हैं।

एक प्रकार से यह सत्य भी है। किन्तु अद्‌भुत बात यह है कि वे लोग जो इस आरोप पर सबसे अधिक जोर लगाते हैं स्वयं तात्त्विक दृष्टि से अदूरदर्शिता के शिकार होते हैं। वे वास्तविकता को ऐसी दृष्टि से देखते हैं जो पूर्वाग्रह प्रचार अठि–पूजा अथवा दूसरे ऐसे प्रभावों से दूषित है और इसका उनको अनुमान भी नहीं होता। जिन शालाओं की वे आलोचना करते हैं उनकी अपेक्षा उनके स्वयं के निदान की अधिक आवश्यकता है। इस प्रकार, 'वास्तविक संसार के विषय में शिक्षा' एक बड़े दायित्व का वक्तव्य है यदि हमें इस दायित्व का सफलता से सामना करना है तो यह काम वास्तविकता की किसी वक्र संकल्पनाओं के आगे झुककर नहीं बरन् उस सेवा का निरन्तर उपयोग करके सम्भव जो दर्शन और विशेषतः ज्ञान मीमांसा से ही प्राप्त होता है।

4.7 तत्व मीमांसा एवं शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा का उद्देश्य उस परम तत्व अर्थात् भगवान् की खोज से होना चाहिए। इसी विचार से सभी धर्मों में धार्मिक शिक्षा और आध्यात्मिक शिक्षा का विकास हुआ है। धार्मिक व आध्यात्मिक शिक्षा के द्वारा लोगों को यह बताया गया है कि परमसत्ता जो कि सर्वशक्तिमान, सर्वत्र विद्यमान और सर्वत्र स्थायी रहने वाली है, में विश्वास करते हुए ही जीवनयापन करना चाहिए और जीवन के विभिन्न सुखों–दुःखों अर्थात् परिस्थितियों में भी धैर्य और विश्वास बनाये रखना चाहिए। उस परम शक्ति से मिलने की इच्छा करने वाले व्यक्ति को आदर्श प्रकार का होना चाहिए, उसे अपने में निष्ठा और आदर्श गुण को विकसित करना चाहिए. ऐसे आदर्शों, सम्प्रत्ययों और विचारों की खोज करना चाहिए और उनका पालन करना चाहिए जिनसे व्यक्ति का जीवन सफल हो जाये, इसीलिए हिन्दू धर्म में और कुछ अन्य धर्मों में भी मोक्ष का सम्प्रत्यय विकसित हुआ है।

4.8 तत्व मीमांसा एवं पाठ्यक्रम

सर्वोच्च तत्व को समझ पाने और उस तक पहुँचने के लिए जो धार्मिक अथवा आध्यात्मिक शिक्षा दी जाये उसमें उस परम तत्व की विशेषताओं, उसकी वास्तविकता, उसको प्राप्त करने की विधियों आदि का पाठ्यक्रम में समावेश होना चाहिए।

4.9 तत्व मीमांसा तथा शिक्षक एवं शिक्षार्थी

शिक्षकों और विद्यार्थियों को कुछ विशेष प्रकार के आदशों और मूल्यों, सोचने और समझने के तौर–तरीकों को अपनाना होगा जिससे कि वे संसार के नश्वर और निरर्थक विचारों में न पड़े रहें। उनको ऐसा विषय पढ़ाया जाना चाहिए जिनसे कि उनका ध्यान परम तत्व की ओर तथा जीवन की वास्तविकता का चिन्तन करने में ही लगा रहे। चाहे आस्तिकवादी हों या नास्तिकवादी, वे सभी परम तत्व की आवश्यकता और महत्त्व को स्वीकार करते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

4. तत्व मीमांसा के क्षेत्र के अन्तर्गत हम किसका अध्ययन करते हैं?

.....

.....

5. तत्वमीमांसा शिक्षा के किन घटकों को अधिक प्रभावित करती है?

.....

.....

6. तत्व मीमांसा कितने प्रकार की होती है?

.....

.....

4.10 ज्ञान मीमांसा एवं तत्व मीमांसा का सम्बन्ध

ज्ञान मीमांसा एवं तत्व मीमांसा में गहन सम्बन्ध है। दर्शन में जब भी हम तत्व या सत्ता पर विचार करते हैं तो तुरन्त यह प्रश्न सामने खड़ा हो जाता है कि क्या जिस तत्व या सत्ता के विषय में हम जानना चाहते हैं

उनको जानने का साधन वैध है। प्रमाणिक है। क्या इससे हम उसे जान सकते हैं। अतः हमारे जानने के साधन पर ही प्रश्न उठ खड़ा होता है। यहाँ फिर प्रश्न होता है कि तत्व मीमांसा के पहले क्या ज्ञान मीमांसा जरूरी है (अर्थात् क्या ज्ञान मीमांसा तत्व मीमांसा पर आधारित है। या फिर तत्व मीमांसा ज्ञान मीमांसा पर आधारित है। यदि यही मान लिया जाय कि दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं अर्थात् परस्पराश्रित हैं तो फिर प्रश्न होगा कि कौन सबसे पहले होगा। पहले ज्ञान मीमांसा आवश्यक है कि तत्व मीमांसा।

तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा से पूर्व–दर्शन में ऐसा भी देखा जाता है कि तत्व मीमांसा का स्थान ज्ञान मीमांसा से पूर्व है। धर्म मीमांसा में तथा कुछ अन्य दर्शनों में (जैसे भारतीय दर्शन) जहाँ मोक्ष की कामना से आगे बढ़ते हैं, वहाँ ईश्वर आत्मा आदि सत्ताओं को पहले स्वीकार कर लिया जाता है। इनमें आस्था और विश्वास बना रहता है। जहाँ धर्म ग्रन्थों में विश्वास किया जाता है। वहाँ तत्व या सत्ता पहले और बाद में ज्ञान की मीमांसा की जाती है। आत्म सत्ता आत्मानुभूति पर आधारित है यहाँ तत्व मीमांसा साधन, साध्य दोनों हैं। आत्म ही आत्म ज्ञाता है।

4.11 तत्व मीमांसा में आत्मा, ईश्वर तथा जगत सम्बन्धी धारणाओं का शैक्षिक प्रभाव

दर्शनशास्त्र के ये चिरन्तन प्रश्न हैं–जगत क्या है। इन प्रश्नों के उत्तर शिक्षाशास्त्र के लिये बहुत महत्त्व रखते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर पर यह निर्भर करेगा कि हमारी छात्र सम्बन्धी संकल्पना क्या है। हमें किस प्रकार का शिक्षक चाहिये। शिक्षक और छात्र के सम्बन्ध क्या हो। क्या शिक्षा सभी को समान रूप से प्रदान होनी चाहिये अथवा केवल कुलीन वर्ग को। इसके साथ ही हमारे जीवन के मूल्य भी इन प्रश्नों के उत्तर से हुये बिना नहीं रहते। उदाहरणतः यदि जगत भौतिक तत्व से निर्मित है तथा मनुष्य भी भौतिक तत्त्वों से बना हुआ विकसित प्राणी है। मनुष्य और जगत का सम्बन्ध केवल दो भौतिक घटकों का सम्बन्ध मात्र है तो छात्र सम्बन्धी हमारी संकल्पना भी इसी प्रकार की होगी, भौतिकवादी दर्शन में विश्वास रखने वाला शिक्षक बालक को एक भौतिक पदार्थ के रूप में ही देखेगा जो अपनी नियति का न तो निर्माता है न नियन्ता ही। उसकी अध्यापन विधि भी उद्दीपन–अनुक्रिया के सिद्धान्त पर आधारित होगी। जीवन के मूल्य भी सर्वथा भोगवादी तथा इस ठोस जगत् में सुखपूर्वक रह सकने से सम्बद्ध होंगे। दूसरी ओर यदि जगत आत्मिक तत्त्वों से बना हुआ स्वीकार किया जाय तो सारी संकल्पनायें एवं अवधारणायें उसी के अनुरूप बदल जायेंगी। इस प्रकार दर्शन की जीव–जगत् सम्बन्धी अवधारणा छात्र संकल्पना, छात्र–शिक्षक सम्बन्ध पाठ्यक्रम तथा शैक्षिक मूल्यों को प्रभावित करता है।

4.12 तत्व मीमांसा के शैक्षिक निहितार्थ

वस्तुतः तत्व–मीमांसा की जीव–जगत् सम्बन्धी अवधारणा छात्र की संकल्पना, छात्र शिक्षक सम्बन्ध, पाठ्यक्रम तथा शैक्षिक मूल्यों को प्रभावित करती है।

उदाहरणार्थ, भौतिकवादी दर्शन में आस्था रखने वाला शिक्षक बालक को एक भौतिक पदार्थ के रूप में ही देखेगा तथा उसकी शिक्षण विधि भी उद्दीपन–अनुक्रिया के सिद्धान्त पर आधारित होगी। ऐसी स्थिति में जीवन के मूल्य भी भोगवादी तथा ठोस जगत में सुखपूर्वक रह सकने से सम्बद्ध होंगे। लेकिन इसके विपरीत यदि जगत् तत्त्वों से बना हुआ स्वीकार किया जायेगा तो छात्र तथा शिक्षा सम्बन्धी अवधारणायें उसी के अनुरूप बदल जायेंगी।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

7. तत्व मीमांसा का मुख्य अंग क्या माना जाता है?

.....

.....

8. तत्वमीमांसा रहित दर्शन माना जाता है–

.....

.....

9. द्रव्य का अर्थ समझाइए।

.....

.....

4.13 सारांश

तत्वमीमांसा निरंतर विश्व में स्थित चीजों तथा उसकी वास्तविक प्रकृति को सुनिश्चित करने के सम्बन्ध में प्रयास करती है। यह सदैव अस्तित्व और यथार्थ के प्रश्न में उलझी रहती है। इसमें सदैव सामान्य रूप से आधारभूत और व्यापक विमर्श प्रयुक्त किए जाते हैं। यह इसलिये ज्ञान की आधारभूत शाखा कही जाती है क्योंकि सत् अथवा उसकी परम प्रकृति से सम्बन्धित प्रश्न अन्य सभी विशिष्ट अध्ययनों को स्वयं में समाविष्ट कर लेते हैं। अस्तित्व एवं यथार्थ सम्बन्धित प्रश्न सम्भावित और वास्तविक सत्ताओं सम्बंधी प्रश्नों और कारणता सम्बन्धित प्रश्नों के साथ विशिष्ट विज्ञानों की सीमाओं को समाप्त कर देते हैं और सभी प्रकार की विषय–वस्तुओं को स्वयं में समाहित कर लेते हैं। अतः तत्वमीमांसा अपनी अति सामान्यता के कारण सर्वव्यापी होती है। पुनः गणित और भौतिक विज्ञान जैसे विज्ञान विषय विशिष्ट प्रकार के अध्ययन हैं जो सत् के किसी विशिष्ट पक्ष या भाग से सम्बन्धित हैं। इसके विपरीत तत्वमीमांसा सम्पूर्ण जगत से सम्बन्धित है। प्रायः विशिष्ट विज्ञानों के परीक्षण कुछ निश्चित पूर्वमान्यताओं को स्वीकार करके आगे बढ़ते हैं और तत्वमीमांसा का कार्य उन्हें स्पष्ट प्रमाणित अथवा सटीकता प्रदान करना है। इसके विपरीत, तत्वमीमांसा बिना किसी पूर्ण मान्यता के आगे बढ़ती है और इसलिये पूर्णतः आत्मालोचित होती है। तत्वमीमांसीय कथन अपनी विशिष्ट निश्चितता शुद्ध बुद्धि से प्राप्त करते हैं। परिणाम स्वरूप तत्वमीमांसा न केवल सर्वाधिक आधारभूत अध्ययन है वरन् यह अपने परिणामों के लिये केवल बुद्धि के प्रयासों पर निर्भर होती है।

4.14 अभ्यास के प्रश्न

1. तत्वमीमांसा का अर्थ लिखे एवं उसकी अवधारणा को समझाइए।
2. तत्वमीमांसा के तत्वों की विवेचना कीजिए।
3. शिक्षा के क्षेत्र में तत्वमीमांसा के प्रभावों का वर्णन कीजिए।
4. तत्वमीमांसा और शिक्षा के उद्देश्य एवं पाठ्यक्रम का विवेचन कीजिए।
5. तत्वमीमांसा के शैक्षिक निहितार्थों को लिखिए।

4.15 चर्चा के बिन्दु

1. तत्वमीमांसा के महत्वपूर्ण बिन्दुओं अस्तित्व पहचान, कार्य–कारण, सम्भावना, आत्मा, ईश्वर, जगत, ब्रह्माण्ड आदि पर चर्चा कीजिए।

4.16 बोध प्रश्नों क उत्तर

1. तत्व मीमांसा को अँग्रेजी में 'मेटाफिजिक्स' (Metaphysics) कहते हैं। शाब्दिक दृष्टि से देखें तो यह दो शब्दों से मिलकर बना है (Meta+Physics)। जिसमें मेटा का अर्थ है 'के पर' एवं Physics का अर्थ है

भौतिक जगत। अर्थात् 'मेटाफिजिक्स' का तात्पर्य उस शास्त्र से है जो भौतिक जगत से परे के विषयों का अध्ययन करे।

2. तत्व मीमांसा में आत्मा, जगत और परमात्मा का अध्ययन किया जाता है।
3. अस्तित्व की प्रकृति क्या है। सत्य क्या है ।, प्रत्यय क्या है।, तथ्य क्या है।, विश्व एक है अथवा अनेक हैं। आदि तत्व मीमांसा की प्रमुख समस्याएँ प्रमुख समस्याओं का अध्ययन करते हैं।
4. तत्व मीमांसा के क्षेत्र में सदवस्तु का ज्ञान, आत्मा का दर्शन और सृष्टिशास्त्र को सम्मिलित किया जाता है।
5. तत्व मीमांसा का शिक्षा के आदर्शों एवं उद्देश्यों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।
6. तीन प्रकार– तत्व विज्ञान (Ontology), विश्व विज्ञान (cosmology), एवं ईश्वर विज्ञान (Theology)
7. तत्व–विज्ञान
8. प्रयोजनवाद
9. जो कर्म एवं गुण का आधार है और वस्तुओं का समवायी कारण है, वही द्रव्य है।

4.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. गुटेक, जी. एल. (2009). न्यू पर्सपेक्टिव्स ऑन फिलॉसिफीज ऑफ एजूकेशन, न्यू जर्सी पियर्सन कोलम्बिया, ओहियो अपर मंडल रिवर इंक।
2. इग्नू (2016) कंटेम्परेरी इंडिया एंड एजूकेशन (बीईएसएस–122. बी.एड.). ब्लॉक–3 फिलोसिफिक्ल पर्सपेक्टिव्स ऑफ एजूकेशन, नई दिल्लीरू इग्नू।
3. केनिलर, जी. एफ. (1967), फाउण्डेशन्स ऑफ एजूकेशन द्वितीय संस्करण, कैलिफोर्नियारू कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी, लॉस एंजिल्स।
4. मोहंती, जगन्नाथ (1994). इंडियन एजूकेशन इन दि इमर्जिंग सोसाइटी, नई दिल्लीः स्टलिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।
5. सक्सेना, एन. आर. एस. (2009). प्रिन्सिपल्स ऑफ एजूकेशन आर, लाल बुक डिपो मेरठ।
6. शर्मा, के. आर. (2002). फिलोसिफी ऑफ एजूकेशन तृतीय संस्करण दिल्ली. अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूशन।
7. सूरी. ए. एवं सोढ़ी टी. एस. (1988)ः फिलोसिफिक्ल एंड सोशिओलोजिकल फाउंडेशन ऑफ एजूकेशन ।
8. जैक्सन पी. हर्शबेल (1988), प्लूटार्कस पोर्ट्रेट ऑफ सुकरात इलिनोइस क्लासिक्ल स्टडीज, वाल्यूम 13, नंबर 2 प्लूटार्क (फॉल 1988). यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनोइस प्रेस द्वारा प्रकाशित।

इकाई– 5 : ज्ञान मीमांसा : अर्थ, अवधारणाएं और शिक्षा में इसके शैक्षिक निहितार्थ

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

5.2 इकाई के उद्देश्य

5.3 ज्ञान का अर्थ एवं अवधारणा

5.4 ज्ञान मीमांसा की परिभाषा

5.5 ज्ञान मीमांसा का महत्व

5.6 ज्ञान मीमांसा का क्षेत्र

5.7 ज्ञान का स्वरूप

5.8 ज्ञान के प्रकार

5.9 ज्ञान सम्बन्धी सिद्धांत

5.10 ज्ञान के स्रोत

5.11 ज्ञान प्राप्त करने की विधियाँ

5.12 ज्ञान मीमांसा का शैक्षिक निहितार्थ

5.13 ज्ञान मीमांसा एवं दर्शन में सम्बन्ध

5.14 सारांश

5.15 अभ्यास के प्रश्न

5.16 चर्चा के बिन्दु

5.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.18 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

आदर्शवाद चेतना को ज्ञान की संज्ञा देता है, जो ज्ञानेन्द्रियों और ज्ञानइन्द्रियों से परे अनुभूतियों से सम्बन्धित है, जबकि प्रयोजनवाद और प्रकृतिवाद ज्ञानेन्द्रियों के प्रत्यक्षीकरण को ही ज्ञान मानते हैं।

दर्शन के क्षेत्र में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं कठिन समस्या ज्ञान से सम्बन्धित है। ज्ञान से सम्बन्धित कई प्रश्न हमारे मन मस्तिष्क में उभरते हैं। जैसे मानव ज्ञान का क्या स्वरूप है। क्या ज्ञान को जानने के लिये मानव मस्तिष्क सक्षम है। क्या हम कोई एसा ज्ञान रखते हैं जिस पर हम निर्भर करें। या केवल लोकमत या अन्दाज (Guesses) से ही सन्तुष्ट रहना चाहिये। क्या हमें तथ्य पूर्व अनुभव तक ही सीमित रहना चाहिये या हम इस योग्य भी हैं कि इन्द्रियाँ जो कुछ प्रकट करती हैं उसके बारे में भी जान ले अर्थात् क्या हम इन्द्रिय जगत से परे भी किसी जगत का भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं आदि ऐसे अनेक प्रश्नों का अध्ययन ज्ञान मीमांसा के अन्तर्गत किया जाता है।

दर्शनशास्त्र की एक प्रमुख शाखा के रूप में ज्ञान शास्त्र को मान्यता प्राप्त है। यदि दर्शन शब्द की प्रकृति को देखें तो इसमें ज्ञान के प्रति अनुराग निहित है। सूचना और विज्ञान भिन्न हैं। सूचनायें बुद्धि से आलोपित होती है। मानव हितार्थ प्रयुक्त होती है और ज्ञान का रूप ग्रहण कर लेती है। वस्तुस्थिति यह है कि

ज्ञान की दिशा मुक्तिदायक होती है। ज्ञान को सद्गुण (Knowledge is virtue) तथा सच्चा मित्र बताया गया है। वह व्यक्ति के नेत्र पर पड़े अज्ञानता के पर्दे को हटाता है।

ज्ञान का क्षेत्र और महत्त्व अत्यन्त व्यापक है। व्यापकता तथा अन्दर की गहराई के आधार पर ज्ञान व्यक्ति की दृष्टि बनता है। ज्ञान की महत्ता तथा व्यापकता के कारण ही फिक्टे ने दर्शनशास्त्र को ज्ञान के विज्ञान की मान्यता दी है। ज्ञान शास्त्र के अन्तर्गत अनेक विषयों में अत्यन्त गहराई से ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसके अन्तर्गत अंग्राकित समस्याओं पर विचार किया गया है–ज्ञान प्राप्त करने के साधन सत्य और असत्य का स्वरूप, प्रमाण और अ–प्रमाण का स्वरूप, भ्रम और भ्रम का निवारण हैं।

अर्थात् ज्ञान मीमांसा ज्ञान की सीमाओं का अध्ययन है, जिसमें प्रश्न के प्रत्युत्तर की खोज की जाती है। इस संसार में सत्य को जानना, साथ ही ज्ञान की प्रकृति, सीमायें, विशेषतायें व उसके प्रादुर्भाव आदि का अध्ययन इसके अन्तर्गत किया जाता है। कहा जा सकता है कि ज्ञान मीमांसा के अन्तर्गत ज्ञान में विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में अध्ययन कर सत्य की खोज का प्रयास किया जाता है। ज्ञान मीमांसा को और अधिक विस्तृत रूप से समझने के लिये हमें निम्न बिन्दुओं का भी अध्ययन करना होगा।

5.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य छात्र का ज्ञान मीमांसा एवं उसके स्वरूप व सीमाओं से परिचय कराना है। इसमें यह जानेगे की जब कोई यह कहता है कि वह जानता है या जानने में असमर्थ है और हम कितना जानते हैं, या जान सकते हैं, इन सबका क्या अर्थ होता है। हम ज्ञान का शाब्दिक और पारंपरिक दोनों परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे और इसके साथ–साथ हम 'जानना' (to know) का सामान्य रूप में भी अध्ययन करेंगे। हम अपनी क्षमता के अनुसार वास्तविकता को जानने को लेकर संक्षिप्त रूप से इसके विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. ज्ञान की परिभाषाओं को समझ सकेंगे।
2. ज्ञान और विश्वास में अन्तर को स्पष्ट कर सकेंगे।
3. ज्ञान के विरोधी के रूप में संदेहवाद की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।
4. ज्ञान को प्राप्त करने में बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियों की भूमिका के सम्बन्ध में विचार व्यक्त कर सकेंगे।
5. ज्ञानमीमांसा के कार्यक्षेत्र के ज्ञान से अवगत हो सकेंगे।
6. विश्व को समझने के लिए ज्ञानमीमांसा के महत्व को जान सकेंगे।

5.3 ज्ञान का अर्थ एवं अवधारणा

ज्ञान के लिये एक विशेष अंग्रेजी का पद एपिस्टिमोलॉजी (Epistemology) प्रयुक्त होता है जो ग्रीक शब्द 'Episteme' (एपिस्टिमे) और Logos 'लोगोस' से बना है। 'एपिस्टिमे' (Episteme) का अर्थ है 'नॉलेज' (Knowledge) अथवा ज्ञान 'लोगोस' का अर्थ 'विज्ञान' से होता है अर्थात् शाब्दिक अर्थ को देखते हुये कहा जा सकता है कि 'एपिस्टेमोलाजी' (Epistemology) ज्ञान का विज्ञान है अथवा ज्ञान का सिद्धान्त, जिसे दार्शनिक दृ ष्टि से ज्ञान मीमांसा कहा जा सकता है।

भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोण से ज्ञान की विभिन्न अवधारणायें मिलती हैं। सामान्य रूप से भारतीय विचारधारा के अनुसार 'ज्ञान' का अर्थ (शब्द कोष के अनुसार) ज्ञान (ज्ञा. ल्युट्) जानना, बोध, जानकारी, सच्ची जानकारी, सम्यक् बोध, पदार्थ को ग्रहण करने वाली मन की आवृत्ति शास्त्रानुशीलन आदि से आ का अवगम, आत्म साक्षात्कार, बुद्धि वृत्ति आदि हैं।

ज्ञान को 'प्रमा' भी कहते है। मीमांसा दर्शन में कहा गया है कि 'प्रमा' अज्ञात तथा सत्य पदार्थ का ज्ञान है। शब्दकोष के अनुसार, प्रमा – शुद्ध बोध, यथार्थ ज्ञान, जो जैसा है उसको उसी रूप में जानना है। भारतीय दर्शन में ज्ञान को यथार्थ और अयथार्थ दो रूपों में रखते हैं–ज्ञान यथार्थ (Valid) है तो प्रमा और यदि अयथार्थ (Invalid) हैं तो अप्रमा है।

ज्ञान मीमांसा के अन्तर्गत तीन प्रमुख प्रश्न समाहित होते हैं –

1. ज्ञान के स्रोत क्या हैं। वास्तविक ज्ञान कहाँ से आता है अथवा हम कैसे जानते हैं। इस प्रश्न को हम ज्ञान की उत्पत्ति का कह सकते हैं।
2. दूसरा प्रश्न है ज्ञान का स्वरूप क्या है। क्या मन के बाहर कोई वास्तविक संसार है और यदि ऐसा है तो क्या हम इसे जान सकते हैं। यह प्रश्न आभास (Appearance) बनाम सत् (Reality) का है।
3. तीसरा प्रश्न है क्या हमारा ज्ञान वैध या प्रामाणिक (Valid) है। किस प्रकार हम सत्य एवं भ्रम में भेद करते हैं।

ज्ञान से सम्बन्धित ऐसे ही प्रश्न सत्य की परीक्षा या सत्य की कसौटी का है या सत्य की सत्यापनीयता से सम्बन्धित सत्यता है।

ज्ञान का क्षेत्र एवं महत्व बहुत व्यापक है। अपनी व्यापकता एवं अन्दर की गहराई के आधार पर यह व्यक्ति की दृष्टि बनाता है। दर्शन में ज्ञान की महत्ता तथा व्यापकता के कारण ही फिक्टे ने दर्शनशास्त्र को ज्ञान के विज्ञान की संज्ञा दी।

ज्ञान मीमांसा ज्ञाता का श्रेय से सम्बन्ध, ज्ञान की अन्तर्वस्तु का स्वरूप, ज्ञान वस्तु का यथार्थ, ज्ञान की सीमाए, ज्ञान के स्रोत, ज्ञान का विज्ञान से सम्बन्ध आदि समस्याओं की विवेचना करता है। ज्ञान–मीमांसा में आगमन एवं निगमन, संश्लेषण एवं विश्लेषण जैसी दार्शनिक विधियों का प्रयोग किया जाता है।

अतः संक्षिप्त रूप में कहा जा सकता है कि ज्ञान मीमांसा के अन्तर्गत प्रमुखता तीन समस्याओं का अध्ययन किया जाता है यथा– ज्ञान की उत्पत्ति, ज्ञान का स्वरूप तथा ज्ञान की सत्यता की कसौटी। इन समस्त प्रश्नों का उत्तर हमें दर्शन की जिस शाखा के अन्तर्गत मिलता है उसे ज्ञान मीमांसा कहा जा सकता है। जर्मन दार्शनिक कान्ट के अनुसार, "ज्ञान मीमांसा ज्ञान का विज्ञान तथा समालोचना है।"

5.4 ज्ञान मीमांसा की परिभाषा

प्लेटो के अनुसार किसी वस्तु को 'जानने' (know) का अर्थ उसमें विश्वास करना है और इस सन्दर्भ में सही तथ्य प्रस्तुत करना है। अतः ज्ञान विश्वास और अवबोध (Understanding) का योग है। यह परिभाषा प्लेटो के थियेटेटस (Theaetetus) पर आधारित है। उनके अनुसार, ज्ञान के अनिवार्यतः तीन भाग हैं प्रमाणीकरण, सत्यता और विश्वास। अतः, तर्कवाक्यात्मक ज्ञान प्रमाणिक सत्य विश्वास है। इस परिभाषा का एक निहितार्थ यह है कि यदि कोई किसी तथ्य में विश्वास करता है और किसी कारणवश उसका विश्वास सत्य सिद्ध होता है। तो इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि वह जानता (know) हैं, क्योंकि यहां पर विश्वास में प्रमाणिकता का अभाव होता है।

5.5 ज्ञान मीमांसा का महत्व

हमने इस इकाई के आरम्भ में अरस्तू की कुछ पंक्तियों की चर्चा की थी कि सभी मनुष्य स्वभावतः जानना चाहते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि लोग मानव जीवन में ज्ञान को शक्ति और उसके महत्व को समझते हैं। हम प्राचीन काल से ही यह जानते हैं कि मनुष्यों ने स्वयं को जानने का प्रयास किया है और साथ–साथ उन सभी प्रकृतिक या अप्राकृतिक तत्वों को जानने का प्रयास किया है जिनसे कि उसका सामना हुआ है। आम मनुष्य प्राय इस बात को मान कर चलता है कि वह जो भी सत्य प्रत्यक्षानुभूति करते हैं वह वास्तव में सत्य है। वैसे, सूक्ष्मता से निरीक्षण करने पर पता चलता है कि वास्तव में ऐसा नहीं है। ज्ञानमीमांसा हमें मानवीय बुद्धिध्मन की शक्तियों और उसकी सीमाओं से भिज्ञय बनाती है। यह हमारे सोचने चिन्तन करने की पद्धति को चुनौती देती है।

मनुष्य इस विश्व को वह इस विश्व में अपने अस्तित्व को जानने की इच्छा रखता है। ज्ञान की यह खोज मात्र अध्ययन हेतु या औपचारिक रूप में त्रुटियों को दूर करना नहीं है। बल्कि, यह खोज तो हमारे स्वयं के अस्तित्व के सन्दर्भ में स्वयं को व्यक्त करने हेतु है। जब हम यह प्रश्न करते हैं कि मैं क्या जान सकता हूँ। तभी हम यह भी पूछते हैं कि सत् क्या है। इस विश्व और स्वयं की वास्तविकता का ज्ञान हमें जीवन के विभिन्न उद्देश्यों को पाने में सहायता करता है। यह हमारे जीवन को सुन्दर और प्रसन्न बनाता है। ज्ञानमीमासा के द्वारा हमारा मुख्य उद्देश्य सत्य की खोज है जो हमें असत्यता से मुक्त कराती है। अतः यह हमें विचारपूर्वक सत्य को पाने के लिए प्रेरित करती है। इसके लिए यह हमें कुछ सिद्धांत भी प्रदान करती है जिससे की हम कुछ वस्तुओं को सत्य मानकर स्वीकार करें और कुछ को असत्य मानकर उनका निषेध करें। यह हमें सत्यता और असत्यता को बहुत ही सावधानीपूर्वक जाँचने और परखने को कहती है। एक अर्थ में, यह सत् से आवरण हटाने जैसा है और इस प्रकार का सत्य ज्ञान प्रज्ञा (wisdom) के लिए अनिवार्य है। अतः जैसा की विन्सेन्ट जी पोटर (Vincent G Potter) कहते हैं बुद्धिमान बनने के लिए सब कुछ के विषय में सब कुछ जानना आवश्यक नहीं है बल्कि वस्तुओं के स्थान को वस्तुओं और हमारी सापेक्षता के सन्दर्भ में जानना आवश्यक है। यह 'सम्पूर्ण जीवन अपने आप में क्या है' जानने जैसा है। तदानुसार हम कह सकते हैं कि ज्ञानमीमांसा मनुष्यों को सुकरात का सिद्धांत (Maxim) 'स्वयं को जानो' को समझने में सहायता प्रदान करती है।

5.6 ज्ञान मीमांसा का क्षेत्र

दर्शनशास्त्र में ज्ञान मीमांसा वह शाखा है जो ज्ञान की उत्पत्ति, विकास और स्वरूप एवं उसकी रचना विधि एवं सत्य की कसौटी पर विचार करती है। ज्ञान विश्वास पर आधारित होता है। ज्ञान मीमांसा सत्य तक पहुँचने के लिये प्रमाणों द्वारा उस विश्वास की मीमांसा है। कहा जा सकता है कि ज्ञान मीमांसा में ज्ञान, अनुभव, बुद्धि, विश्वास, सत्य, प्रमाण आदि का विवेचन होता है। इस मीमांसा में समीक्षात्मक दृष्टि से सामान्य ज्ञान की भी समीक्षा की जाती है ज्ञान मीमांसा में निम्न क्षेत्रों को समाहित किया जाता है।

ज्ञान मीमांसा एवं भाषा – ज्ञान मीमांसा के समीक्षात्मक रूप के अन्तर्गत भाषागत ज्ञान के विषयों की मीमांसा होती है। ज्ञान मीमांसा के प्रत्यय भाषा में अभिव्यक्त होते हैं। अतः ज्ञान मीमांसा भाषा में अभिव्यक्त ज्ञान के प्रत्ययों का अध्ययन करती है। इसके अन्तर्गत मनुष्य अपने विचार और ज्ञान को भाषा में प्रकट करने की शक्ति रखता है। अतः कहा जा सकता है कि विचारों और ज्ञान के प्रत्ययों का भाषागत विश्लेषण भी ज्ञान मीमांसा में आवश्यक होता है। बिना भाषा के विश्लेषण के सत्य का स्वरूप स्पष्ट नहीं होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. ज्ञान का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

2. ज्ञान मीमांसा का ध्येय क्या है।

.....

.....

3. ज्ञान मीमांसा के अन्तर्गत हम किसका अध्ययन करते हैं।

.....

.....

4. ज्ञान की जीवन में उपयोगिता को महत्व किस विचारधारा ने दिया।

.....

.....

5. शिक्षा द्वारा ज्ञान को मुक्ति का साधन किसने कहा।

.....

.....

5.7 ज्ञान का स्वरूप

ज्ञान को मानव का वास्तविक शक्ति माना गया है। वास्तविक वस्तु वह है जो सदैव रहने वाली हो। केवल ज्ञान ही ऐसा मूल तत्त्व है जो कहीं भी, किसी अवस्था में और किसी काल में मनुष्य का साथ नहीं छोड़ता। वास्तविक ज्ञान ही जीवन का सार और आत्मा का प्रकाश है। ज्ञान की प्रकृति अज्ञान से तुलना करने पर ज्ञात होती है। ज्ञान की प्रकृति ऐसी है जो अपनी वस्तु के साथ स्वयं प्रकाशित होती है। ज्ञान के स्वरूप में मुख्यतः तीन तत्व सम्मिलित होते हैं –

1. **विचार**– ज्ञान विचारों के रूप में मन में रहता है। वह विचार ही संकल्प बनकर कार्य के रूप में परिणत होते हैं।

2. **प्राकृतिक**– ज्ञान कहलाने वाले विचारों का वस्तुओं, जीवों, संक्षिप्त में ज्ञान की विषय वस्तु की वास्तविक प्रकृति के अनुरूप होना जरूरी है। ये विचार ज्ञान न कहलाकर अज्ञान कहलाते हैं।

3. **यथार्थता**– वैसे तो हमारे पास यह ज्ञात करने का कोई साधन नहीं है कि बाहरी वस्तुओं, घटनाओं या जीवों की यथार्थता प्रकृति के अनुरूप है। किसी विचार को ज्ञान कहने से हम विश्वास कर लेते हैं कि हमारा विचार यथावत है। ऐसा न होने पर वह ज्ञान नहीं कहलाता। अतएव जब तक यथार्थ अनुभव में हमारे विचार का खण्डन ही न हो जाए अर्थात् वह गलत ही साबित न हो जाए तब तक हम उसे ज्ञान ही मानते हैं। ज्ञान मुख्यतः दो तरह का माना गया है–

    1. **प्रत्यक्ष ज्ञान**– यह वह ज्ञान है जिसके माध्यम से हमें वस्तु का सीधा ज्ञान होता है। हमारी आँख, नाक, कान, त्वचा, जीभ आदि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान इसी तरह का होता है। हमें जो वस्तु जैसी दिखती है हम उसे वैसा ही मान लेते हैं क्योंकि यह प्रत्यक्ष है। प्रत्यक्ष ज्ञान दो प्रकार का होता है–पहला बाह्य प्रत्यक्ष, जो बाहरी वस्तुओं का ज्ञान है और दूसरा आन्तरिक पक्ष, जिससे सुख–दुख इत्यादि आन्तरिक अनुभूतियों तथा मनोवृत्तियों का ज्ञान होता है। अतरू आन्तरिक प्रत्यक्ष द्वारा हम अपने संवेग, अनुभूतियों, मानसिक दशाओं, स्थाय भावों, संकल्पों, इच्छाओं आदि मानसिक प्रक्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

    2. **अप्रत्यक्ष ज्ञान**– ज्ञान के इस रूप में अनुमान या साक्ष्य का प्रयोग किया जाता है। यह ऐसा ज्ञान है जोकि वस्तुओं से सीधे सम्पर्क न होकर किसी दूसरे के द्वारा ज्ञात है। यह ज्ञान भी दो प्रकार का होता है पहला अनुमान– इसमें ज्ञात से अज्ञात तक पहुँचने हेतु अनुमान का सहारा लिया जाता है। अनुमान की प्रक्रिया ओर पहुँच जाता है। उदाहरणार्थ–बहुत से स्थानों पर धुएँ के साथ आग देख कर यह ज्ञात हो जाता है कि जहाँ धुआँ है, वहाँ आग होगी। इसके विपरीत निगमनात्मक ज्ञान सामान्य सिद्धान्त से अज्ञात विशेष तथ्य के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाता है। उदाहरणार्थ अगर हमें यह ज्ञात है कि जहाँ धुआँ होता है वहाँ आग होती है तो किसी पहाड़ी पर धुआँ देखकर अनुमान के द्वारा यह ज्ञान हो जाता है कि पहाड़ी पर धुआँ है, इसलिए वहाँ आग भी होगी। दूसरा अप्रत्यक्ष ज्ञान है साक्ष्य– इसमें आप्त पुरुषों द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। आप्त पुरुष वे हैं जिनके अनुभव के कारण ही हम उन्हें विश्वास के योग्य मानते हैं। उदाहरणार्थ– गुरुजन तथा माता–पिता आप्त पुरुष माने जाते हैं। विद्वानों द्वारा लिखी गई पुस्तक से प्रमाण दिए जाते हैं। इसलिए विद्वान होने के कारण वे आप्त पुरुष माने जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ज्ञान के मुख्य स्वरूप दो हैं, उसके नाम भिन्न–भिन्न हो सकते हैं जैसे– सत्य ज्ञान और मिथ्या ज्ञान हम ज्ञान के तीनों तत्त्वों–विचार, प्राकृतिक और यथार्थता से ज्ञान और अज्ञान के बारे में जान सकते हैं। इन्हीं तत्त्वों के माध्यम से ही हम ज्ञान को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में जान सकते हैं, क्योंकि बिना इन तत्त्वों के जीवन भी सम्भव नहीं है। अतः हम कह सकते हैं कि ज्ञान की वास्तविक प्रकृति वैध और अवैध ज्ञान में भेद करना है और इसको हम ज्ञान के दो रूपों प्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष ज्ञान के द्वारा ही जान सकते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर ज्ञान की प्रकृति के विषय में निम्नलिखित तथ्य उजागर होते हैं

1. निरपेक्ष सत्य की स्वानुभूति ही ज्ञान का सार है। ज्ञान दैनन्दिन और वैज्ञानिक दोनों हो सकता है।
2. वह विचार जो चिन्तन की विषय वस्तु की वास्तविक प्रकृति के अनुरूप हो, ज्ञान कहलाता है।
3. ज्ञान का अर्थ सभी प्रकार के बोध से है कि क्या सत्य है और क्या असत्य है।
4. ज्ञान प्रिय, अप्रिय, सुख–दुःख इत्यादि भावों से निरपेक्ष होता है।
5. ज्ञान की प्रकृत्ति अज्ञान से उसकी तुलना करने पर ज्ञात होती है।
6. ज्ञान के मुख्यतः दो पक्ष होते हैं– प्रत्यक्ष ज्ञान और अप्रत्यक्ष ज्ञान जिस माध्यम से हमें वस्तु का सीधा ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है तथा जिस ज्ञान में अनुमान या साक्ष्य का प्रयोग किया जाता है। वह अप्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है।
7. ज्ञान का अभिप्राय अनुभव से भी लगाया जाता है क्योंकि अनुभव के बिना ज्ञान सम्भव नहीं है।
8. ज्ञान की विषय–सामग्री बहुत व्यापक होती है, उसे सीमा में नहीं बाधा जा सकता।
9. व्यापक अर्थ में ज्ञान निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है, इसे व्यापक रूप में ही लिया जाना चाहिए।
10. ज्ञान की विषय सामग्री अति व्यापक है, यह विकासोन्मुखी होते हैं, इसकी प्रकृति गतिशील होती है।

5.8 ज्ञान के प्रकार

ज्ञान के विभिन्न प्रकारों को निम्नलिखित रूप में समझाया जा सकता है। ज्ञान के प्रमुख रूप से तीन प्रकार हैं जो निम्नवत् वर्णित है–

1. **आगमनात्मक ज्ञान** – इस प्रकार का ज्ञान हमारे अनुभव तथा निरीक्षण पर आधारित है। जॉन लॉक इस प्रकार के ज्ञान के प्रवर्तक है। उनके मतानुसार बालक का मन जन्म के समय कोरी पटिया के समान होता है। जैसे–जैसे अनुभव मिलते जाते हैं, इस पटिया पर लेखन होने लगता है। इससे तात्पर्य है कि ज्ञान अनुभवों द्वारा बुद्धि प्राप्त करता रहता है। शिक्षा में इस प्रकार के ज्ञान के प्रवर्तक कहते हैं कि सीखने के लिये समग्र अनुभव प्रदान करने चाहिये। इस प्रकार के ज्ञान में अलौकिक का कोई स्थान नहीं है।
2. **प्रयोगमूलक ज्ञान** – ज्ञान प्रयोग द्वारा प्राप्त होता है, ऐसी प्रयोजनवादियों की धारणा है। एक विचार को अभ्यास में परिवर्तित करने का प्रयास करना एवं ऐसे प्रयास के परिणाम से जो फल प्राप्त होते हैं, उनसे सीखना। इस धारणा के अनुसार ज्ञान कोई भी ऐसी चीज नहीं है जिसे हम समझें कि वह अनुभव या निरीक्षण से अन्तिम रूप से समझी जा सकती है जबकि हम ऐसी विधियों का प्रयोग करते हैं जैसे आगमन। यह तो कुछ ऐसी वस्तु है जो अनुभव में सक्रिय होती है। एक कृत्य की भाँति जो अनुभव को सन्तोषपूर्ण ढंग से आगे की ओर ले जाती है।
3. **प्रागनुभव ज्ञान** – ज्ञान स्वयं प्रत्यक्ष की भांति समझा जाता है (Knowledge is self evident)। सिद्धान्त जब समझ लिये जाते हैं, सत्य पहचान लिये जाते हैं। फिर उन्हें निरीक्षण, अनुभव या प्रयोग द्वारा प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं होती। इस विचारधारा के प्रवर्तक काण्ट थे जो कहते थे कि सामान्य सत्य अनुभव से स्वतन्त्र होने चाहिये, उन्हें स्वयं में स्पष्ट तथा निश्चित होना चाहिये। गणित का ज्ञान प्रागनुभव ज्ञान समझा जाता है।

उपरोक्त वर्णन के अनुसार प्रथम प्रकार का ज्ञान वह है जो अनुभव के बाद प्राप्त होता है। दूसरे प्रकार का ज्ञान वह है जो प्रयोग, निरीक्षण तथा अनुभव पर केन्द्रित है तथा तीसरे प्रकार का ज्ञान अनुभव से परे है। इस प्रकार के ज्ञान के सम्बन्ध में धारणा होती है कि प्रकार का ज्ञान अनुभव अनुभव केवल तथ्य ही देता है, परन्तु तथ्य किसी बात को सिद्ध नहीं करते। उनसे सत्य का ज्ञान उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि उनको संगठित न किया जाये। तर्क द्वारा वह संगठित किये जाते हैं। इस प्रकार तर्क या बुद्धि अनुभव को ज्ञान में परिवर्तित करता जाता है। किन्तु कुछ सत्य को अनुभव से प्राप्त तथ्यों की कोई आवश्यकता नहीं होती। यह स्वयं स्पष्ट तथा स्वयंसिद्ध है। प्रागनुभविक ज्ञान ऐसा ज्ञान कहलाता है जिसे बुद्धि अनुभव की सहायता के बिना प्राप्त करती है। शिक्षण प्रदान करने में हमें इन तीनों प्रकार के ज्ञान को ध्यान में रखना चाहिये। विभिन्न विषयों का ज्ञान हमें अनुभव द्वारा प्राप्त होता है। गणित या तर्कशास्त्र का ज्ञान प्रागनुभविक प्रकार का ज्ञान है। गणित के शिक्षण के समय हमें इस बात को ध्यान में रखना चाहिये।

5.9 ज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त

ज्ञान मीमांसा के क्षेत्र में प्रचलित प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत् वर्णित है–

(1) **अनुभववाद**–अनुभववाद को समस्त ज्ञान का स्रोत माना गया है। अनुभववाद के अनुसार मनुष्य को ज्ञान उसकी इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त संवेदनाओं के द्वारा होता है। अनुभववाद के जनक ब्रिटिश दार्शनिक जॉन लॉक के मतानुसार जन्म के समय बालक का मन कोरी पट्टी के समान होता है। जैसे–जैसे वह बाह्य जगत के सम्पर्क में आता है संवेदनाओं के रूप में वस्तुओं के चिन्ह मस्तिष्क की इस खाली पट्टी पर अंकित होते जाते हैं, अर्थात् ज्ञान की सामग्री बाहर के अनुभवों से आती है।

(2) **संशयवाद**– टी. एच. हक्सले के अनुसार, 'किसी भी व्यक्ति के लिये यह कहना अनुचित है कि वह किसी भी तर्क वाक्य के वस्तुगत सत्य के विषय में निश्चित है।' संशयवादी पूर्ण स्वीकार और पूर्ण नकार के मध्य में स्थित है। ह्यूम का मानना है कि हम अपने तत्काल ज्ञान के बाहर किसी वस्तु के अस्तित्व के विषय में निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते, क्योंकि उसे सिद्ध करने के लिये हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है।

(3) **प्रत्ययवाद**– प्रत्ययवाद ने चरम सत्ता मनस् की मानी है। इस विचारधारा के अनुसार विश्व की प्रत्येक वस्तु मनस् पर आधारित है। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभव किया गया संसार सत्य नहीं है। संसार की प्रत्येक भौतिक वस्तु क्षणिक तथा परिवर्तनशील है । ब्रह्माण्ड की प्रत्येक घटना एवं तत्त्व अपने अस्तित्व के लिये मन पर आश्रित एवं आधारित हैं

(4) **बुद्धिवाद**– बुद्धिवाद ज्ञान की ही एक वृहत् धारा है। बुद्धिवाद सम्पूर्ण ज्ञान को बुद्धि पर ही आश्रित मानता है। ऐतिहासिक दृष्टि से पश्चिमी दर्शन में बुद्धिवाद का प्रारम्भ डेकार्टे (Descrartè) से माना जाता है। बुद्धिवाद में सत्य का अन्वेषण आवश्यक है और हम बिना प्रमाण के किसी तथ्य को स्वीकार नहीं कर सकते।

(5) **यथार्थवाद**– इस विचारधारा में अध्यात्म की सत्ता से परे भौतिक सत्ता में ही विश्वास प्रकट किया गया है। मन और मानसिकता को चिन्तन न मानते हुये पदार्थ को ही जगत का आधार माना गया है। प्रसिद्ध विचारक बटलर के अनुसार, 'यथार्थवाद संसार को सामान्यतः उसी रूप में स्वीकार करता है जिस रूप में वह हमें दिखाई देता है।'

(6) **व्यवहारवाद**– इस विचारधारा का मूल तत्त्व है कि कोई भी पूर्ण सिद्ध सत्य स्वीकार करने योग्य नहीं है। सभी सत्ता परिवर्तनशील हैं जो आज और अभी सत्य हैं। इस वाद ने आधुनिक दर्शन को विशेष महत्त्व दिया।

5.10 ज्ञान के स्रोत

ज्ञान के चार मौलिक स्रोत जो निम्नवत् वर्णित है–

1. इन्द्रिय अनुभव (Sensory experience)
2. साक्ष्य (Testimony)
3. तर्क बुद्धि (Reason)
4. अन्तःप्रज्ञा (Intution)

(1) इन्द्रिय अनुभव – मनुष्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही संसार की वस्तुओं के सम्पर्क में आता है। जब कोई वस्तु हमारे सम्पर्क में आती है तो वह एक संवेदना उत्पन्न करती है। यह संवेदना ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजना मिलने के ही कारण होती है। यह संवेदना वस्तु का ज्ञान प्रदान करती है और इन संवेदनाओं का अर्थ प्रदान हो जाता है तथा हमें वस्तु का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। यह प्रत्यक्षीकरण हमें उस वस्तु की जानकारी देता है।

प्रत्यक्षीकरण चेतन मन में अवधारणायें (Concept) उत्पन्न करते हैं। हमारा ज्ञान इन अवधारणाओं पर ही निर्भर होता है। इन्द्रिय अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त करने को अनुभववादी (Empiricests) तार्किक प्रत्यक्षवादी (Logical&Positivists), यथार्थवादी तथा विज्ञानवादी (Scientists) मुख्य स्रोत माने जाते हैं।

(2) साक्ष्य – जब हम दूसरे के अनुभव और ज्ञान को मान्यता देते हैं तो इसे साक्ष्य कहा जाता है। साक्ष्य में व्यक्ति स्वयं निरीक्षण नहीं करता। वह दूसरों के निरीक्षण में ही तथ्य का ज्ञान प्राप्त करता है अर्थात् साक्ष्य दूसरे के अनुभव पर आधारित ज्ञान है।

(3) तर्क बुद्धि – तर्क एक मानसिक प्रक्रिया है। हमारा बहुत ज्ञान तर्क पर भी आधारित होते हैं। हमें अनुभव द्वारा जो संवेदनायें प्राप्त हो जाती है उनको तर्क द्वारा संगठित करके ज्ञान निर्माण किया जाता है। इस प्रकार तर्क अनुभव पर कार्य करता है और उसे ज्ञान में परिवर्तित करता जाता है।

(4) अन्तःप्रज्ञा तथा अन्तः प्रज्ञावाद – यह भी ज्ञान का एक प्रधान स्रोत है। अन्तःप्रज्ञा से हमारा तात्पर्य है किसी तथ्य को अपने मन में पा जाना। इसके लिये किसी तर्क की आवश्यकता नहीं होती इस प्रकार के ज्ञान का एक मात्र प्रमाण यह है कि हमें उसकी निश्चितता तथा वैधता में सन्देह नहीं होता। हमारा उस ज्ञान में पूर्ण विश्वास हो जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

6. ज्ञान के स्रोत बताइए।

.....

.....

7. ज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्तों को बताइए।

.....

.....

8. ज्ञान मीमांसा का मुख्य उद्देश्य क्या हैं?

.....

.....

5.11 ज्ञान प्राप्त करने की विधियाँ

सामान्यतः मानवीय ज्ञान की तीन अवस्थाएँ क्रमशः (1) ज्ञान का संचयन, (2) ज्ञान का अन्तरण व (3) ज्ञान का सृजन होता हैं। प्रथम अवस्था के अन्तर्गत स्मरण, लेखन, मुद्रण एवं भंडारण आदि के विभिन्न तरीकों के द्वारा उपलब्ध ज्ञान का संचय किया जाता है। द्वितीय अवस्था में विभिन्न संचरण माध्यमों की सहायता से उपलब्ध संचित ज्ञान को भावी पीढ़ी को प्रदान किया जाता है। तृतीय अवस्था में नवीन ज्ञान का सृजन करके ज्ञान भंडार को समृद्ध किया जाता है। इस प्रकार निःसन्देह प्रदत्तों व सूचनाओं की प्रक्रियाओं के फलस्वरूप प्राप्त सार्थक निष्कर्ष ही ज्ञान के अंग होते हैं व इनके द्वारा प्राप्त ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान होता है इस वास्तविक यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करने की कुछ विधियाँ निम्नलिखित हैं–

1. **विश्लेषणात्मक दर्शन** (Analytic Philosophy)– यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने में विश्लेषणात्मक दर्शन का बहुत योगदान होता है। यह दर्शन भाषागत तथा तार्किक विश्लेषण की विधि को अपनाता है तथा अपनी प्रकृति में वैज्ञानिक है। तार्किक विश्लेषण, शैक्षिक अवधारणाओं, स्पष्टीकरण एवं परीक्षण करके तथा उनमें जो तार्किक दोष हैं, उन्हें सामने लाकर ऐसे ज्ञान की ओर ले जाता है जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से यथार्थ का संकेत देता है।

2. **ज्ञान की वैयक्तिक अनुभव विधि** (Personal Experience Method of Knowledge)– ज्ञानार्जन का एक प्रमुख साधन इन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव होते हैं। प्राचीन काल से ही आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा को पाँच ज्ञानेन्द्रियों के रूप में स्वीकार किया गया है जिनके द्वारा मनुष्य तरह–तरह के अनुभवात्मक ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार के वैयक्तिक अनुभवों से प्राप्त ज्ञान को अनुभव जनित ज्ञान कहते हैं जो निःसन्देह ज्ञान प्राप्ति का सबसे प्राचीन स्रोत भी है। दिन–प्रतिदिन में भी हम प्रायः देखते हैं कि जन्म लेते ही प्रत्येक प्राणी–मानव, पशु व पक्षी इस विधि का प्रयोग करना शुरू कर देते हैं व इसी अनुभव द्वारा मनुष्य कई प्रकार के सामान्य ज्ञान जैसे हानिकारक व लाभदायक वस्तुओं की जानकारी, ऋतुएँ बदलने के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तन व और भी कई बातें जान लेते हैं। परन्तु इस अनुभवजन्य ज्ञान के बारे में एक बात और भी अच्छी तरह समझनी होगी कि केवल एक या दो अनुभव प्रायः ज्ञान प्राप्ति के लिए पर्याप्त नहीं होते हैं अथवा एक या दो अनुभवों से प्राप्त सूचना सदैव ज्ञान की श्रेणी में नहीं रखी जाती है वरन् अनुभवों की एक लम्बी श्रृंखला से प्राप्त सूचना की बारम्बार पुष्टि ही ज्ञान का रूप बनती है। अनुभवजन्य ज्ञान की वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता व वस्तुनिष्ठता हासिल भी कर ली जाये तो इसकी वैधता का निर्धारण प्रायः कठिन ही होता है व इसमें सन्देह बना रहता है। यही कारण है कि ज्ञान के स्रोत के रूप में वैयक्तिक अनुभवों को वर्तमान से मान्य स्वीकार नहीं किया जाता है एवं इससे प्राप्त ज्ञान निम्न कोटि का कहलाता है। अतः ये वैयक्तिक अनुभव व्यक्ति की निजी जानकारी या सूचना के साधन तो हो सकते हैं परन्तु इसे यथार्थ ज्ञान नहीं माना जा सकता।

3. **ज्ञान की अधिकारिकता विधि** (Authority Method of Knowledge)– अनादिकाल से यह परम्परा रही है कि कोई भी व्यक्ति, किसी समस्या, कठिनाई या जिज्ञासा के उत्पन्न होने पर, अपने से श्रेष्ठ, मान्य या जानकार व्यक्तियों से परामर्श करता है क्योंकि हम उनके प्रति आस्था, श्रद्धा व विश्वास का भाव रखते हैं। इसी श्रेष्ठ मान्य या जानकार व्यक्ति–संस्था–वस्तु के द्वारा दिये गये परामर्श, उत्तर या जानकारी को अधिकारिकता मत कहा जाता है एवं इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त करने की विधि अधिकारिकता विधि कहलाती है। बाढ़ क्यों आती है। नदी की गहराई क्या है। बिजली क्यों चमकती है अथवा कड़कती है। सूर्यग्रहण–चन्द्रग्रहण क्यों पड़ता है। जैसे अनेक प्रश्नों का उत्तर आदिकाल से व्यक्ति अपने से अधिक वयोवृद्ध व जानकार लोगों से प्राप्त करता रहता था। यह माना जाता था कि कुछ वरिष्ठ व्यक्तियों को इस प्रकार की समस्याओं का सामना करने तथा अध्ययन–मनन व चिन्तन करने का अधिक अनुभव है एवं उन्होंने उसके बारे में एक स्पष्ट व स्वीकार्य धारणा बना ली है। परिणामस्वरूप इस प्रकरणध्समस्या विशेष पर वे उनकी राय बिना बात किसी अतिरिक्त चिन्तन–मनन या परीक्षण के यथावत सत्य रूप में स्वीकार कर ली जाती थी। कभी–कभी इस प्रकार का ज्ञान एक पीढ़ी से अनेक भावी पीढ़ियों को लगातार हस्तान्तरित किया जाता रहा। आज भी प्रायः मनुष्य इस विधि का प्रयोग ज्ञानार्जन हेतु करता है। किसी

व्यंजन को पकाने हेतु नवविवाहिता द्वारा पाक कला में निपुण अपनी वरिष्ठ सदस्य माँ द्वारा परामर्श लेना, किसी शब्द के सही सम्प्रत्यय को समझने के लिए शब्दकोश का सहारा लेना अथवा किसी जटिल सूत्र सिद्धान्त को समझते हुए तत्सम्बन्धी विशेषज्ञ से परामर्श करना आदि ऐसे ही उदाहरण हैं।

4. **ज्ञान की निगमन तर्क विधि**– इस विधि के विकास में प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक सुकरात व उसके सहयोगियों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। यह विधि तर्क के रूप में ज्ञान से अज्ञान की ओर ले जाकर ज्ञान प्राप्ति में सहायक सिद्ध होती है। इस विधि को निरपेक्ष न्याय वाक्य नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इसमें प्रतिज्ञप्तियों के आधार पर न्याय वाक्यों को चार वर्गों अर्थात् निरपेक्ष न्याय वाक्य, वैकल्पिक न्याय वाक्य, परिकल्पित न्याय वाक्य एवं नियोजन न्याय वाक्य में विभक्त किया जा सकता है। इस प्रकार के निरपेक्ष न्याय वाक्य में तीन पद या तीन प्रतिज्ञप्ति या तीन कथन होते हैं। जो निम्न हैं–

   1. मुख्य आधार वाक्य या मुख्य प्रतिज्ञप्ति– सार्वभौमिक प्रकृति।
   2. पक्ष– आधार वाक्य या लघु प्रतिज्ञप्ति विशिष्ट उदाहरण।
   3. निष्कर्ष– उपर्युक्त होना प्रतिज्ञप्तियों का महत्व।

   स्पष्ट है कि मुख्य आधार वाक्य किसी पूर्व स्थापित, ज्ञान, स्वीकृत व मान्य तथ्य या सम्बन्ध का द्योतक होता है, पक्ष–आधार वाक्य वास्तव में मुख्य आधार वाक्य का एक विशिष्ट उदाहरण होता है एवं निष्कर्ष वस्तुतः मुख्य आधार वाक्य व पक्ष–आधार वाक्य के परस्पर सम्बन्ध से प्राप्त कोई नवीन कथन होता है।

5. **ज्ञान की आगमन तर्क विधि** (Inductive Reasoning Method of Knowledge)– ज्ञानार्जन की इस विधि के प्रणेता फ्रांसिस बेकन थे। इसलिए इसे बेकोनियन विधि के नाम से भी जाना जाता है। निगमन तर्क के विपरीत आगमन तर्क विशिष्ट से सामान्य की ओर प्रवृत्त होता है। इस विधि के अन्तर्गत व्यक्ति विशिष्ट प्रकार के अनेकों दृष्टान्तों का संकलन करके उनमें निहित समानता को पहचानने का प्रयास करता है और इस प्रक्रिया में वह नवीन ज्ञान के अर्जन की ओर अग्रसर होता है। जहाँ एक ओर इस विधि को निगमन विधि की विपरीत विधि कहा जाता है तो वहीं दूसरी ओर इसे निगमन विधि की पूरक विधि भी कहा जा सकता है आगमन तर्क विधि के दो प्रकार पूर्ण आगमन तथा अपूर्ण आगमन भी हो सकते हैं पूर्ण आगमन विधि में जहाँ अध्ययन क्षेत्र के सभी दृष्टान्तों के अवलोकन के आधार पर सामान्यीकृत निष्कर्ष निकाले जाते हैं वही अपूर्ण आगमन में कुछ चुने दृष्टान्तों के आधार पर प्रायिकता निष्कर्ष निकाले जाते हैं। परन्तु दोनों ही प्रकार की विधियों में निःसन्देह विशिष्ट स्थितियों के सामान्यीकरण द्वारा ही निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया जाता है। कालान्तर में इस विधि को भी छोड़ दिया गया एवं बौद्धिक क्षेत्रों में ज्ञान प्राप्ति की एक नवीन विधि की आवश्यकता महसूस की गई।

6. **वैज्ञानिक जाँच पड़ताल** (Scientific Enquiry)– पीयर्स महोदय के अनुसार वैज्ञानिक पहुँच का सबसे अच्छा मार्ग एक दर्शन की स्थापना करना है। फीगल का भी कुछ ऐसा ही विचार है। वह विज्ञान और मानववाद के बीच के सम्बन्ध पर बल देते हैं और वैज्ञानिक विधि का मूल विशेषताओं को स्पष्ट करते हैं। वे विज्ञान के उद्देश्यों की पहचान वर्णन, व्याख्या एवं पूर्वानुमान के रूप में करते हैं जिससे विज्ञान को इसका प्रगतिशील रूप और प्रयोगात्मकता के निश्चित होने का भाव मिलता है। फीगल का यह भी विश्वास है कि विज्ञान द्वारा और अच्छे मूल्य सम्बन्धी निर्णयों को लेने की क्षमता मिलती है।

   वैज्ञानिक जाँच–पड़ताल में अन्तर व्यक्तिगत परीक्षण योग्यता भी शामिल होती है अर्थात् यह विधि व्यक्तिगत अथवा सांस्कृतिक पूर्वाग्रह से स्वतंत्र रहती है। इसमें एकतरफा निर्णय नहीं लिया जाता है। इसके अतिरिक्त एक मूल बात यह भी है कि विज्ञान के ज्ञान का परीक्षण किसी भी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जा सकता है जो कि बुद्धिमान है और प्रयोग एवं निरीक्षण की तकनीकी में योग्यता रखता है। यदि कोई ऐसा ज्ञान है जिसका स्वतन्त्र रूप से परीक्षण नहीं किया जा सकता है तो वह वैज्ञानिक ज्ञान नहीं है। अन्तर व्यक्तिगत परीक्षण की कसौटी ही वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में विभेद करती है।

वैज्ञानिक ज्ञान की एक और विशेषता है कि यह हमें मान और ज्ञान में विभेद करने को समर्थ बनाता है। वैज्ञानिक ज्ञान की विश्वसनीयता अथवा पर्याप्त मात्रा में ज्ञान के पुष्टीकरण को स्थापित करने की आवश्यकता होती है। आधुनिक प्रयोग सम्बन्धी तकनीकी तथा सांख्यिकी विश्लेषण ऐसे शक्तिशाली यन्त्र हैं जो संयोग तथा नियम में विभेद स्पष्ट कर देते हैं। इस कारण ही यह ज्ञान की विश्वसनीयता को स्थापित करने का सबसे अच्छे साधन हैं।

5.12 ज्ञान मीमांसा का शैक्षिक निहितार्थ

ज्ञानशास्त्र में ज्ञान से अभिप्राय उसके मौलिक रूप, उसकी प्राप्ति की सम्भावना, उसकी प्राप्ति के उपाय आदि पर विचार किया जाता है। ज्ञान में सत्य और असत्य का भेद क्या है और भेद कैसे किया जाय। इस विचार किया जाता है।

ज्ञान को हम प्राप्त कर सकते हैं या नहीं। प्रश्न के उत्तर में मतभेद है। यथार्थवादी इस प्रश्न का उत्तर श में देता है तो सन्देहवादी श्नश में प्राचीन काल में पिर्टो और आधुनिक काल में ह्यूम प्रसिद्ध सन्देहवादी हुये हैं। ज्ञान प्राप्त कैसे होता है । इस प्रश्न के उत्तर में कुछ व्यक्ति सारे ज्ञान को इन्द्रिय–जन्य बताते हैं। अनुभववाद ने स्पष्ट कहा है कि हमारा सारा ज्ञान बाहर से प्राप्त होता है और इन्द्रियाँ ही इस ज्ञान के साधन हैं। इसके विरुद्ध बुद्धिवाद ने सारे ज्ञान को मनन का परिणाम बताया है। कॉण्ट ने दोनों में सामन्जस्य करने की चेष्टा की है। उसके अनुसार ज्ञान की सामग्री बाहर से आती है किन्तु मन उसे विशेष आकृति देता है उसके मत को आलोचनावाद कहा गया है।

शैक्षिक अभिप्रेतार्थ की दृष्टि से ज्ञान मीमांसा का क्षेत्र समुद्र के समान व्यापक है। सूचना ज्ञान–विज्ञान और पुनः ज्ञान के आधार पर शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था होती है जिसमें बालक के जीवन को दिव्य से दिव्यतर बनाने की दिशा निश्चित होती है। ज्ञान प्राप्त करने के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष माध्यमों में मात्र विश्वसनीयता की दृ ष्टि से अन्तर है। आदर्शवाद से लेकर यथार्थवाद उपागम के माध्यम से शैक्षिक योजना प्रस्तुत करते हैं।

ज्ञानशास्त्र और शिक्षा में घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिक्षा और शिक्षण की किसी भी भावी योजना बनाने में ज्ञानशास्त्र बहुत मदद करता है। क्या, कहाँ, कब, क्यों और कैसे प्रश्नों के माध्यम से शिक्षा का भूत, वर्तमान और भविष्य निश्चित होता है।

शिक्षाशास्त्र विषय में भी ज्ञानशास्त्र का उपयोग होता है। हम किस प्रकार का ज्ञान कैसे प्राप्त करें! इसके निर्णय में ज्ञानशास्त्र हमारी सहायता करता है। जब हम पाठ्यक्रम का निर्माण करते हैं तो हमारे समक्ष यह समस्या होती है कि अब तक के अनुभवों में से हम पाठ्यक्रम में क्या लें और क्या न लें। अनुभवों को किस क्रम में रखें। इसी प्रकार हम विचार में पड़ जाते हैं कि त्रिभाषा सूत्र ठीक है या नहीं। संस्कृत को पढ़ाया जाय या नहीं। ज्ञान–विज्ञान के विषयों को पाठ्यक्रम में क्या स्थान दिया जाय। ज्ञानशास्त्र इन समस्त विषयों में शिक्षा की सहायता करता है। अर्थात् ज्ञानशास्त्र शिक्षा का भूत, भविष्य एवं वर्तमान को निश्चित करने में महत्त्वपूर्ण सहायता करता है। संक्षेप में, हम ज्ञानशास्त्र शिक्षा की किस प्रकार सहायता करता है, को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है–

1. ज्ञानशास्त्र द्वारा छात्रों में सत्य और असत्य में भेद करने की योग्यता का विकास होता है।
2. ज्ञानशास्त्र मूल्याँकन में तार्किक और विश्वसनीयता दृष्टि का अवधान करने में सहायक होता है।
3. सीखने के विभिन्न सिद्धान्तों की जानकारी ज्ञानशास्त्र के द्वारा ही शिक्षा को प्राप्त होती है।
4. विद्यार्थियों के लिये विषयों का वर्गीकरण ज्ञानशास्त्र द्वारा ही होता है।
5. बच्चों में विभिन्न प्रकार की क्षमताओं का अध्ययन ज्ञानशास्त्र के द्वारा ही होता है।
6. विभिन्न शिक्षण–विधियों में तार्किक दृष्टि से अध्ययन ज्ञानशास्त्र द्वारा ही होता है।

7. पाठ्यक्रम के निर्धारण में ज्ञानशास्त्र उपयोगी होता है।

8. ज्ञान मीमांसा ही शिक्षक को यह आश्वासन देती है कि वह जो कुछ अपने विद्यार्थियों को दे रहा है, वह सत्य है।

कहा जा सकता है कि शिक्षा का ज्ञानशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिक्षाशास्त्र अपने विकास के लिये जहाँ पर विज्ञान से सहायता लेता है वहीं उसे ज्ञानशास्त्र की भी सहायता पड़ती है। इसी प्रकार ज्ञानशास्त्र के संचालन में शिक्षा की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

5.13 ज्ञान मीमांसा एवं दर्शन में सम्बन्ध

ज्ञान मीमांसा को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझने के पश्चात् अब विचारणीय है कि दर्शन में ज्ञान मीमांसा का क्या महत्त्व एवं स्वरूप है, क्या दर्शन में ज्ञान मीमांसा का वैसा ही स्थान है जैसा कि सामान्य जीवन में ज्ञान का।

जीव, जगत और मानव–अस्तित्व को समझने के लिये दर्शन वह प्रयास है, जो बुद्धि एवं चिन्तन के बल पर सभी समस्याओं का हल ढूंढ़ता है। ज्ञान–मीमांसा को दर्शन के विषयों को समझने और इसका बोध प्राप्त करने का साधन है, अर्थात् कहा जा सकता है कि दर्शन ज्ञान–मीमांसा पर निर्भर करता है क्योंकि किसी विवेचना के लिये एवं उसका सही अर्थ–बोध कराने के लिये ज्ञान के साधन, ज्ञान की प्रमाणिकता की आवश्यकता पड़ती है। इसके अभाव में दार्शनिक ज्ञान दार्शनिक नहीं बल्कि सामान्य ज्ञान कहलायेगा।

अतः कहा जा सकता है कि ज्ञान मीमांसा के लिये दार्शनिक विषयों की आवश्यकता होती है। ज्ञान मीमांसा का सीधा सम्बन्ध दार्शनिक प्रश्नों से होता है। लौकिक जीवन के साधारण विषयों को ज्ञान–मीमांसा का विषय नहीं बनाया जाता। ज्ञान–मीमांसा स्वतः ज्ञान के विषय में ही प्रश्न करता है, जैसे– ज्ञान क्या है, ज्ञान की उत्पत्ति कैसे होती है, ज्ञान के साधन कौन–कौन हैं सत्य ज्ञान का निर्धारण कैसे होगा। ज्ञान एवं भ्रम में क्या अन्तर है। इसके अतिरिक्त ज्ञान का कार्य, ज्ञान–मीमांसा का कार्य, ज्ञान के अतिरिक्त सत्ता या तत्त्व के विषय में मीमांसा करना है। व्यापक अर्थ में इसी को दर्शनशास्त्र भी कहा जा सकता है। अर्थात् दर्शनशास्त्र में ज्ञान–मीमांसा का भी अध्ययन होता है।

ज्ञान मीमांसा द्वारा दर्शनशास्त्र के विषयों की सत्यता–असत्यता का निर्धारण किया जाता है। साराँश रूप में यदि हम देखें तो 'दर्शन एवं ज्ञान मीमांसा' भी एक–दूसरे से अलग नहीं हैं। दर्शन विश्व के अन्तिम सत्य को जानना चाहता है तथा प्रमाणित और सत्य ज्ञान ही दर्शन का अभिन्न अंग बन जाता है और यदि आधुनिक दर्शन को हम देखें तो वह वैज्ञानिक आलोक में ही पला–बढ़ा है। विशेष रूप से पाश्चात्य आधुनिक दर्शन में तो ज्ञान–मीमांसा की आवश्यकता और अधिक बढ़ जाती है। अतः कहा जा सकता है कि दर्शन की कल्पना ज्ञान मीमांसा के अभाव में सम्भव नहीं है।

पाश्चात्य दर्शन में भी ज्ञान मीमांसा के महत्त्व को स्वीकार किया गया है, किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से ज्ञान– मीमांसा का जितना अधिक महत्त्व आधुनिक काल में देखा गया है उतना प्राचीन एवं मध्यकाल में नहीं। दोनों युगों का दर्शन विचारशील अथवा समीक्षा को उतना महत्त्व नहीं देता जितना विश्वास एवं आस्था को। इसकी प्रबलता आधुनिक युग में विशेष रूप से लॉक की पुस्तक (An Essay Concerning Human Understanding) के साथ देखी जाती है। लॉक की देन है कि ज्ञान मीमांसा को दर्शन में एक विशिष्ट शाखा के रूप में स्थान मिला। लॉक के पश्चात् ज्ञान–मीमांसा को दर्शन की एक पृथक् शाखा के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाने का श्रेय 'कॉण्ट' को जाता है। समकालीन दार्शनिक चिन्तन में भी कम या अधिक मात्रा में ज्ञान–मीमांसा को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला। तर्क मूलक, भाववाद, फलवाद, भाषा, विश्लेषणवाद में भी किसी–न–किसी रूप में ज्ञानमीमांसा के महत्व को स्वीकार किया गया है। संक्षिप्त रूप में कहा जा सकता है कि ज्ञानशास्त्र के अभाव में दर्शन का महल खड़ा नहीं किया जा सकता।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

9. ज्ञान प्राप्त करने की विधियाँ बताइए।

.....

.....

10. ज्ञान के लिए आवश्यक परिस्थिति क्या होती है?

.....

.....

11. ज्ञान की सत्यता के लिए अनुभवों को महत्व किसने दिया?

.....

.....

5.14 सारांश

इस इकाई में हमने ज्ञानमीमांसा के सन्दर्भ में कुछ व्युत्पतिशास्त्रीय और पारम्परिक परिभाषाओं के द्वारा कुछ प्राथमिक विचार प्रस्तुत किये हैं। पारम्परिक परिभाषा की विस्तृत व्याख्या द्वारा हमने यह समझाने का प्रयास किया है कि 'जानने' की प्रक्रिया कैसे घटित होती है और यह किस प्रकार हमें सचेत करती है कि यह इतना आसान नहीं है जितना कि प्रतित होता है। हमने यह निष्कर्ष भी निकला है कि सत्य ज्ञान को प्राप्त करने हेतु हमें प्रणाणिक सत्य विश्वास की आवश्यकता होती है। मात्र ज्ञान की परिभाषा हमें ज्ञान के सन्दर्भ में प्रचुर विचार प्रदान नहीं कर सकती। यही कारण है कि ज्ञान के दो स्रोतों बुद्धि और इन्द्रिय अनुभव को इतना महत्व दिया गया है। ऐसा माना जाता है कि हमें ज्ञान के इन दो स्रोतों की सहायता से वैध ज्ञान प्राप्त हो सकता है। बुद्धि और इन्द्रिय–अनुभव नामक ज्ञान के दोनों स्रोतों ने मानव को सन्देहवादी प्रवृत्ति अपनाने से रोका है और यह ज्ञान की प्रगति हेतु अति आवश्यक है।

ज्ञान का क्षेत्र अन्य कई विषयों से सम्बन्धित है जैसे कि तत्वमीमांसा, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, मनोविज्ञान व समाजशास्त्र आदि। ज्ञानमीमांसा एवं इन विषयों में कुछ समानताएँ व अंतर देखने को मिलते हैं। अन्ततः हमने कुछ महत्वपूर्ण कारणों का निरीक्षण किया है जो हमें बताते हैं कि मानव जीवन के लिए ज्ञानमीमांसा का अध्ययन कितना उपयोगी है।

5.15 अभ्यास के प्रश्न

1. ज्ञान मीमांसा के क्षेत्र एवं स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. ज्ञान के विभिन्न प्रकारों की विवेचना कीजिए।
3. ज्ञान मीमांसा के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।
4. ज्ञान मीमांसा एवं दर्शन के बीच के सम्बन्ध को लिखिए।
5. ज्ञान मीमांसा के शैक्षिक निहितार्थों का उल्लेख कीजिए।

5.16 चर्चा के बिन्दु

1. ज्ञानमीमांसा के अन्तर्गत ज्ञान की प्रकृति, स्वरूप, प्रकार, स्त्रोत, ज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्त आदि महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा कीजिए।

5.17 बोध प्रश्नों क उत्तर

1. शाब्दिक अर्थ को देखते हुये कहा जा सकता है कि 'एपिस्टेमोलाजी' (Epistemology) ज्ञान का विज्ञान है अथवा ज्ञान का सिद्धान्त, जिसे दार्शनिक दृष्टि से ज्ञान मीमांसा कहा जा सकता है।
2. ज्ञानमीमांसा का ध्येय सत्य के स्वरूप को समझकर सत्यता और असत्यता के भेद को स्पष्ट करना है।
3. ज्ञानमीमांसा ज्ञान की प्रकृति, उत्पत्ति, और ज्ञान का दायरा, ज्ञानमीमांसीय औचित्य, विश्वास की तर्कसंगतता और विभिन्न संबंधित मुद्दों का अध्ययन करते हैं।
4. यथार्थवाद
5. शंकराचार्य
6. ज्ञान और उचित विश्वास के कई प्रस्तावित स्रोत हैं जिन्हें हम अपने दैनिक जीवन में ज्ञान के वास्तविक स्रोत के रूप में लेते हैं। सबसे अधिक चर्चित कुछ में धारणा, कारण, स्मृति और गवाही शामिल हैं।
7. (1) अनुभववाद (2) संशयवाद (3) प्रत्ययवाद (4) बुद्धिवाद (5) यथार्थवाद (6) व्यवहारवाद
8. 1. नैतिक मूल्यों का विकास करना
   2. चरित्र का विकास करना
   3. सत्यम शिवम सुन्दरम् का विकास करना
9. विश्लेषणात्मक दर्शन, ज्ञान की वैयक्तिक अनुभव विधि, ज्ञान की अधिकारिकता विधि, ज्ञान की निगमन तर्क विधि, ज्ञान की आगमन तर्क, विधि वैज्ञानिक जाँच पड़ताल
10. ज्ञान की सार्थकता, ज्ञान की सत्यता, प्रतिज्ञप्ति की सत्यता
11. विलियम जेम्स

5.18 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. गुटेक, जी. एल. (2009), न्यू पर्सपेक्टिव्स ऑन फिलॉसिफीज ऑफ एजूकेशन, न्यू जर्सी पियर्सन कोलम्बिया, ओहियो अपर मंडल रिवर इंक।
2. इग्नू (2016) कंटेम्परेरी इंडिया एंड एजूकेशन (बीईएसएस–122. बी.एड.), ब्लॉक–3, फिलोसिफिक्ल पर्सपेक्टिव्स ऑफ एजूकेशन, नई दिल्लीरू इग्नू।
3. केनिलर, जी. एफ. (1967), फाउण्डेशन्स ऑफ एजूकेशन द्वितीय संस्करण, कैलिफोर्नियारू कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी, लॉस एंजिल्स।
4. मोहंती, जगन्नाथ (1994), इंडियन एजूकेशन इन दि इमर्जिंग सोसाइटी, नई दिल्ली : स्टलिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।
5. सक्सेना, एन. आर. एस. (2009), प्रिन्सिपल्स ऑफ एजूकेशन आर, लाल बुक डिपो मेरठ।
6. शर्मा, के. आर. (2002), फिलोसिफी ऑफ एजूकेशन, तृतीय संस्करण, दिल्ली : अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूशन।

7. सूरी. ए. एवं सोढ़ी टी. एस. (1988) : फिलोसिफिक्ल एंड सोशिओलोजिकल फाउंडेशन ऑफ एजूकेशन।

8. जैक्सन पी. हर्शबेल (1988), प्लूटार्कस पोर्ट्रेट ऑफ सुकरात इलिनोइस क्लासिक्ल स्टडीज, वाल्यूम 13, नंबर 2 प्लूटार्क (फॉल 1988), यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनोइस प्रेस द्वारा प्रकाशित।

इकाई– 6 : मूल्य मीमांसा : अर्थ, अवधारणाएं और शिक्षा में इसके शैक्षिक निहितार्थ

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 इकाई के उद्देश्य

6.3 मूल्य मीमांसा का अर्थ

6.4 मूल्यमीमांसा की विशेषताएँ

6.5 मूल्यों के प्रकार

6.6 मूल्यों के क्षेत्र

6.7 मूल्यमीमांसा पर आधारित शिक्षा

6.8 मूल्यों की शिक्षा में आवश्यकता

- 6.8.1 तर्कशास्त्र
- 6.8.2 तर्कशास्त्र और शिक्षा
- 6.8.3 नीतिशास्त्र
- 6.8.4 नीतिशास्त्र और शिक्षा
- 6.8.5 सौन्दर्यशास्त्र
- 6.8.6 सौन्दर्यशास्त्र और शिक्षा

6.9 शिक्षा के उद्देश्य

6.10 शिक्षा का पाठ्यक्रम

6.11 शिक्षण विधियाँ और प्रविधियाँ

6.12 अध्यापक की भूमिका

6.13 छात्र की भूमिका

6.14 विद्यालय प्रबन्धन

6.15 सारांश

6.16 अभ्यास के प्रश्न

6.17 चर्चा के बिन्दु

6.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.19 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

'पाश्चात्य दर्शन के परिवार में मूल्य मीमांसा अन्य शाखाओं की अपेक्षा एक शिशु है, यद्यपि इसकी जड़ें **प्लेटो, अरस्तु, सेंट टामस एक्विनस** और **स्पिनोजा** में विद्यमान हैं। नीतिशास्त्र या नैतिक शुभ का सिद्धान्त दर्शन के अत्यधिक प्राचीन क्षेत्रों में से एक है और सौन्दर्यशास्त्र या सौन्दर्य की विधा ने दार्शनिकों का बहुत समय से ध्यान आकृष्ट किया है, लेकिन आधुनिक समय में अनेक व्यक्तियों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इन क्षेत्रों तथा हमारे जीवन के अन्य मूल सम्बन्धी क्षेत्रों में व्याप्त एक सामान्य क्षेत्र है।'

दर्शन में तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा के अतिरिक्त उसकी अन्तिम महत्त्वपूर्ण शाखा मूल्य मीमांसा है। मूल्य मीमांसा उन कसौटियों और सिद्धान्तों को स्पष्ट करती है जिसमें यह निश्चित किया जा सके कि मानव व्यवहार में क्या अच्छा है। कला में क्या सुन्दर है। सामाजिक व्यवहार में उचित क्या है और अन्त में वह क्या है जो इन सब में उपस्थित है। और वह क्या है जो इन सबको एक–दूसरे से भिन्न बनाता है। मानव जीवन की वे प्रक्रिया जिन्हें हम स्वयं में मूल्यवान मानते हैं या वे समान वस्तुयें अथवा विचार आदि जो किसी समूह के जीवन में केन्द्रीय स्थान रखते हैं, कलान्तर में मूल्य का रूप धारण कर लेते हैं अर्थात् कहा जा सकता है कि मूल्य किसी समूह द्वारा समान रूप से स्वीकृत वे अभिवृत्तियाँ हैं जो लोगों को एकता के सूत्र में बाँधती हैं और दर्शन मूल्यों का अध्ययन करने वाली सामान्य विद्या अथवा चरम मूल्यों का विज्ञान है। इस प्रकार शिक्षा में मूल्य मीमांसा का कार्य उन मूल्यों की परख करना एवं उन्हें समाहित करना है जो इस शाखा के माध्यम से लोगों के जीवन में प्रवेश करती हैं।

6.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि –

1. व्यवहार विज्ञान में मूल्यों की अवधारणा को समझ सकेंगे।
2. मानव–मूल्यों की प्रकृति को समझ सकेंगे।
3. मानव–मूल्यों के स्रोतों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
4. मूल्यों के विभिन्न निर्धारकों तथा शिक्षा पर पड़ने वाले उनके प्रभाव के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
5. जीव की वर्त्तमान स्थिति में मूल्यों के आयामों के प्रति लगाव का अनुभव कर सकेंगे।
6. भारतीय संस्कृति में मानव मूल्यों के महत्व की चर्चा कर सकेंगे।
7. विद्यालय की पाठ्यचर्या में मूल्य शिक्षा के उद्देश्य जिस प्रकार समाहित किये गये हैं, उनसे अवगत हो सकेंगे।
8. छात्रों को ऐसे अवसर प्रदान कर सकेंगे कि वे इन मूल्यों को जीवन में आत्म ज्ञान कर सकेंगे।

6.3 मूल्य मीमांसा का अर्थ

मूल्य मीमांसा (शास्त्र) को अंग्रेजी में एक्जिओलॉजी Axiology कहा जाता है जो दो शब्दों से मिलकर बना है।

1. एक्सीऑस (Axios) : मूल्य – Value or worth
2. लॉजी (Logy) : विज्ञान – Science इस शाखा में विभिन्न प्रकार के मूल्यों, आदर्शों और लक्ष्यों पर विचार किया जाता है। मूल्य मीमांसा के अनुसार प्रत्येक पदार्थ के दो पक्ष होते हैं–
    1. तथ्य पक्ष (Rational aspect)
    2. मूल्य पक्ष (Value aspect)

जब हम किसी भी पदार्थ के तथ्य पक्ष की व्याख्या करते हैं तो उसमें हम उसके रूप, आकार, प्रारूप व भार आदि की चर्चा करते हैं। किन्तु जब हम पदार्थ के मूल्य पक्ष की विवेचना करते हैं तो हम उसके गुणों की चर्चा करते हैं। मूल्य विषयगत होते हैं। इनकी वरन् इसकी अनुभूति की जा सकती है। मूल्य मीमांसा मुख्यतया तीन बातों पर केन्द्रित रहती है–

1. क्या मूल्य वस्तुनिष्ठ या व्यक्तिनिष्ठ होता है।
2. क्या मूल्य परिवर्तनशील है या स्थाई होता है।
3. क्या मूल्यों में एक उत्क्रम व्यवस्था विद्यमान है या नहीं।

वास्तव में यदि देखा जाये तो सद्जीवन मूल्य मीमांसा का क्षेत्र है जो शुभ–अशुभ, सुन्दर–असुन्दर तथा अच्छे–बुरे से सम्बन्ध रखती है मूल्य मीमांसा हमारी अनुशासन सम्बन्धी धारणाओं को भी प्रभावित करती है।

मीमांसा शब्द का तात्पर्य समाहत विचार और मूलतः इसका प्रयोग वैदिक धर्मकृत्यों की व्याख्या के लिये होता था जो सर्वोच्च सम्मान रखते थे और वर्तमान समय में मीमांसा शब्द का प्रयोग समीक्षात्मक अन्वेषण के रूप में किया जाता है।

इस प्रकार मूल्य मीमांसा का तात्पर्य मूल्यों का समीक्षात्मक अन्वेषण एवं वैज्ञानिक अध्ययन से है। अर्थात् मूल्य मीमांसा में व्यक्ति के आचार और व्यवहार को अध्ययन एवं दिशा प्रदान की जाती है जिसमें जीवन में हो रहे अथवा प्रस्तावित कार्य को सबल और तार्किक आधार प्राप्त होता है।

मूल्यों का दार्शनिक अर्थ (Philosophical Meaning of Values) : मूल्यों के दार्शनिक अर्थापन में व्यक्ति को महत्त्व नहीं दिया जाता है, अपितु विचारों एवं दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी जाती है। एक वस्तु किसी व्यक्ति के लिए उपयोग हो सकती है, परन्तु किसी अन्य व्यक्ति के लिए नहीं, उस वस्तु की कोई भी उपयोगिता नहीं है। उसके लिए उस वस्तु का कोई मूल्य नहीं होगा। इस प्रकार दार्शनिक विचार एवं दृष्टिकोण का मूल्य से सीधा सम्बन्ध होता है। दार्शनिक विचारधारा पर स्थान, समय एवं परिस्थिति का प्रभाव होता है। इसलिए जो विचार एवं दृष्टिकोण परिस्थिति के अनुरूप तथा उपयोगी हो उसे 'मूल्य' कहते हैं।

मूल्यों का सामाजिक अर्थ (Sociological Meaning of Values) : मूल्यों का विकास सामाजिक स्वरूप के अन्तर्गत धीरे–धीरे समाज के सदस्यों की अन्तःप्रक्रिया से होता है। अपनी जीविका के लिए समस्याओं का सामना करना होता है। समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ उसे सहयोग करना तथा उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना होता है। अपनी संस्कृति के अनुरूप व्यवहार करना होता है। इस प्रकार बिना सामाजिक मूल्यों के सामाजिक प्रणाली में शान्ति का अनुरक्षण करना सम्भव नहीं होगा। मानवी अनुभवों एवं अस्तित्व से मूल्यों की प्राप्ति की जाती हैं, जिन्हें सामाजिक 'मानक' भी कहते हैं।

मूल्यमीमांसा के अनुसार मूल्यों का अर्थ (Axiological Meaning of Values) : मूल्यमीमांसा के अनुसार मूल्यों को मानदण्ड तथा निर्णायक कहते हैं। यह मानदण्ड भावात्मक तथा बौद्धिक होते हैं। इनका क्षेत्र मनोवैज्ञानिक नहीं है, अपितु दार्शनिक अधिक है। मूल्यों के आधार पर ज्ञान एवं अनुभवों की सार्थकता की परख की जाती है। मूल्य दर्शन की पाठ्यवस्तु है, अपितु शिक्षा एवं दर्शन ही मूल्यों के सम्बन्ध में निर्णय ले सकते हैं और मूल्यों से ज्ञान की सार्थकता की परख भी की जाती है।

मूल्यों का शैक्षिक अर्थ (Educational Meaning of Values) : शिक्षा के मूल्यों का सम्बन्ध उन क्रियाओं से होता है जो अच्छी उपयोगी तथा मूल्यवान होती है। एडम्स के अनुसार शिक्षा को द्विपदीय प्रक्रिया मानते हैं एक पद शिक्षक तथा दूसरा पद छात्र होता है। शिक्षा विभिन्न प्रकार के आव्यूहों तथा प्रविधियों का उपयोग करके छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन लाता है। वह जिनको उपयोगी तथा मूल्यवान समझता है उनकी सहायता से समुचित वातावरण का सृजन करता है। छात्र जिन्हें मूल्यवान समझता है उनमें क्रियाशील होता है। शिक्षक एवं छात्र उन्हीं क्रियाओं में सहभागी होते हैं, जो शिक्षा की दृष्टि से उपयोगी एवं मूल्यवान होते हैं। कनिघंम के अनुसार शिक्षा के मूल्य ही शिक्षा के लक्ष्य होते हैं, इन्हीं गुणों एवं क्षमताओं को शिक्षा द्वारा प्रोन्नत किया जाता है। इन्हें ही आन्तरिक मूल्य कहा जाता है। बूवेकर भी शिक्षा के लक्ष्यों को शिक्षा के मूल्य कहता है।

6.4 मूल्य मीमांसा की विशेषताएँ

इन अर्थों एवं परिभाषाओं में 'मूल्य' की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। मूल्य मीमांसा की मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार से वर्णित है–

1. मूल्य जीवन के मानक रूपी मानदण्ड है।
2. मूल्यों को समाज द्वारा स्वीकृति दी जाती है।
3. मूल्यों को आकांक्षाओं के रूप में धारण करते हैं।
4. मूल्यों की प्रकृति व्यावहारिक (आचरण) होती है।
5. मूल्यों का सम्बन्धी भावनाओं तथा संवेदनाओं से होता है।
6. मूल्यों में नैतिक नियमों का पालन किया जाता है।
7. मूल्यों का सम्बन्ध धर्म एवं संस्कृति से होता है।
8. मूल्यों का विकास अनुकरण से होता है।
9. जीवन के प्रति दृष्टिकोण को मूल्य मानते हैं।
10. मूल्यों का सन्दर्भ बिन्दु समाज होता है। इनका सम्बन्ध भावात्मक पक्ष से अधिक होता है।
11. मूल्य व्यक्ति की इच्छाओं एवं अभिवृत्तियों पर निर्भर होते हैं। अभिवृत्तियों की गहनता ही मूल्यों का रूप ले लेती है।
12. मूल्यों के आचरण से धर्म, समाज, संस्कृति तथा राष्ट्र की पहचान होती है। सभी राष्ट्र तथा समाज मूल्यों पर बल देते हैं।

बिना मूल्यों के कोई अस्तित्व नहीं होता है। बिना अस्तित्व के कोई भी मूल्य नहीं होते हैं। जीवन में सत्य किसी को भी माने उसके चिन्तन में तथ्यों में मूल्य निहित होते हैं।

मूल्यों का महत्त्व तभी होता है जब उनकी वास्तविकता तथा महत्त्व को अनुभव करें। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के अतिरिक्त किसी का भी अस्तित्व नहीं है। यह वास्तविक सत्य है। वैयक्तिता का अस्तित्व मूल्यों से ही होता है।

व्यक्ति के आचरण से मूल्यों का बोध होता है कि उसका समायोजन कैसा है। उसकी अनुभूति कैसी है। उसका भावात्मक अनुभव किस प्रकार का है। तथा मूल्यों में आनन्द कैसे लेता है। परमात्मा में मूल्य निहित है तथा वह अपने में पूर्ण है उससे सभी सकारात्मक मूल्यों को प्राप्त कर सकते हैं और उनका आनन्द ले सकते हैं।

6.5 मूल्यों के प्रकार

उपरोक्त विवेचन से विदित होता है कि मूल्यों के प्रकरण का अध्ययन दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, धर्म संस्कृति में किया जाना है। मनोवैज्ञानिकों ने मूल्यों का वर्गीकरण किया है। यदि मूल्यों के प्रकार की समीक्षा की जाए तो मूल्यों के प्रकार की लम्बी सूची बन जायेगी। दार्शनिकों ने इसे मूल्यमीमांसा का एक वृहद क्षेत्र माना है, परन्तु सभी ने अपने–अपने ढंग से विवेचन किया है, क्योंकि यह उनके 'सत्य' में मिलता है। दार्शनिक मूल्यमीमांसा में चार मूल्यों का ही उल्लेख किया है। यह चार मूल्य इस प्रकार हैं–

(1) नैतिक मूल्य या आचार संहिता मूल्य (Ethical or Moral Value),

(2) सौन्दर्यानुभूति मूल्य (Aesthetic Values),

(3) सामाजिक मूल्य (Social Values) तथा

(4) धार्मिक मूल्य (Religious Values)

(1) **नैतिक मूल्य या आचार–संहिता मूल्य** (Ethical or Moral Value)– नैतिक मूल्यों को जीवन की आचार संहिता भी मानते हैं। मूल्यों को तात्कालिक और परम मूल्यों के रूप में दो प्रकार का मानकर विचार किया जाए। जिन नैतिक शुभ संकेतों को मैं अपने तात्कालिक अनुभवों में ढूँढ़ता हूँ उनका निश्चय घटनाओं के परिणामस्वरूप और परम शुभ संकेत के द्वारा होता है। इस शुभ संकेत को मैं साध्य या लक्ष्य के रूप में सोचता हूँ जिसके लिए मैं सम्पूर्ण जीवन बिताता हूँ। यदि मैं तर्क–वितर्क करता हूँ कि जीवन में प्रमुख शुभ सुख है तो अपने प्रतिदिन के आचरण में मैं उन क्रियाओं को चुनूँगा जो सर्वाधिक सुख प्रदान करें और उन क्रियाओं को बहिष्कृत कर दूँगा, जो इस प्रकार मुझे पुरस्कृत न करें। यदि परम शुभ संकेत के रूप में मैं स्वयं की पूर्णता और यथासम्भव पूर्णतम अनुभूति को मानता हूँ तो मैं उन वर्तमान क्रियाओं को चुनूँगा, जो मेरे अपने पूर्णतम विकास और आत्म–लाभ के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होने का दावा करती हों। नीतिशास्त्र में यह नितान्त भिन्न अभिवृत्ति है।

कोई ऐसा निरपेक्ष आधार नहीं है जिस पर नैतिक मूल्यों का निर्धारण किया जा सके। इस सन्दर्भ में यही सोचा जा सकता है कि हम जिस सामाजिक समूह में रहते हैं उसकी स्वीकृति ही मूल्य का आधार है। मेरा आचरण समाज को स्वीकार है, उसी में नैतिक मूल्य निहित हैं और मैं उस आचरण से संतुष्ट रहता हूँ।

(2) **सौन्दर्यानुभूति मूल्य** (Aesthetic Value)– सौन्दर्यानुभूति मूल्यों का पता लगाकर समझना कुछ अधिक कठिन है। जो लोग इनका उपभोग करते हैं वे हममें से शेष लोगों को इन मूल्यों की प्रकृति को ठीक से बता नहीं पाते, और हममें से जो लोग इन्हें समझते ही नहीं है वे इनका उपभोग करने वाले लोगों की संगति से रहित होते हैं, लेकिन फिर भी यह हो सकता है कि हम बिना जाने ही सौंदर्य के जैसी वस्तु का उपभोग कर रहे हों, या इन मूल्यों के अभाव का दण्ड भोग रहे हों और यह जानते ही न हों कि ऐसा क्यों है।

वस्तुओं का मूल्य समझने की एक विधि यह है कि वे वस्तुएँ हममें सूक्ष्म और प्रायः अज्ञात भावना स्वरों को किस प्रकार जाग्रत कर देती हैं। सुन्दर सूर्यास्त हमारा उन्नयन कर सकता है या हमें भयभीत कर सकता है या हम इसमें रंग के उन प्रतिमानों को ढूँढ सकते हैं जो हमें रुचिकर व आकर्षक लगते हैं। रेगिस्तान को मोटर से पार करते हुए केरी मोटरकार चक्कर काटती हुई प्रतीत हो सकती है और भूखण्ड उसी प्रकार दिखाई पड़ता हुआ, मुझमें निर्जनता का भयावह भाव भर सकता है। एक बड़े नगर के किसी अपेक्षित भाव का मलिन दृश्य मुझमें निराशा का भाव भर सकता है और हम इस मलिनता से दूर भागने की इच्छा कर सकते हैं। संगीत की अविरल लहरी (स्वर) से मैं राहत की साँस ले सकता हूँ और यह अनुभव कर सकता हूँ कि इस संसार में मैं भी आराम से हूँ और इसमें मुझे भी कुछ वास्तविक कार्य करना है।

यह वे मूल्य हैं जिनकी ओर सम्भव है सामान्य रूप से ध्यान न दिया गया हो, किन्तु सम्पूर्ण जीवन के किसी प्रयत्न में सम्भवतः इनको पहिचानने और स्वीकार करने की योग्यता का विकास निहित है कि उस रचनात्मक अभिवृत्ति की प्राप्ति में सहायता की जाए जो हमारे अनुभव को इस प्रकार नियन्त्रित करेगी कि यथासम्भव अधिकतम अभीष्ट सौन्दर्यानुभूति मूल्यों की अनुभूति की जाए।

सौन्दर्यानुभूति मूल्यों का अध्ययन सौन्दर्य शास्त्र के अन्दर किया जाता है। जिसे सौन्दर्य का विज्ञान भी कहते हैं। इसका सम्बन्ध शिक्षा के अन्तिम लक्ष्य से है। शिक्षा के तीन अन्तिम लक्ष्य की चर्चा की जाती हैकृ सत्यम् शिवम् तथा सुन्दरम् का सीधा सम्बन्ध सौन्दर्यानुभूति मूल्यों से है। यह व्यक्ति का कलात्मक पक्ष है। शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास करना है। इस विकास में नैतिक और सौन्दर्यात्मक दोनों ही प्रकार के मूल्यों का विकास आवश्यक है, जबकि नैतिक विकास में नीतिशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है और सौन्दर्यात्मक विकास सौन्दर्यशास्त्र का ज्ञान सहायक है।

सौन्दर्यशास्त्र ही समस्त साहित्यिक तथा कलात्मक समालोचना का आधार है। यह मूल्य साहित्य और कला को दार्शनिक आधार प्रदान करते हैं, क्योंकि व्यक्ति के विकास में साहित्य और कला का महत्वपूर्ण योगदान है। इस विवेचन से सौन्दर्यानुभूति मूल्य का महत्त्व एवं उपयोग स्पष्ट प्रतीत होता है। संगीत सर्वोत्तम कला है।

(3) **सामाजिक मूल्य** (Social Value)–सामाजिक मूल्य के किसी विशिष्ट सिद्धान्त को न मानते हुए भी यह कहा जा सकता है कि समाज से अच्छी तरह सम्बद्ध रहने में व्यक्ति मानव जीवन के सामान्य सन्दर्भ के अन्दर ही है। मनुष्य होते हुए, और मनुष्य की सभी भूख और क्षमताएँ रखते हुए, उसके जीवन का सामान्य माध्यम मानव समाज ही है। यदि मनुष्य की समाज से छुटकारा पाने की समान्य इच्छा है तो भी वह मृत्यु के अलावा समाज से अलग नहीं हो सकता और यदि हममें से किसी को जीवन में उठना है और सर्वोत्तम कार्य करना है तो हमें दूसरे व्यक्तियों के मित्र या पड़ोसी होने के नाते सभी अवसरों एवं दायित्वों का निर्वाह करना है। हमें उन कर्त्तव्यों को भी स्वीकार करना है, जो सामान्य सामुदायिक जीवन के उत्तरदायी प्रतिभागी के रूप में हमें निभाने हैं। इस सामुदायिक जीवन का क्षेत्र स्थानीय से लेकर सार्वभौमिक तक हो सकता है। यही मार्ग है कुछ पुरस्कारों के प्राप्त करने का, जिनमें से कुछ तो वैयक्तिक होते हैं और दूसरे सभी सामान्य होते हैं और इन्हीं को सही माने में सामाजिक मूल्य कहा जा सकता है।

(4) **धार्मिक मूल्य** (Religious Value)– हमारा जीवन कलात्मक की अपेक्षा धार्मिक अधिक है। इसलिए धार्मिक मूल्यों के चिन्तन के लिए हमारे पास आधार तो होता ही है और जीवन–यापन का मार्ग प्रशस्त होता है। हमारे धार्मिक मूल्य सम्भवतः हमारी तत्व मीमांसा पर आश्रित हैं। इनका उल्लेखनीय अपवाद यह है कि धार्मिक अनुभव श्रुति का माध्यम भी हो सकता है और श्रुति तत्वमीमांसा को प्रभावित करेगी, लेकिन सामान्यतः हम ईश्वर में विश्वास न करने की स्थिति में धार्मिक अनुभव में उस प्रकार का मूल्य नहीं देख सकते हैं जिस प्रकार का मूल्य हम तब देखेंगे जब ईश्वर में विश्वास करेंगे। अतः इस स्थान पर हम केवल इसका संकेत कर सकते हैं कि कुछ धार्मिक मूल्य क्या हो सकते हैं। बाद में, दर्शनों के विश्लेषण में हम उन धार्मिक मूल्यों की चर्चा कर सकते हैं, जिनका तत्व मीमांसात्मक मूल उन दर्शनों में है। मूल्यों की समीक्षा मूल्यों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि मूल्यों पर हमारा जीवन आधारित है। वास्तव में आचरणों से मूल्यों का बोध होता है। मूल्यों के ज्ञान से मात्र मीमांसा होती है। मूल्यों की यथार्थता तो हमारे संस्कारों तथा आचरण में निहित होती है जिनसे हमें संतोष प्राप्त होता है। वास्तव में मूल्य दर्शनों की महत्वपूर्ण समस्या है, जिनका सीधा सम्बन्ध दर्शन की तत्वमीमांसा से होता है। तत्वमीमांसा दर्शन की सैद्धान्तिक समस्या है, जबकि मूल्यमीमांसा उसकी व्यवहारिक समस्या। भारतीय दर्शनों ने मूल्यमीमांसा का विशद् विवेचन किया है। योग दर्शन व्यावहारिक दर्शन है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. मूल्य मीमांसा का अर्थ बताइए।

.....

.....

2. मूल्य मीमांसा के प्रकार बताइए।

.....

.....

3. मूल्य मीमांसा की विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

4. मूल्यों की प्रकृति समझाइए।

.....

.....

6.6 मूल्यों के क्षेत्र

मूल्यों के अनेक क्षेत्र हैं मुख्य क्षेत्र निम्नवत वर्णित है–

(1) **आर्थिक मूल्य** (Economic Value) – इसको हम साधक या उपकरणीय मूल्य कह सकते हैं। हम धन को मूल्यवान न मानकर उसके द्वारा जो प्रसन्नता हमें प्राप्त होती है उसे मूल्यवान समझते हैं। मूल्यों की शिक्षा में धन के सदुपयोग पर बल दिया जाना चाहिये।

(2) **स्वास्थ्य सम्बन्धी मूल्य** (Health Values) – यह मूल्य शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित है। मूल्य शिक्षा में स्वस्थ जीवन के मूल्य की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है।

(3) **सामाजिक मूल्य** (Social Values)– मूल्य शिक्षा ऐसे मूल्यों को प्रोत्साहित कर सकती है जो मित्रता, प्रेम, उदारता इत्यादि हो।

(4) **नैतिक मूल्य** (Moral Values)– नैतिक मूल्यों की शिक्षा विद्यार्थी के अन्दर उपयुक्त एवं सही विकल्पों के चुनाव करने की क्षमता में वृद्धि और उनमें सन्तोष प्राप्त करने की आदत बनाने की ओर दिखानी चाहिये।

(5) **सौन्दर्यानुभूति मूल्य** (Aesthetic Values)– इस क्षेत्र में मूल्य शिक्षा सुन्दर और असुन्दर में विभेद करने की योग्यता में वृद्धि की ओर होनी चाहिये।

(6) **बौद्धिक मूल्य** (Intellectual Values) – हम किसी कार्य या वस्तु को बौद्धिक मूल्य का उस समय करते हैं जबकि वह किस प्रकार से सत्य का पता लगाने में सहायक या बाधक होता है। मूल्य शिक्षा बौद्धिक मूल्यों की शिक्षा सत्य की खोज की ओर विद्यार्थियों की रुचि बढ़ा कर दे सकती है।

6.7 मूल्य मीमांसा पर आधारित शिक्षा

किसी भी दर्शन की मूल्य मीमांसा हमें ज्ञान और सत्य के चयन के लिए आधार प्रदान करती है। मूल्य मीमांसा को मूल्य सिद्धान्त कहते हैं। मूल्यों का महत्त्व तभी होता है जब व्यक्ति मूल्यों की अनुभूति करता है और भावात्मक दृष्टि से जुड़कर उनका आनन्द लेता है। विद्वानों का यह मानना है कि ईश्वर का अस्तित्व है और वही शाश्वत है उसके अन्दर सभी मूल्य भी समाहित है। वह पूर्ण भी है और हमें सभी सकारात्मक मूल्यों की अनुभूति प्रदान करता है। मूल्य आचरण का प्रकरण है।

मूल्य तभी सत्य होते हैं जब हम उनके बारे में अनुभूति करते हैं। आदर्शवाद के अनुसार जीवन के अन्तिम मूल्य सत्यम् शिवम् एवं सुन्दरम् माने गये हैं। कुछ ऐसे सत्य है जो वस्तुओं के रूप में भी पाये जाते हैं, जिनकी सुन्दरता होती है तथा उनकी अच्छाईयों से हमको संतोष मिलता है। मनुष्य के जीवन का जो लक्ष्य बिन्दु होता है उसका आकलन मूल्यों से किया जाता है।

दर्शन के अनुसार प्रमुख चार मूल्य– नैतिक, सौन्दर्यानुभूति, सामाजिक एवं धार्मिक का विवेचन किया जाता है। मूल्यों का आधार भी दर्शन का सत्य होता है। मूल्यों और सत्य को पृथक करना कठिन है। इस अध्याय में मूल्यों की शिक्षा के स्वरूप और उसकी आवश्यकता का वर्णन किया गया है।

6.8 मूल्यों की शिक्षा में आवश्यकता

मूल्य मानव जीवन की सार्थकता है, उनका धर्म है एवं उनका अस्तित्व है। मूल्यों का ज्ञान एवं आचरण हमारे लिए आवश्यक है। हमारे लिए मूल्यों का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है अपितु मूल्यों को आचरण में लाना अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। मूल्यपरक जीवन का अभ्यास आवश्यक होता है, जीवन की सार्थकता को खोजकर उसको प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। मूल्य जीवन के अन्तिम लक्ष्य होते हैं। इसलिए शिक्षा मूल्यपरक होनी आवश्यक है।

मूल्य मीमांसा को शैक्षिक दृष्टि से देखने के लिये मूल्य मीमांसा के सबसे पहले तीन नियामक विज्ञान की चर्चा करेंगे। तत्पश्चात् उनके शैक्षिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करेंगे। मूल्य मीमांसा (Axiology) में तीन नियामक विज्ञान शामिल हैं जिन्हें शैक्षिक दृष्टि से भी हम जानने का प्रयास करेंगे।

(1) तर्कशास्त्र (Logic)

(2) नीतिशास्त्र (Ethics)

(3) सौन्दर्यशास्त्र (Aesthetics)

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

5. मूल्यों की आवश्यकता एवं उपयोगिता को महत्व किसने दिया?

.....

.....

6. मूल्य मीमांसा के नियामक विज्ञान कौन–कौन से हैं?

.....

.....

7. मूल्यों के क्षेत्र बताइए।

.....

.....

6.8.1 तर्कशास्त्र

'लाजिक' शब्द यूनानी शब्द 'लोगस' से लिया गया है जिसका अर्थ तर्क अथवा शब्दों या वाद–विवाद में तर्क की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार शाब्दिक अर्थों में तर्कशास्त्र तर्क का विज्ञान है। डीवी और स्टेबिंग के अनुसार तर्क विवेकयुक्त चिन्तन है और विवेकयुक्त चिन्तन एक प्रक्रिया है जिसमें एक स्थाई परिकल्पना के आधार पर प्रमाणों को तोलकर और इस प्रकार किसी निष्कर्ष पर पहुँचकर किसी समस्या को सुलझाया जाता है। तर्क आगमनात्मक अथवा निगमनात्मक होता है। निगमनात्मक तर्क में हम सामान्य सिद्धान्त से विशेष निष्कर्ष निकालते हैं।

कोहेन और नागेल के शब्दों में, "तर्कशास्त्र को विभिन्न प्रकार के प्रमाणों की उपयुक्तता अथवा सम्भावित मूल्य के प्रश्न से सम्बन्धित कहा जा सकता है।"

तर्कशास्त्र निष्कर्ष और प्रमाण दोनों से सम्बन्धित है। प्रमाण आंशिक अथवा अन्तिम हो सकता है। परम्परागत रूप में तर्कशास्त्र का सम्बन्ध अन्तिम प्रमाण से न होकर आंशिक प्रमाण से भी है। कोहेन और नागेल के शब्दों में, "अस्तु, तर्कशास्त्र की व्याख्या निहितता अथवा प्रामाणिक अनुमान (इस निहितता पर आधारित) के विज्ञान के रूप में भी की जा सकती है।"

तर्कशास्त्र समस्त ज्ञान का आधार है। इसीलिये वह विज्ञानों का विज्ञान कहलाता है। वह चिन्तन, तर्क और निर्णय देना जैसी बौद्धिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। समस्त शिक्षा सिद्धान्त और व्यवहार से सम्बन्धित है। जबकि सिद्धान्त आगमन से निकाले जाते हैं। व्यवहार निगमन पर आधारित होता है। आगमन और निगमन दोनों ही तर्कशास्त्र की महत्त्वपूर्ण शाखायें हैं। तर्कशास्त्र का ज्ञान हमें भूलों से बचाकर सही सामान्यीकरण पर पहुँचने में सहायता करता है। वह सन्देहों और भ्रान्तियों को दूर करता है। उसका बौद्धिक

अभ्यास सभी गम्भीर विद्यार्थियों के लिये आवश्यक है। अतः शिक्षक को अनिवार्य रूप से तर्कशास्त्र का ज्ञान होना चाहिये।

6.8.2 तर्कशास्त्र और शिक्षा

तर्कशास्त्र और शिक्षा में घनिष्ठ सम्बन्ध है। शिक्षा और शिक्षण की किसी भी भावी योजना की तर्कशास्त्र बड़ी मदद करता है। क्या, कहाँ, कब, क्यों और कैसे प्रश्नों के माध्यम से शिक्षा का भूत, वर्तमान और भविष्य निश्चित होता है। निष्कर्ष स्पष्ट कहा जा सकता है कि तर्कशास्त्र, शिक्षाशास्त्र की निम्न प्रकार से सहायता करता है–

(1) सीखने के विभिन्न सिद्धान्तों का ज्ञान और प्रयोग
(2) छात्रों में सत्य और असत्य में विभेद करने की योग्यता का विकास
(3) मूल्यांकन में तार्किक और विश्वसनीय दृष्टि का आधार
(4) विद्यार्थियों हेतु विषयों का वर्गीकरण
(5) क्षमता का अध्ययन तथा उनके अनुरूप विषयों की व्यवस्था
(6) विभिन्न शिक्षण विधियों पर तार्किक दृष्टि

तर्कशास्त्र को बोध चिन्तन के नियमों का आदर्शमूलक विज्ञान कहा जाता है। यह दार्शनिक चिन्तन की एक पारम्परिक विधि है। इसमें चिन्तन की प्रक्रिया का वर्णन नहीं होता अपितु भिज्ञता होती है कि चिन्तन कैसे होता है। इसमें जानने पहचानने के तथ्यों से चिन्तन शुरू होता है जिसे प्रमाण कहा जाता है। प्रमाण के आधार पर ही व्यक्ति परिणामों का अनुमान लगाया जाता है कि क्या ये अनुमान सही हैं अथवा किस सीमा तक सही हैं। यह जाँच की एक सीमा है और यही प्रमाण तर्कशास्त्र करता है। इसमें आगमन और निगमन की लम्बी प्रक्रिया निहि है और शिक्षा इन प्रक्रियाओं के संचालन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। तर्कशास्त्र में शिक्षा के क्षेत्र में मुख्य रूप से तीन क्रियायें होती हैं–

(1) चिन्तन का प्रगतिशील प्रारूप
(2) चिन्तन वार्तालाप द्वारा
(3) आगमन और निगमन चिन्तन

6.8.3 नीतिशास्त्र

तर्कशास्त्र के अतिरिक्त मूल्य मीमांसा का एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र नीतिशास्त्र है। शाब्दिक अर्थ में एथिक्स (Ethics) शब्द इथोस (Ethos) नामक शब्द से निकला है जिसका अर्थ चरित्र होता है। इस प्रकार एथिक्स चरित्र, आदतों, मानव प्राणियों के व्यवहार का विज्ञान है। एथिक्स को मोरल फिलॉस्फी (Moral Philosophy) भी कहते हैं। मोरल (Moral) शब्द लैटिन भाषा के मोर्स (Mores) शब्द से निकला है जिसका अर्थ रिवाज या व्यवहार का विज्ञान है। हिन्दी में नीति का अर्थ व्यवहार के सिद्धान्त से है। इस प्रकार नीतिशास्त्र मानव आचरण का विज्ञान है। आदतें और व्यवहार मानव चरित्र की स्थाई विशेषतायें होते हैं। आचरण (आचार) चरित्र का दर्पण है। इस प्रकार नीतिशास्त्र चरित्र अथवा आदत का विज्ञान है। वह मानव आदतों, चरित्र तथा निर्णयों का मूल्यांकन करता है और उनके औचित्य का विवेचन करता है।

नीतिशास्त्र मानव प्राणियों के कर्त्व्यों की विवेचना करता है वह आचार के नैतिक निर्णयों का विवेचन करता है। आचरण में प्रेरणा होती है। उसमें संकल्पनात्मक निर्णय होते हैं। निर्णय चरित्र का व्यावहारिक रूप है। इस प्रकार नीतिशास्त्र चरित्र में उचित और अनुचित का अध्ययन करता है। आदतों और निर्णयों का औचित्य जीवन के आदर्शों के मापदण्ड से निश्चित होता है। इन आदर्शों अथवा शुभों के भी वर्ग होते हैं।

6.8.4 नीतिशास्त्र और शिक्षा

जे.एस. मैकेन्जी के अनुसार नीतिशास्त्र के अध्ययन में कम–से–कम चार वर्ग आते हैं–

(1) नैतिक चेतना का विज्ञान।

(2) नैतिक जीवन का समाजशास्त्र।

(3) नैतिक कसौटियों के सिद्धान्त।

(4) नैतिक जीवन में इस कटौती को लागू करना।

नीतिशास्त्र के ये चारों वर्ग शिक्षा के प्रमुख आधार हैं। शिक्षा का सबसे अधिक प्रचलित लक्ष्य मानव निर्माण अथवा चरित्र निर्माण है। चरित्र के निर्माण के रूप में नीतिशास्त्र नैतिक चेतना के मनोविज्ञान का विश्लेषण करता है। वह यह दिखाता है कि कैसे विभिन्न नैतिक नियम विभिन्न परिस्थितियों में विकसित होते हैं। परन्तु फिर वह नियमों की प्रामाणिकता की जाँच करता है और शिक्षार्थी के सामाजिक विकास के लिये आधार उपस्थित करता है। शिक्षा का लक्ष्य नैतिक विकास है।

नीतिशास्त्र के अन्तर्गत उन मूल्य विषयक समस्याओं का अध्ययन होता है जिनका सम्बन्ध व्यक्ति के आचरण से होता है। इस प्रकार के प्रश्नों में सम्मिलित है जैसे– शुभ–अशुभ, सद्–असद् आदि मनुष्य को क्या करना चाहिये अथवा क्या नहीं, वह भी इसी में निहित है।

6.8.5 सौन्दर्यशास्त्र

सौन्दर्यशास्त्र सुन्दर और असुन्दर में अन्तर करता है। विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों के आधार पर सुन्दरता का प्रत्यय भी बदलता है। आदर्शवाद सुन्दरता को अभौतिक मानता है तो प्रकृति यथार्थवाद, भौतिकवाद का सन्दर्भ प्रस्तुत करते हैं। दर्शन की उड़ान चाहे जो भी हो, सभी ने सौन्दर्य को अपने–अपने तरीके से देखा और प्रस्तुत किया है। सौन्दर्यशास्त्र के विषय में जॉन कीट्स का कहना है कि "A thing of beauty is joy forever"

6.8.6 सौन्दर्यशास्त्र और शिक्षा

जैसे तर्कशास्त्र तर्क का और नीतिशास्त्र शुभ का विज्ञान है, वैसे ही सौन्दर्य शास्त्र सौन्दर्य का विज्ञान है। शिक्षा सत्यं शिवं एवं सुन्दरं तीनों का साक्षात्कार है। अस्तु उसमें न केवल तर्कशास्त्र बल्कि नीति और सौन्दर्यशास्त्र भी आवश्यक है। शिक्षा का लक्ष्य शिक्षार्थी का सर्वांग विकास करना है। इस विकास में नैतिक और सौन्दर्यात्मक दोनों ही प्रकार के विकास आवश्यक हैं। जबकि नैतिक विकास में नीतिशास्त्र का ज्ञान सहायक है, सौन्दर्यशास्त्र का ज्ञान सौन्दर्यात्मक विकास में सहायक है। सौन्दर्यशास्त्र ही समस्त साहित्यिक और कलात्मक समालोचना का आधार है। वह साहित्य और कला को दार्शनिक आधार प्रदान करता है क्योंकि साहित्य और कला शिक्षा में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं इसलिये सौन्दर्यशास्त्र का महत्त्व भी अत्यधिक है।

शैक्षिक दृष्टि से सौन्दर्यशास्त्र का क्षेत्र समुद्र के समान व्यापक है जिसमें बालक के जीवन को दिव्य से दिव्यतर बनाने की दिशा निश्चित होती है तथा सत्यं शिवं और सुन्दरं का ज्ञान प्राप्त होता है। स्पष्ट है कि शिक्षा की सफल कामना को ध्यान में रखते हुये जब हम मूल्यों की ओर दृष्टिपात करते हैं तब शिक्षा दर्शन में मूल्यों का रूप भी डगमगाता सा परिलक्षित होता है क्योंकि आधुनिक जनतन्त्रीय समाज उद्योग, विज्ञान और आधुनिक संस्कृति के एक जटिल जाल में गुथा हुआ है और इस पर्यावरण के अनुकूल मूल्यों के रूप की उचित व्याख्या के अभाव में शिक्षा दर्शन असामंजस्यपूर्ण है। अब देश में एक ऐसे शिक्षा दर्शन को स्थापित करने की आवश्यकता है जो नवीन प्रभावों के साथ–साथ पुरानी मान्यताओं, संस्थाओं, रीति–रिवाज, परम्पराओं और आस्थाओं के युगानुकूल औचित्य को भी उचित स्थान दे। क्योंकि हमें वर्तमान और अतीत का मिलन बिन्दु निश्चित करना होगा। आज की परिस्थिति में हम सम्पूर्ण अतीत से समझौता नहीं कर सकते किन्तु प्राचीन आदर्शों के युगानुकूल औचित्य को भी उचित स्थान प्रदान कर सकते है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

8. तर्कशास्त्र की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

9. नीतिशास्त्र की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

10. सौन्दर्यशास्त्र की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

6.9 शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा एक विकास की प्रक्रिया है जिसका सैद्धान्तिक पक्ष दर्शन माना जाता है। शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है इसकी प्रक्रिया में नियोजन तथा व्यवस्था की आवश्यकता होती है। नियोजन के अन्तर्गत उद्देश्यों का प्रतिपादन किया जाता है और उन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु व्यवस्था की जाती है। विद्वानों का मत यह है कि शिक्षा उद्देश्य केन्द्रित होती है मूल्य–केन्द्रित नहीं, परन्तु उद्देश्यों की प्राप्ति के साथ–साथ मूल्यों का भी विकास होता है। अन्य विद्वानों का मत है कि कुछ मूल्यों को उद्देश्यों के रूप में ही प्रतिपादित किया जाता है और उनको विकसित करने का प्रयास भी किया जाता है। लेकिन यह सत्य है कि उद्देश्यों की प्राप्ति की प्रक्रिया में मूल्यों का भी विकास होता है क्योंकि उद्देश्यों का निर्धारण मूल्यों की दृष्टि से किया जाता है। यहाँ पर कुछ शिक्षा के उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है, जो मूल्यों को प्रधानता देते हैं–

1. सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विकास करना।
2. संस्कार तथा आचरण का विकास। (शिक्षा हमें संस्कार देती है)
3. आत्मानुभूति का विकास करना।
4. अच्छे गुणों का ज्ञान देना।
5. जीवन की वास्तविकताओं को स्वीकार करना और उनके साथ समायोजन तथा समन्वय करना।
6. चारित्रिक विकास करना।
7. मनुष्य को मनुष्य बनाना।
8. समाज की बुराईयों को दूर कर वास्तविकता को खोजना।

उपरोक्त उद्देश्यों का जीवन के मूल्यों से सीधा सम्बन्ध है। उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति से जीवन के उच्च मूल्यों के प्रति आकांक्षा का विकास होता है और मानवतावादी गुणों का भी विकास होता है, जिनका हम जीवन में आचरण करते हैं और उनसे जीवन को आनन्दमय बनाते हैं।

6.10 शिक्षा का पाठ्यक्रम

शिक्षा की प्रक्रिया का आधार पाठ्यक्रम होता है। विद्यालय के अन्तर्गत इसी पाठ्यक्रम को पूरा करने का प्रयास किया जाता है कि सत्र के अन्तर्गत जो पाठ्यक्रम निर्धारित हैं उनकी परीक्षा छात्रों को देनी है इसलिए छात्रों को सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का बोध होना चाहिए, क्योंकि हमारी शिक्षा परीक्षा केन्द्रित है। विद्यालयों में मूल्यों की शिक्षा को महत्त्व कम दिया जाता है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि पाठ्यक्रम का स्वरूप, इस प्रकार का निर्मित किया जाए जिससे उसमें नैतिक, सौन्दर्यानुभूति, सामाजिक तथा धार्मिक मूल्यों का विकास हो सके। इस दृष्टि से भाषाओं, महापुरुषों की जीवनियाँ, कला विषय तथा सामाजिक विषयों को सम्मिलित किया जाए और उनका पाठ्यक्रम मूल्यपरक बनाया जाए। शिक्षा में पाठ्यक्रम मूल्यपरक होने से मनुष्य को संसार का

वास्तविक ज्ञान होता है और उसे अपने जीवन की अन्तिम लक्ष्यों का भी बोध होता है उसमें समुचित आदतों का विकास होता है। समाज में सुख और शान्ति का वातावरण बनता है। व्यक्ति में मानवता की भावना का विकास होता है। आज विश्व की समस्या अथवा देश की समस्या मूल्यों की शिक्षा के अभाव के कारण ही है। इस सम्बन्ध में विद्वानों ने दो सुझाव दिये हैंकृ प्रथम, पाठ्यक्रम में मूल्यों को अध्ययन के विषय के रूप में सम्मिलित किया जाए तथा दूसरा, अन्य विषयों के पाठ्यक्रम को भी मूल्यपरक बनाया जाए। शिक्षा द्वारा मूल्यपरक आचरण का विकास अवश्य किया जाए।

विषयों के शिक्षण से मूल्यों का विकास– आज उस विवेक की विशेष आवश्यकता है जो मनुष्य में ऐसी क्षमता का विकास कर सके, जो वैज्ञानिक उपलब्धियों का समुचित उपयोग कर सके। विश्व में आज स्वस्थ जीवन दर्शन की जितनी आवश्यकता है। उतनी इससे पूर्व कभी नहीं रही क्योंकि एक स्वस्थ जीवन दर्शन और जीवन के मूल्य ही विज्ञान के योगदान को मनुष्य के लिए वरदान बना सकते हैं अन्यथा इसके अभिशाप बनने की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं।

पाठ्य सहगामी क्रियाएँ– विद्यालयों में छात्रों को परीक्षा के लिए तैयार करने पर अधिक बल दिया जाता है और कक्षा शिक्षण का भी यही लक्ष्य होता है। मूल्यों की शिक्षा के लिए आवश्यक है कि कक्षा में केवल सुनने से मूल्यों का विकास नहीं किया जा सकता। इसलिए विद्यालय के अन्तर्गत पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाना चाहिए और पाठ्य सहगामी क्रियाओं से सम्बन्धी कार्यक्रम मूल्यपरक होना चाहिए। पाठ्य सहगामी क्रियाओं के प्रमुख कार्यक्रम– खेल–कूद, संगीत, नाटक, चित्रकारी स्काउटिंग, गर्ल्स गाईडिंग, रेडक्रॉस, एन०सी०सी० तथा एन०एस०एस०, विभिन्न विषयों सम्बन्धी क्लबों का आयोजन, राष्ट्रीय प का आयोजन तथा ऐसम्बिल आदि हैं। इनके आयोजन में मूल्यों के विकास को विशेष महत्त्व दिया जाना चाहिए।

6.11 शिक्षण विधियाँ और प्रविधिया

मूल्यों के विकास में परिवार, धार्मिक संस्थाएँ तथा शिक्षा संस्थाओं का विशेष योगदान है। वास्तव में मूल्यों का विकास घर–परिवार में अपने बड़ों के व्यवहारों के अनुकरण से अधिक होता है, क्योंकि वे उनके लिए आदर्श होते हैं। धार्मिक संस्थाओं के कार्यक्रमों द्वारा भी मूल्यों का विकास किया जाता है। शिक्षा संस्थाओं का मुख्य लक्ष्य विषयों का बोध करना होता है, जो केवल ज्ञानात्मक पक्ष तक ही सीमित रहता है। उस ज्ञान के आचरण पर बल नहीं दिया जाता। शिक्षण विधियाँ पाठ्यवस्तु केन्द्रित होती हैं। इसलिए विद्यालयों में मूल्यों के विकास के लिए पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाता है, जिसमें निम्नलिखित विधियों का उपयोग करते हैं–

(1) **अनुकरण विधि**– इस विधि में शिक्षक की भूमिका एक आदर्श रूप में होनी चाहिए, जिसके अनुकरण से मूल्यों का विकास हो।

(2) **नाटकीय विधि**– ऐसे ऐतिहासिक प्रकरणों पर विद्यालय में नाटकों का आयोजन किया जाए, जिससे नैतिक और सामाजिक मूल्यों का विकास हो।

(3) **कहानी विधि**– बच्चों को कहानियों में अधिक रुचि होती है, इसलिए मूल्यों के विकास के लिए महापुरुषों की कहानी सुनायी जाए जो शिक्षाप्रद् हो, जैसे–महात्मा गाँधी ने अपने प्रारम्भिक जीवन में हरिश्चन्द्र को पढ़ा और जीवन में सत्य–अंहिसा के मूल्यों का जीवनपर्यन्त आचरण किया।

(4) **शैक्षिक यात्राएँ**– इस तरह के कार्यक्रमों से छात्रों को वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है और मूल्यों का वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है।

(5) **भूमिका निर्वाह विधि (Role-play)**– इस विधि के द्वारा छात्रों को विभिन्न भूमिकाओं के निर्वहन का अवसर दिया जाता है। एक आदर्श भूमिका निर्वहन से भी मूल्यों का विकास होता है।

(6) **क्रिया–केन्द्रित प्रशिक्षण विधि**– इस प्रकार की विधि से भी मूल्यों का विकास होता है। जैसेकृदृ एन०सी०सी० के शिविरों में अभ्यार्थियों को जो कार्य सौंपे जाते हैं उनके कार्यों को वह बड़ी निष्ठा एवं लग्न के साथ करते हैं, जिससे नेतृत्व का विकास होता है।

6.12 अध्यापक की भूमिका

मूल्यों के विकास में अनुकरण विधि और भूमिका निवर्हन विधि अधिक प्रभावशाली है, क्योंकि मूल्य आचरण का विषय अधिक है तथा ज्ञान का कम है। मूल्यों के विकास में भाव प्रधानता अधिक होती है, अर्थात् मूल्यों का सम्बन्ध भावनाओं तथा संवेदनाओं से अधिक होता है।

वास्तव में यह कहना सत्य है कि कहने से करना अधिक प्रभावशाली है। घर–परिवार में माता–पिता क्या कहते हैं और क्या कहते हैं उनका कर्ता पक्ष बालकों को अधिक प्रभावित करता है। इसी प्रकार एक शिक्षक कक्षा में जो उपदेश देता है उसकी अपेक्षा वह जो आचरण करता है उसका बालकों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मूल्यों के विकास शिक्षा में अध्यापक की एक अहम् भूमिका है और एक शिक्षक का यह परम कर्तव्य है कि वह उच्च आदर्शों का आचरण करे।

6.13 छात्र की भूमिका

मूल्यों के विकास के लिए शिक्षा के विभिन्न पक्षों का वर्णन किया गया। इन सभी का एक ही लक्ष्य है कि छात्रों में मूल्यों विकास किया जाए अर्थात् यदि हम उपरोक्त शिक्षा के घटकों का आकलन करना चाहें तो उसका मानदण्ड छात्रों में मूल्यों का विकास ही होगा।

मूल्यों के विकास में छात्र की भूमिका भी अहम् होती है, क्योंकि शिक्षक जो उपदेश देता है या जो शिक्षा देता है उसको छात्र किस तरह से समझता है। जैसे– युधिष्ठिर को क्रोध न करने का पाठ कई दिनों तक याद नहीं हो सका जबकि अन्य सभी भाईयों ने दूसरे दिन ही पाठ याद कर लिया। युधिष्ठिर ने उसे अपने आचरण में लाने का प्रयास किया उसमें उनको समय लगा। इसलिए छात्र का जो सोचने का ढंग एवं स्तर है उसकी अहम् भूमिका है। इसके लिए आवश्यक है कि विद्यालय का वातावरण ऐसा बनाया जाए तथा शिक्षा द्वारा कक्षा का वातावरण ऐसा उत्पन्न किया जाए जिससे छात्रों में सकारात्मक चिंतन का विकास हो। इसके लिए छात्र को निम्नलिखित कुछ बातों का अनुसरण करना चाहिए –

1. छात्रों को अपने शिक्षक पर पूर्ण आस्था और विश्वास होना चाहिए कि वह हमारे परम हितैषी हैं और जो सदैव हमारे मले के लिए कहते हैं।

2. छात्रों को शिक्षक की आज्ञाओं एवं आदर्शों का अनुपालन पूर्ण आस्था के साथ करना चाहिए।

3. छात्रों को शिक्षक के अच्छे गुणों के अनुकरण का प्रयास करना चाहिए।

4. शिक्षक के कथनों को तथा उनके स्पष्टीकरण को बड़े ध्यान से समझने का प्रयास करना चाहिए यदि समझ में न आ सके तो उसके स्पष्टीकरण के लिए आग्रह करना चाहिए।

5. छात्रों को विद्यालय की सहगामी क्रियाओं में रुचि लेना चाहिए और उनमें सक्रिय रूप में भाग लेना चाहिए।

6. छात्रों को विभिन्न विषयों के अध्ययनों में जो बातें अच्छी लगें उन्हें अपने आचरण में लाने का प्रयास करना चाहिए।

7. छात्र को शिक्षक के समीप तथा सम्पर्क बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए जिससे पारस्परिक अन्तरू प्रक्रिया से मूल्यों का सृजन हो सके।

6.14 विद्यालय प्रबन्धन

विद्यालय के अधिकांश क्रिया–कलाप प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मूल्यों की शिक्षा देने का कार्य करते रहते हैं। हम विद्यालय में नैतिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, यहाँ तक कि अन्तर्राष्ट्रीय मूल्यों की संज्ञा देते हैं। जनतांत्रिक एवं मानवीय मूल्यों में आस्था उत्कृष्ट कला की संस्तुति करने की शिक्षा देते हैं। विषयों के संज्ञानात्मक शिक्षण में भी शिक्षक के व्यक्तित्व तथा व्यवहार, सहपाठियों के व्यवहार एवं विद्यालय के क्रिया–कलापों का प्रभाव छात्र के मूल्यों पर पड़ता है, किन्तु यह सभी प्रभाव वांछनीय हों, यह आवश्यक नहीं। इसी कारण वांछनीय मानवीय मूल्यों के विकास के लिए मूल्य परक शिक्षा की आवश्यकता की समस्या है। मूल्यों की शिक्षा, जनतन्त्र में विद्यालय के सबसे महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों में से है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

11. मूल्यों के विकास के लिए शिक्षण विधियाँ बताइए।

.....

.....

12. मूल्य मीमांसा के उद्देश्य बताइए।

.....

.....

6.15 सारांश

मूल्य–मीमांसा से तात्पर्य किसी वस्तु में निहित गुणों की मीमांसा है जो कि उसको किसी अन्य वस्तु से भिन्न बनाती है। 'मूल्य' वह गुण–समुच्चय है; जो कि वस्तु या व्यक्ति विशेष में निहित होंगे तथा वस्तु या व्यक्ति उस विशिष्ट गुण से परिभाषित की जाएगी। यथा अग्नि का मूल्य है उष्णता। जल का गुण धर्म है शीतलता। अग्नि और जल की प्रकृति का संज्ञान इनके संबंधित गुणधर्मों या मूल्यों से भिन्न किसी अन्य आधार पर कराया जा सकता है। पश्चिमी दर्शन के परिवार में मूल्यमीमांसा अन्य शाखओं की अपेक्षा एक शिशु है। यद्यपि इसकी जड़े प्लेटो, अरस्तु, सेंट टामस, एक्विस और स्पिनोजा में विद्यमान हैं। नीतिशास्त्र या नैतिक शुभ का सिद्धांत दर्शन के अत्यधिक प्राचीन क्षेत्रों में से एक है और सौंदर्यशास्त्र ने दार्शनिकों का बहुत समय से ध्यान आकृष्ट किया है। लेकिन आधुनिक समय में अनेक व्यक्तियों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इन क्षेत्रों तथा हमारे जीवन के अन्य मूल्य संबंधी क्षेत्रों में व्याप्त एक सामान्य क्षेत्र है। यह माना जाता है कि इन विभिन्न मूल्य संबंधी क्षेत्रों को समझने में यह सामान्य क्षेत्र चाबी का काम करेगी। इसे मूल्य मीमांसा या एक्सियॉलॉजी का नाम दिया गया। एक्सियॉ का अर्थ है –'समान मूल्य का'। मूल्य के अनेक सिद्धांत हैं और मूल्य के अनेक प्रकार भी है। दार्शनिकों ने अब तक जिन मूल्यों की ओर प्रत्यक्षतः अधिक ध्यान दिया है, वे हैं– नैतिक, सौंदर्यपरक, धार्मिक और सामाजिक मूल्य। कुछ अन्य मूल्य हैं– आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक, उपयोगिता संबंधी, मनोरंजनात्मक और स्वास्थ्य संबंधी मूल्य। वर्त्तमान भारतीय समाज, या यूँ कहें कि विश्व–समाज की इच्छा और अपेक्षा मनुष्य की रचनात्मक अभिवृत्ति एवं शांत–सहयोगात्मक प्रवृत्ति एवं दृष्टिकोण का विकास करना है। 'मूल्य' की संकल्पना समाज एवं मनुष्य के बीच सामंजस्य एवं समरसता की भावना का विकास करती है। अतः इसकी अनिवार्यता एवं महत्ता व्यापक है।

6.16 अभ्यास के प्रश्न

1. मूल्य मीमांस के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसकी विशेषताओं को लिखो।
2. मूल्यों के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. मूल्य मीमांसा पर आधारित शिक्षा की अवधारणा को समझाइए।
4. तर्क शास्त्र का विस्तृत वर्णन कीजिए।
5. मूल्यों के क्षेत्र का वर्णन कीजिए।

6.17 चर्चा के बिन्दु

1. मूल्य मीमांसा की विशेषताओं एवं उसके क्षेत्र पर विस्तृत चर्चा कीजिए।

6.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. शाब्दिक अर्थ में मूल्य व्यक्ति के गुणों को महत्त्व देता है जिससे व्यक्ति का महत्त्व बढ़ता है और समाज में आदर सम्मान होता है। यह गुण अथवा विशेषता आन्तरिक अथवा बाह्य हो सकती है।
2. (1) नैतिक मूल्य या आचार संहिता मूल्य (2) सौन्दर्यानुभूति मूल्य (3) सामाजिक मूल्य तथा (4) धार्मिक मूल्य
3. मूल्यों को समाज द्वारा स्वीकृति दी जाती है। मूल्यों में नैतिक नियमों का पालन किया जाता है। मूल्यों का सम्बन्ध धर्म एवं संस्कृति से होता है।
4. मूल्य जीवन के मानक रूपी मानदण्ड है। मूल्यों की प्रकृति व्यावहारिक (आचरण) होती है। मूल्यों में नैतिक नियमों का पालन किया जाता है। मूल्य व्यक्ति की इच्छाओं एवं अभिवृत्तियों पर निर्भर होते हैं।
5. यथार्थवाद
6. तर्क शास्त्र (Logic) नीतिशास्त्र (Ethics) सौन्दर्यशास्त्र (Aesthetics)
7. आर्थिक मूल्य, स्वास्थ्य सम्बन्धी मूल्य, सामाजिक मूल्य, नैतिक मूल्य, सौन्दर्यानुभूति मूल्य एवं बौद्धिक मूल्य
8. 'लाजिक' शब्द यूनानी शब्द 'लोगस' से लिया गया है जिसका अर्थ तर्क अथवा शब्दों या वाद–विवाद में तर्क की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार शाब्दिक अर्थों में तर्कशास्त्र तर्क का विज्ञान है।
9. शाब्दिक अर्थ में एथिक्स (Ethics) शब्द इथोस (Ethos) नामक शब्द से निकला है जिसका अर्थ चरित्र होता है। इस प्रकार एथिक्स चरित्र, आदतों, मानव प्राणियों के व्यवहार का विज्ञान है।
10. सौन्दर्यशास्त्र वह शास्त्र है जिसमें कलात्मक कृतियों, रचनाओं आदि से अभिव्यक्त होने वाला अथवा उनमें निहित रहने वाले सौंदर्य का तात्विक और मार्मिक विवेचन होता है।
11. मूल्यों के विकास के लिए निम्नलिखित शिक्षण विधियाँ है जैसे –अनुकरण विधि, नाटकीय विधि, कहानी विधि, शैक्षिक यात्राएं, भूमिका निर्वाह विधि तथा क्रिया केंद्रित प्रशिक्षण विधि आदि।

12- सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विकास करना, संस्कार तथा आचरण का विकास, जीवन की वास्तविकताओं को स्वीकार करना और उनके साथ समायोजन तथा समन्वय करना एवं चारित्रिक विकास करना।

6.19 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. गुटेक, जी. एल. (2009), न्यू पर्सपेक्टिव्स ऑन फिलॉसिफीज ऑफ एजूकेशन, न्यू जर्सी पियर्सन कोलम्बिया, ओहियो अपर मंडल रिवर इंक।

2. इग्नू (2016), कंटेम्परेरी इंडिया एंड एजूकेशन (बीईएसएस–122. बी.एड.), ब्लॉक–3 फिलोसिफिक्ल पर्सपेक्टिव्स ऑफ एजूकेशन, नई दिल्लीरू इग्नू।

3. केनिलर, जी. एफ. (1967), फाउण्डेशन्स ऑफ एजूकेशन द्वितीय संस्करण, कैलिफोर्नियारू कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी, लॉस एंजिल्स।

4. मोहंती, जगन्नाथ (1994), इंडियन एजूकेशन इन दि इमर्जिंग सोसाइटी, नई दिल्लीः स्टलिंग पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड।

5. सक्सेना, एन. आर. एस. (2009), प्रिन्सिपल्स ऑफ एजूकेशन आर, लाल बुक डिपो मेरठ।

6. शर्मा, के. आर. (2002), फिलोसिफी ऑफ एजूकेशन, तृतीय संस्करण दिल्ली, अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूशन।

7. सूरी. ए. एवं सोढ़ी टी. एस. (1988) : फिलोसिफिक्ल एंड सोशिओलोजिकल फाउंडेशन ऑफ एजूकेशन।

8. जैक्सन पी. हर्शबेल (1988), प्लूटार्कस पोर्ट्रेट ऑफ सुकरात इलिनोइस क्लासिक्ल स्टडीज, वाल्यूम–13, नंबर 2 प्लूटार्क (फॉल 1988), यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनोइस प्रेस द्वारा प्रकाशित।

खण्ड– 03 : ज्ञान का निर्माण

खण्ड परिचय

खण्ड 03 ज्ञान का निर्माण से संबंधित है। इस खंड को तीन इकाइयों के अंतर्गत विभाजित किया गया है जो इस प्रकार है–

इकाई 7 : ज्ञान का प्रतिमान परिवर्तन

इकाई 8 : ज्ञान एवं शिक्षण शास्त्र– रचनावाद, वैकल्पिक और मिश्रित

इकाई 9 : ज्ञान को निर्माण प्रक्रिया

उपर्युक्त तीनों इकाइयों का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार किया गया है–

इकाई 7 जो कि ज्ञान का प्रतिमान परिवर्तन से संबंधित है। इसके अंतर्गत ज्ञान के अर्थ और स्वरूप, ज्ञान के प्रकार तथा ज्ञान के स्रोत के विषय में बताया गया है। इसके साथ ही साथ ज्ञान के प्राप्ति की अनेक वीधियों जिसके अंतर्गत निरीक्षण एवं व्यक्तिगत, अनुभव विश्लेषणात्मक, दर्शन, आगमन एवं निगमन विधि इत्यादि का वर्णन किया गया है। इस इकाई में ज्ञान, सूचना एवं समझ में अंतर को भी दर्शाया गया है।

इकाई 8 ज्ञान एवं शिक्षण विधि– संरचनावाद, वैकल्पिक एवं मिश्रित उपागम से संबंधित है। जिसके अंतर्गत संरचनावादी उपागम एवं संरचनावाद द्वारा ज्ञान के निर्माण की विशेषताओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। संरचनावाद में शिक्षक की भूमिका तथा वैकल्पिक विधि द्वारा ज्ञान प्राप्ति एवं मिश्रित उपागम द्वारा ज्ञान प्राप्ति के विषय में विस्तार से समझाया गया है। इसके साथ ही इस इकाई के अंत में मिश्रित अधिगम वातावरण में शिक्षक की भूमिका को भी व्याख्यायित किया गया है। इस इकाई में संरचनावाद को आरेख के माध्यम से स्पष्ट तरीके से समझाया गया है।

इकाई 9 जो की ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया से संबंधित है। इस इकाई में ज्ञान के निर्माण का सम्प्रत्यय एवं अर्थ तथा विशेषताओं को बताते हुए ज्ञान रचना की प्रक्रिया के विषय में समझाया गया है। ज्ञान के निर्माण के लिए शिक्षक एवं अधिगम तथा ज्ञान निर्माण में सहभागिता को भी स्पष्ट तरीके से समझाया गया है। उपरोक्त इकाइयों के अध्ययन के उपरांत शिक्षार्थी ज्ञान निर्माण के प्रतिमान एवं उसके निर्माण प्रक्रिया के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त करना लाभान्वित हो सकेंगे।

इकाई– 7 : ज्ञान का प्रतिमान परिवर्तन

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 इकाई के उद्देश्य

7.3 ज्ञान का अर्थ एवं स्वरूप

7.4 ज्ञान के प्रकार

7.5 ज्ञान के स्रोत

7.6 ज्ञान प्राप्ति की विधियाँ

7.7 ज्ञान, सूचना एवं समझ में अंतर

7.8 सारांश

7.9 अभ्यास के प्रश्न

7.10 चर्चा के बिन्दु

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

ज्ञान मिमांसा दर्शन की वह शाखा है जो ज्ञान के सिद्धान्तों, स्त्रोतों एवं वैधता से सम्बन्धित होता है। ज्ञान को प्रतिप्राप्ति (Proposition) के रूप में व्यक्त किया जाता है। मानवीय ज्ञान तथा इसका भण्डार अनन्त होता है। यह गतिशील (Dynamic) होता है तथा इसमें निरन्तर समय के साथ परिवर्धन होता रहता है। मानवीय ज्ञान की तीन अवस्थाएँ होती है– 1. ज्ञान का संचयन (Presenvation of Knowledge) 2. ज्ञान का हस्तान्तरण (Transfer of Knowledge) तथा 3. ज्ञान का सृजन (Creation of Knowledge) ज्ञान का संचयन विभिन्न माध्यमों जैसे– स्मरण, लेखन, मुद्रण, कम्प्यूटर भण्डारण (Computer Storage) आदि के द्वारा होता है। ज्ञान को विभिन्न तरीकों से भावी पीढ़ी को पहुंचाना ज्ञान का हस्तान्तरण कहलाता है। ज्ञान का निर्माण करना तथा ज्ञान के भण्डारण को समृद्ध करना ज्ञान का सृजन कहलाता है।

7.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जाएगें कि–

1. ज्ञान के अर्थ एवं स्वरूप को समझ सकेंगे।
2. ज्ञान के विभिन्न प्रकारों को बता सकेंगे।
3. ज्ञान के विभिन्न स्रोतों की चर्चा कर सकेंगे।
4. ज्ञान प्राप्ति की विभिन्न विधियों के सम्बन्ध में विवेचना कर सकेंगे।
5. ज्ञान, सूचना एवं समझ में अन्तर को स्पष्ट कर सकेंगे।

7.3 ज्ञान का अर्थ एवं स्वरूप

ज्ञान को दर्शन की विभिन्न विचारधाराओं में अलग–अलग ढ़ग से परिभाषित किया गया है। प्रत्येक ज्ञान का एक ज्ञाता एवं एक ज्ञेय होता है। जब ज्ञाता का ज्ञेय के साथ सम्पर्क होता है, तो ज्ञेय को पदार्थ के सम्बन्ध

में एक चेतना प्राप्त होती है, जिसे ज्ञान कहा जाता है। ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त अनुभव एवं प्रत्यक्षीकरण को ज्ञान की संज्ञा दी जा सकती है।

किसी तथ्य या स्थिति विशेष के विषय में जानकारी प्राप्त होना ज्ञान है। अनुभव या सादृश्यीकरण के द्वारा किसी तथ्य या स्थिति को जानना ज्ञान है। यह किसी विज्ञान, कला या तकनीकी की समझ है। उदाहरण के लिए बच्चे द्वारा अक्षरों को सीखना, किसी स्थान विशेष को खोजने की योग्यता, किसी घटना के विस्तार को याद रखना आदि।

अतः जो हम सीखते है, समझते है तथा जागरूक होते है, वही ज्ञान है। आदर्शवादी चेतना को ज्ञान की संज्ञा देते है जो ज्ञानेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों से परे अनुभूतियों से सम्बन्धित है। प्रयोजनवाद एवं प्रकृतिवाद में ज्ञानेन्द्रियों के प्रत्यक्षीकरण को ही ज्ञान का ज्ञान कहा गया है।

भारतीय दर्शन के अनुसार ज्ञान को समझने से पहले उसकी सत्यता, वस्तुनिष्ठता, सार्थकता आदि को परखना अनिवार्य है।

ज्ञान को परिवर्तनीय तथा अपरिवर्तनीय दोनों कहा जा सकता है। ज्ञान के अन्तर्गत विभिन्न तथ्य, विचार, प्रत्यय, नियम आदि होते है। ज्ञान के कुछ तत्त्वों में कभी परिवर्तन नहीं होता है या बहुत धीमी गति से परिवर्तन होता है। वहीं ज्ञान के कुछ तत्व समय के साथ परिवर्तित हो जाते है। वैज्ञानिक अनुसंधानों से भी ज्ञान में परिवर्तन होता है। उदाहरण के लिए पूर्व में सौरमण्डल का नौवां ग्रह 'यम' को माना जाता था परन्तु अब इसे ग्रह नही माना जाता है। सत्य की खोज से जो नए नियम और सिद्धान्त विकसित होते हैं, वे ज्ञान के स्वयं में परिवर्तन लाते है।

ज्ञान शब्द किसी विषय के सैद्धान्तिक या व्यवहारिक समझ को दर्शाता है। प्लेटो ने भी न्याससंगत सत्य विश्वास को ही ज्ञान माना है। प्रायः यह माना जाता है कि ज्ञान सत्य विश्वास से कहीं अधिक मूल्यवान है, क्योंकि ज्ञान सत्यापित होता है।

ज्ञान मीमांसा दर्शन की वह शाखा है, जो मानव ज्ञान के स्वरूप एवं न्याय संगतता को विश्लेषित करती है।

ज्ञान का स्वरूप–

1. ज्ञान का सम्बन्ध तथ्यों, प्रत्ययों, सिद्धान्तों तथा नियमों से है।
2. ज्ञान किसी वस्तु, घटना या स्थिति के सम्बन्ध में जानकारी है।
3. ज्ञान का स्वरूप मानसिक एवं मनोवैज्ञानिक है।
4. ज्ञान के अन्तर्गत जानना, करना तथा अनुभूति करना सम्मिलित है।
5. प्रज्ञा, ज्ञाता तथा ज्ञेय के मध्य का सम्बन्ध हो ज्ञान है।
6. ज्ञान का स्वरूप परिवर्तनीय तथा अपरिवर्तनीय होता है।
7. ज्ञान का स्वरूप मूर्त तथा अमूर्त दोनों हो सकता है। ज्ञान विभिन्न तथ्यों, नियमों, वर्गीकरण, सामान्यीकरण आदि की श्रृखंला है। जिसे निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(i) **वर्गीकरण (Classification)-** संसार की कोई वस्तु सभी तरीके से एक समय नही हो सकती है। इन विभिन्नताओं के आधार पर हम उन्हें वर्गीकृत करते है। कुछ समान विशेषताओं या गुणों के आधार पर उन्हें वर्गीकरण में एक साथ समूह में रखते है। समानता या विभिन्नता के आधार पर होती है, जिसे रूचि या आवश्यकता के अनुरूप पहचाना जाता है। जैसे जन्तुओं को किसी वैज्ञानिक द्वारा भिन्न तरीके से वर्गीकृत किया जाएगा तथा किसी चमड़ा व्यवसायी द्वारा भिन्न तरीके से वर्गीकृत किया जाएगा।

(ii) **सामान्यीकरण (Generalization)-** प्रत्ययों के मध्य सम्बन्धों को प्रदर्शित करना सामान्यीकरण है। एक परिस्थितियों में प्राप्त ज्ञान यदि समान प्रकार की अन्य परिस्थितियों में भी सत्य हो तो यह सामान्यीकरण कहलाता है। यह मनुष्य को निरीक्षण की गई घटना को अधिक विस्तृत, समावेशित व्याख्या करने में सक्षम बनाता है।

(iii) नियम (Laws)- दो या दो से अधिक प्रत्ययों के मध्य सम्बन्धों को दर्शाने वाले दावे होते है। जैसे मेण्डल का नियम, न्यूटन का नियम आदि। ये समय तथा काल के अनुरूप सत्य, सार्वभौमिक एवं मुक्त्यात्मक होते है।

(iv) सिद्धान्त (Theory)- वे प्रतिज्ञाप्ति जो विभिन्न चरों के मध्य सम्बन्धों के द्वारा किसी घटना के विशिष्ट भाग की व्याख्या करते, सिद्धान्त कहलाते है। सिद्धान्त का उपागम सामान्य होता है, तथ्यों के समान विशिष्ट नही होता है। सिद्धान्त सरल एवं प्रभावी तरीके से प्रयोगात्मक एवं निरीक्षण द्वारा प्राप्त परिश्रमों को सम्बन्धित, व्याख्यायित एवं अनुमानित करता है। सिद्धान्तों की रचना की जाती है जबकि नियमों की खोज की जाती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. सामान्यीकरण किसे कहते हैं?

.....

.....

2. ज्ञान की परिभाषा दीजिए।

.....

.....

3. नियम व सिद्धान्त में क्या अंतर है?

.....

.....

4. दर्शन की किस शाखा के अन्तर्गत ज्ञान सम्बन्धी विश्लेषण करते हैं?

.....

.....

7.4 ज्ञान के प्रकार

ज्ञान के विभिन्न प्रकार निम्नवत है–

1. आगमनात्मक ज्ञान
2. प्रयोग मूलक ज्ञान
3. प्राग्नुभव ज्ञान
4. स्पष्ट ज्ञान
5. सामरिक ज्ञान
6. वर्णनात्मक ज्ञान
7. प्रक्रियात्मक ज्ञान
8. अनुभवजन्य ज्ञान
9. कार्य क्षेत्र ज्ञान

1. **आगमनात्मक ज्ञान**– इस प्रकार का ज्ञान अनुभव एवं निरीक्षण द्वारा प्राप्त होता है। इस प्रकार के नाम के प्रवर्तक जॉन लॉक है। प्राकृतिक विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान इसके उदाहरण है।
2. **प्रयोग मूलक ज्ञान**– प्रयोग द्वारा प्राप्त ज्ञान प्रयोगमूलक ज्ञान होता है। प्रयोजनवादियों के अनुसार ज्ञान प्रयोग द्वारा प्राप्त होता है। तार्किक सत्य एवं विज्ञान का ज्ञान इसके उदाहरण है।
3. **प्राग्नुभव ज्ञान**– इस प्रकार के ज्ञान में निरीक्षण या प्रयोग की आवश्यकता नही होती है। इसके प्रवर्तक कान्ट है, जिनके अनुसार सामान्य सत्य अनुभव से परे होते है। अतः यह एक ऐसा ज्ञान है, जो बिना किसी अनुभव के स्वतंत्र रूप से प्राप्त होता है। गणित का ज्ञान इसके अन्तर्गत आता है।
4. **स्पश्ट ज्ञान**– ऐसा ज्ञान जो आसानी से, संचित एवं प्राप्त हो जाता है। इसे आसानी से दूसरों तक पहुंचाया जा सकता है। अधिकांश स्पष्ट ज्ञान किसी माध्यम में वंचित रहता है। इनसाइक्लोपीडिया तथा पुस्तकों मे उपलब्ध ज्ञान इसके उदाहरण है। यह दृश्य श्रव्य हो सकता है।
5. **सामरिक ज्ञान**– ऐसा ज्ञान जिसे कठिनाई से प्रस्तुत या प्राप्त किया जा सकता है। अतः इसे दूसरे तक हस्तान्तरित करने या लिखने में कठिनाई होती है। किसी भाषा को बोलने की योग्यता, किसी संगीत उपकरण को बजाने की योग्यता, कठिन उपकरणों को डिजाइन करना या प्रयोग करना आदि इस प्रकार के ज्ञान के उदाहरण है।
6. **वर्णनात्मक ज्ञान**– विभिन्न तथ्यों का ज्ञान जिसे सिद्धान्तों, प्रत्ययों, नियमों व विचारों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है उसे वर्णनात्मक ज्ञान कहते है। यह किसी विशिष्ट वस्तु से सम्बन्धित होता है तथा उसके अर्थ, भूमिकाओं, वातावरण, संसाधन, क्रियाओं, सम्बन्ध और उत्पाद से सम्बन्धित होता है।
7. **प्रक्रियात्मक ज्ञान**– यह समस्या समाधान प्रक्रिया में प्रयुक्त किए गए ज्ञान से सम्बन्धित होता है। किसी विशिष्ट कार्य या कौशल को किस प्रकार करना है इसका ज्ञान कराता है। यह उपकरणों को चलाने की प्रक्रिया, विधि, प्रक्रिया आदि से सम्बन्धित होता है। प्रशिक्षण में इसकी विशेष भूमिका होती है।
8. **अनुभवजन्य ज्ञान**– दर्शन में अनुभव से प्राप्त ज्ञान न कि विचारों या नियमित तार्किकता से तथा विज्ञान से नही बल्कि प्रयोग एवं निरीक्षण से प्राप्त होता है अनुभवजन्य ज्ञान कहलाता है। **उदाहरण**– प्रत्येक वस्तुएं नीचे की ओर गिरती है।
9. **कार्य क्षेत्र ज्ञान**– किसी विशिष्ट क्षेत्र या अनुशासन से सम्बन्धित ज्ञान को कार्य क्षेत्र ज्ञान कहते है। ज्ञान से युक्त व्यक्ति अपने क्षेत्र में पारंगत होते है तथा उस क्षेत्र के विशेषज्ञ कहलाते है। उदाहरण के लिए– एक साफ्टवेयर इंजीनियर के लिए प्रोग्राम बनाने से सम्बन्धित ज्ञान कार्यक्षेत्र ज्ञान होगा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

5. कौशलों से सम्बन्धित ज्ञान किस प्रकार का ज्ञान है।

.....

.....

6. किसी चिकित्सक का विशेष ऑपरेशन करने की योग्यता किस प्रकार के ज्ञान से सम्बन्धित है।

.....

.....

7. आगमनात्मक ज्ञान के प्रवर्तक कौन है।

.....

.....

8. प्रागनुभाव ज्ञान से आप क्या समझते है।

.....

.....

7.5 ज्ञान के स्रोत

ज्ञान के मुख्यतः छः स्रोत निम्नलिखित है–

1. **ज्ञानेन्द्रिय अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान**– मनुष्य की पाँच ज्ञानेन्द्रिय आँख, नाक, कान, जीभ व त्वचा द्वारा क्रमशः देखकर, सूँघकर, सुनकर, स्वाद लेकर एवं स्पर्श करके विभिन्न वस्तुओं के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार ज्ञान प्राप्ति का एक प्रमुख साधन ज्ञानेन्द्रियाँ है, जिनके द्वारा अनुभवों का प्रत्यक्षीकरण होता है। बाह्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्य जगत के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। इनके द्वारा ही मनुष्य संसार की वस्तुओं के सम्पर्क में आता है, जिससे एक प्रकार की संवेदना उत्पन्न होती है तथा वस्तु का ज्ञान प्राप्त होता है। इसे प्रत्यक्षीकरण कहते है। प्रत्यक्षीकरण द्वारा ही हमें वस्तु की जानकारी प्राप्त होती है। प्रत्यक्षीकरण द्वारा चेतन मन में अवधारणाएं उत्पन्न होती है, जिन यह ज्ञान निर्भर करता है।

   इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान की विश्वसनीयता का ऑकलन तो किया जा सकता है, परन्तु उस ज्ञान की वैधता ज्ञात करना कठिन होता है। जैसे रस्सी को देखकर साँप होने का अनुभव होना। इसके साथ–साथ आन्तरिक इन्द्रियाँ जो हमारी आन्तरिक अवस्था जैसे अभिवृत्तियों, भावनाएं, दुःख, आनन्द, विचारों, विश्वास आदि से सम्बन्धित होती है। जैसे– सिरदर्द को महसूस करना, दुःख का अनुभव करना आदि।

2. **तर्क द्वारा प्राप्त ज्ञान**– कुछ ज्ञान तार्किक चिन्तन द्वारा प्राप्त होते है। जैसे– "तीन और दो पाँच होते है।" इसका ज्ञान तर्क द्वारा प्राप्त होता है। तार्किक चिन्तन एक मानसिक योग्यता है तथा हमारा अधिकांश ज्ञान तर्क पर आधारित होता है।

3. **सत्ता अधिकारिक ज्ञान**– यह ज्ञान का प्राथमिक स्त्रोत नही है। जहाँ एक व्यक्ति अपने स्वयं के तार्किकता या ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त करते है। हम कुछ चीजों को सत्ता के आधार पर सत्य मानते है। उच्च शिक्षित एवं महान व्यक्तियों द्वारा दिए गए ज्ञान को सत्ता अधिकारिक ज्ञान कहते है। सत्ता को महत्व दिया जाना चाहिए, परन्तु सत्ता की ओर से आने वाले ज्ञान के सम्बन्ध में कुछ सावधानियाँ अवश्य रखनी चाहिए। जो निम्नलिखित है–

   (i) वह व्यक्ति जिसके ज्ञान को हम सत्ता अधिकारिक ज्ञान के रूप में ले रहे है, उसे अवश्य ही सत्ता होना चाहिए। उसे अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ होना चाहिए।

   (ii) जब एक व्यक्ति किसी सत्ता के रूप में अन्य व्यक्ति के वकतव्य को स्वीकार करता है तो उसे इसकी योग्यता होनी चाहिए कि उसे स्वयं की खोज कर सके या उसे सिद्ध कर सके। जैसे हम मेण्डल के नियमों को स्वयं भी सिद्ध कर सकते है।

   (iii) उस सत्ता को दिए गए ज्ञान को सिद्ध करने की योग्यता होनी चाहिए तथा उसे गणितीय औंर वैज्ञानिक भाषा में व्याख्या कर सके। दूसरे शब्दों में खत्म ज्ञान को प्रायोगिक रूप से सिद्ध करने एवं तार्किक रूपसे व्याख्या करने योग्य होना चाहिए।

   (iv) सत्ता अधिकारिक ज्ञान को समुदाय के उन व्यक्तियों द्वारा स्वीकृत होना चाहिए जो उस क्षेत्र में विशेषज्ञ है।

   (v) ज्ञान को सत्ता द्वारा वैध सिद्ध करना चाहिए।

   इस प्रकार का ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान से कमजोर होता है। इस प्रकार के ज्ञान के लिए विभिन्न क्षेत्रों जैसे विज्ञान, दर्शन, कला, धर्म, राजनीति आदि के विशेषताओं के मध्य इन्द हो सकता है।

4. **अन्तः प्रज्ञा**– यह एक प्रकार का अनुभव आन्तरिक बोध है जो एक प्रकाशपुंज के समान अचानक ही आता है। इसमें ज्ञान की स्पष्टता होती है। अन्तः से हमारा तात्पर्य किसी तथ्य को मन में जानना है। इसके लिए किसी तर्क की आवश्यकता नही पड़ती है। इसके द्वारा अचानक ही ज्ञान का प्रकाश मन में उत्पन्न होता है। इस प्रकार के ज्ञान की निश्चितता एवं वैधता पर संदेह नही होता है तथा हम उस ज्ञान पर पूरा विश्वास कर लेते है। इस प्रकार के ज्ञान में भी हमें कुछ सावधानियाँ रखनी चाहिए–

(i) अन्तःप्रज्ञा कभी–कभी इन्द्र उत्पन्न करती है। जैसे दो व्यक्ति को अगले दिन के मौसम के बारे में भिन्न–भिन्न अतःप्रज्ञा होती है, तो हम दोनों में से किसकी अन्तः प्रज्ञा को सही मानेंगे। अन्तःप्रज्ञा स्वयं यह निर्णय यह निर्णय नही लेती है कि दोनों इन्दवाले अन्तःप्रज्ञा में से कौन सा सही है।

(ii) अन्तःप्रज्ञा द्वारा प्राप्त ज्ञान इस बात की व्याख्या नही कर पाता कि यह कैसे ज्ञात हुआ। यह वैधता ज्ञात करने की विधि के बारे में भी कुछ नही करता है।

5. **साक्ष्य**– दूसरे के अनुभव एवं निरीक्षक पर आधारित ज्ञान को मान्यता देना साक्ष्य कहलाता है। इसमें व्यक्ति स्वयं निरीक्षण नही करता बल्कि दूसरों के निरीक्षण पर आधारित ज्ञान को ही प्राप्त करता है। अतः साक्ष्य दूसरों के अनुभव व निरीक्षण पर आधारित ज्ञान है।

6. **विश्वास**– विश्वास किसी वस्तु के बारे में सोच है जो बिना किसी प्रमाण के होता है। यह प्रमाण रहित होता है तथा एक अभिवृत्ति या दृष्टिकोण होता है। किसी वस्तु के बारे में कोई दृष्टिकोण या विचार होना तथा उसका सत्य होना दो भिन्न–भिन्न बातें है। अतः यह ज्ञान का वैध स्त्रोत नहीं हो सकता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

9. साक्ष्य किसे कहते है।

.....

.....

10. सत्ता तथा साक्ष्य में क्या अंतर है?

.....

.....

11. अन्तःप्रज्ञा द्वारा प्राप्त ज्ञान में क्या सावधानी रखनी चाहिए?

.....

.....

12. प्रत्यक्षीकरण किसे कहते है। अवधारणाओं से इसका क्या संबंध है?

.....

.....

7.6 ज्ञान प्राप्ति की विधियाँ

ज्ञान प्राप्ति की निम्न प्रमुख विधियाँ है–

I. निरीक्षण एवं व्यक्तिगत अनुभव
II. विश्लेषणात्मक दर्शन
III. आगमन एवं निगमन विधि
IV. ज्ञान की अधिकारिता विधि
V. वैज्ञानिक जाँच
VI. समस्या–समाधान विधि
VII. ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञान की प्राप्ति
VIII. एकाग्रता एवं ध्यान

I. **निरीक्षण एवं व्यक्तिगत अनुभव**– कुछ जानने या ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी व्यक्ति या वस्तु का सावधानी पूर्वक निरीक्षण ज्ञान प्राप्त करने की एक प्रमुख विधि है। अवलोकन के लिए ज्ञानेन्द्रियों की आवश्यकता होती है। हमारी आँख, नाक, कान, जीभ तथा त्वचा द्वारा हम अनुभव प्राप्त करते है। इस प्रकार से प्राप्त ज्ञान को अनुभवात्मक ज्ञान कहते है। इसकी वस्तुनिष्ठता विश्वसनीयता तथा वैधता का निर्धारण करना प्रायः कठिन होता है। अतः ज्ञान की प्राप्ति की विधियों में व्यक्तिगत अनुभव को पूर्णतः मान्य नही समझा जाता है। यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना कठिन होता है।

II. **विश्लेशणात्मक दर्शन**– यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति में विश्लेषणात्मक दर्शन की प्रमुख भूमिका होती है। इसमें तार्किक विश्लेषण विधि का प्रयोग होता है। इसकी प्रकृति वैज्ञानिक होती है। इसमें विभिन्न शैक्षिक अवधारणाओं के बारे में अनुमानों, स्पष्टीकरण, परीक्षण आदि करने के उपरान्त तार्किकता के आधार पर उसे सिद्ध करते है।

III. **आगमन एवं निगमन विधि**– आगमन विधि एक सिद्धान्त के अर्न्तगत आने वाले निश्चित नियम तथा तथ्य तक पहुंचने में समर्थ बनाने के लिए विशेष उदाहरणों की पर्याप्त मात्रा में प्रस्तुतीकरण है। इसमें विशिष्ट से सामान्य की ओर बढ़ते है अर्थात् पहले किसी नियम या सिद्धान्त से सम्बन्धित उदाहरणों को देखते है फिर उससे सम्बन्धित नियम या सिद्धान्त तक पहुंचते है। इस विधि के जन्मदाता फ्रांसिस बेकन है। जैसे आर्किमिडीज के सिद्धान्त तक पहुंचना।

इसके विपरीत निगमन विधि में सामान्य से विशिष्ट की ओर बढ़ते है। पहले नियम या सिद्धान्त बता दिए जाते है फिर उससे सम्बन्धित उदाहरणों को बताया जाता है। इस विधि के जन्मदाता सुकरात है। जैसे गुरूत्वाकर्षण के नियम बताकर फिर उससे सम्बन्धित दैनिक जीवन के उदाहरण बताना।

IV. **ज्ञान की अधिकारिक विधि**– किसी क्षेत्र विशेष में विशेषज्ञ महान व्यक्तियों को सत्ता की संज्ञा दी जाती है। उनके द्वारा निरीक्षण व चिन्तन मनन द्वारा प्राप्त ज्ञान को अधिकारिक ज्ञान कहते है। इस प्रकार के ज्ञान में समय के साथ परिवर्तन हो सकते है। इस प्रकार के ज्ञान को अपनाने में कुछ सावधानियों आवश्य रखनी चाहिए। विशिष्ट क्षेत्र में विशेषज्ञ व्यक्ति को ही सत्ता के रूप में स्वीकार करना चाहिए। ज्ञान को सत्ता द्वारा वैध सिद्ध किया जाना चाहिए। सत्ता द्वारा उस ज्ञान की गणितीय या वैज्ञानिक भाषा में व्याख्या की जा सके।

V. **वैज्ञानिक जाँच**– विज्ञान वह व्यवस्थित ज्ञान है जो विचार, अवलोकन, अध्ययन और प्रयोग से मिलती है। यह किसी अध्ययन की प्रकृति पर आधारित होता है। यह भिन्न–भिन्न तरीकों से सम्बन्धित होता है, जिसमें वैज्ञानिक प्राकृतिक संसार का अध्ययन करते है तथा साक्षों के आधार पर व्याख्या करते है। इसके निम्न सात चरण है–

(i) अवलोकन करना।

(ii) प्रश्न पूछना।

(iii) परिकल्पना बनाना या परीक्षण, योग्य, व्याख्या करना।

(iv) परिकल्पना के आधार पर अनुमान निकालना।

(v) अनुमान का परीक्षण करना।

(vi) निष्कर्ष निकालना अथवा ।

(vii) परिकल्पना का परिशोधन करना या पुनः परीक्षण करना।

VI. **समस्या–समाधान विधि**– चिन्तन, मनन, तर्क शक्ति, निरीक्षण शक्ति आदि का प्रयोग करके समस्या का समाधान प्राप्त करना, समस्या समाधान विधि है। इसके निम्न चार चरण है–

(i) समस्या को परिभाषित करना।

(ii) वैकल्पिक समाधान उत्पन्न करना।

(iii) मूल्यांकन करना एवं विकल्प खोजना।

(iv) क्रियान्वयन एवं समाधान का फॉलोअप करना।

VII. **ज्ञानन्द्रियों द्वारा ज्ञान की प्राप्ति**– इन्द्रियों को ज्ञान–प्राप्ति का प्रमुख स्त्रोत माना जाता है। हमारी इन्द्रियों के किसी बाहरी वस्तु के सम्पर्क में आने पर संवेदना होती है। इसी संवेदना के आधार पर ज्ञान का प्रत्यय हमारे मस्तिष्क में बनता है। जिस ज्ञान को प्राप्त करने में अधिक से अधिक ज्ञानेन्द्रिय का प्रयोग होता है। वह ज्ञान उतना ही अधिक स्थायी एवं पूर्ण होता है।

VIII. **एकाग्रता एवं ध्यान**– किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अन्य बातों पर ध्यान न देते हुए एक ही चीज पर ध्यान और प्रयास केन्द्रित कर एकाग्रता कहलाता है। आत्मनियंत्रण एवं ध्यान के अभ्यास द्वारा एकाग्रता प्राप्त करने का उपाय है। ज्ञान प्राप्त करने में एकाग्रता एवं ध्यान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

13. विश्लेषणात्मक दर्शन की प्रकृति कैसी होती है?

.....

.....

14. आगमन एवं निगमन विधि में प्रमुख अंतर क्या है?

.....

.....

15. समस्या समाधान विधि का प्रथम चरण क्या है?

.....

.....

16. वैज्ञानिक जाँच में परिकल्पना क्यों बनाई जाती है?

.....

.....

7.7 ज्ञान, सूचना तथा समझ में अंतर

किसी वस्तु के सम्बन्ध में जानकारी होना सूचना कहलाती है। सूचना सत्य या असत्य हो सकती है। इस सूचना का मस्तिष्क में व्यवस्थित एवं स्थायी हो जाना ज्ञान है। ज्ञान के सम्बन्ध में सत्यता, सत्यता में विश्वास एवं सत्यता के लिए पर्याप्त प्रमाण आवश्यक है। ज्ञान के स्वरूप में मानसिक एवं मनौवैज्ञानिक क्रियाएँ नीहित है। इसमें जानना, करना एवं अनुभूति करना सम्मिलित है। ज्ञान के संदर्भ में सत्य की वस्तुनिष्ठता, ज्ञान की सार्थकता, ज्ञान की सत्ययता आदि आवश्यक है। ज्ञान सूचना का अधिक विकसित एवं व्यवस्थित रूप है।

किसी अमूर्त या भौतिक वस्तु जैसे व्यक्ति, परिस्थिति या सूचना से सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया समझ है। जिसमें व्यक्ति उस वस्तु के बारे में प्रत्यय से प्रतिमान का प्रयोग करने में सक्षम होता है। समझ ज्ञाता तथा वस्तु को मध्य का सम्बन्ध है।

अतः शिक्षा या ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त हुई सूचना को ज्ञान कहा जाता है, जबकि समझ किसी वस्तु/घटना का अर्थ या कारण जानना है। ज्ञान समझ से अधिक विकसित है। ज्ञान तथा समझ दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

17. सूचना किसे कहते है?

.....

.....

18. ज्ञान तथा सूचना में क्या अंतर है?

.....

.....

19. ज्ञान एवं समझ में क्या अंतर है?

.....

.....

7.8 सारांश

किसी तथ्य या स्थिति विशेष के बारे में जानकारी होना ज्ञान है। हम जो सीखते है समझते और जागरूक होते है वही ज्ञान है। ज्ञान को समझने से पहले उसकी सत्यता, वस्तुनिष्ठता एवं सार्थकता को परखना आवश्यक होता है। ज्ञान के मुख्यतः छः स्त्रोत है– ज्ञानेन्द्रिय अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान, तर्क द्वारा प्राप्त ज्ञान, सत्ता अधिकारिक ज्ञान, अन्तःप्रज्ञा, साक्ष्य तथा विश्वास ज्ञान के 9 प्रकार है– आगमनात्मक ज्ञान, प्रयोग मूलक ज्ञान, प्रागनुभव ज्ञान, स्पष्ट ज्ञान, सामरिक ज्ञान, वर्णनात्मक ज्ञान प्राप्ति की मुख्यतः निम्न विधियाँ है– निरीक्षण एवं व्यक्तिगत अनुभव, विश्लेषणात्मक दर्शन आगमन एवं निगमन विधि, ज्ञान की आधारकारिता विधि, वैज्ञानिक जाँच, समाधान विधि, ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ज्ञान की प्राप्ति, एकाग्रता एवं ध्यान आदि किसी वस्तु के सम्बन्ध में जानकारी होना सूचना है। इस सूचना का मस्तिष्क में व्यवस्थित एवं स्थायी हो जाना ज्ञान है। किसी वस्तु या घटना का अर्थ या कारण जानना समझ है। ज्ञान समझ एवं सूचना के अधिक विकसित है।

7.9 अभ्यास के प्रश्न

1. ज्ञान के अर्थ एवं स्वरूप की विवेचना दीजिए।
2. ज्ञान, सूचना और समझ में क्या अन्तर है।
3. ज्ञान के अधिकारिक स्त्रोत में क्या सावधानियाँ रखनी चाहिए।
4. ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान की विवेचना कीजिए।
5. वैज्ञानिक जाँच के विभिन्न चरण बताइए।
6. ज्ञान प्राप्ति हेतु समस्या समाधान विधि का वर्णन कीजिए।

7. ज्ञान प्राप्ति की एक विधि के रूप में निरीक्षण एवं व्यक्तिगत अनुभव का वर्णन कीजिए।

7.10 चर्चा के बिन्दु

1. ज्ञान की संरचना एवं इसके स्रोतों की एक कक्षा के लिए उपयोगिता के बारे में चर्चा कीजिए।
2. शिक्षण की योजना बनाने में ज्ञान की संरचना एवं इसके विभिन्न रूपों के संदर्भ में क्रियान्वयन के बारे में चर्चा कीजिए।

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. एक परिस्थिति में प्राप्त ज्ञान यदि समान प्रकार की अन्य परिस्थितियों में भी सत्य हो तो उसे सामान्वीकरण कहते है।
2. जो हम सीखते है, समझते है और जागरूक होते है वही ज्ञान है।
3. सिद्धान्तों की रचना की जाती है, जबकि नियमों की खोज की जाती है।
4. ज्ञान मीमांसा के अर्न्तगत सम्बन्धी विश्लेषण किया जाता है।
5. प्रक्रिया से सम्बन्धित ज्ञान प्रक्रियात्मक ज्ञान में आता है।
6. कार्यक्षेत्र ज्ञान के अन्तर्गत आता है।
7. जॉन लॉक
8. बिना किसी अनुभव के स्वतंत्र रूप से प्राप्त ज्ञान प्रागनुभव ज्ञान कहलाता है।
9. दूसरों के अनुभव एवं निरीक्षण पर आधारित ज्ञान साक्ष्य कहलाता है।
10. सत्ता किसी क्षेत्र विशेष में पारंगत व्यक्ति या विशेषज्ञ को कहते है, जबकि दूसरों के अनुभव व निरीक्षण पर आधारित ज्ञान साक्ष्य है।
11. वैधता की जाँच कर लेनी चाहिए।
12. किसी संवेदना द्वारा वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना प्रत्यक्षीकरण कहलाता है। इसके द्वारा चेतन मन में अवधारणाएँ उत्पन्न होती है, जिससे पर ज्ञान निर्भर करता है।
13. वैज्ञानिक
14. आगमन विधि में विशिष्ट से सामान्य की ओर चलते है, जबकि निगमन विधि में सामान्य से विशिष्ट की ओर चलते है।
15. समस्या को परिभाषित करना।
16. अनुमान लगाने के लिए या वैकल्पिक उत्तर प्राप्त करने हेतु।
17. किसी वस्तु के सम्बन्ध में जानकारी होना सूचना कहलाता है।
18. वस्तु के सम्बन्ध में जानकारी होना सूचना कहलाता है तथा सूचना का मस्तिष्क में स्थायी हो जाना ज्ञान कहलाता है।
19. शिक्षा या ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त हुई सूचना को ज्ञान कहते है, जबकि किसी वस्तु का अर्थ या घटना का कारण जानना है।

7.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. मदान, (2017), ज्ञान एवं पाठ्यक्रम, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. Chaudhary, B. (2018), "Knowledge' in knowledge, Langague and Curriculum.
3. ज्ञान का अर्थ एवं उसके प्रमुख प्रकार, www.shikshavi.char.com retrieweb on 12.12.2022 5:00PM
4. https//www.merriam-webstar.com.

इकाई– 8 : ज्ञान एवं शिक्षणशास्त्र– संरचनावाद, वैकल्पिक एवं मिश्रित

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 इकाई के उद्देश्य

8.3 संरचनावादी उपागम

8.4 संरचनावाद द्वारा ज्ञान निर्माण की विशेषताएँ

8.5 संरचनावाद में शिक्षक की भूमिका

8.6 वैकल्पिक विधि/उपागम द्वारा ज्ञान–प्राप्ति

8.7 मिश्रित उपागम द्वारा ज्ञान–प्राप्ति

8.8 मिश्रित अधिगम वातावरण में शिक्षक की भूमिका

8.9 सारांश

8.10 अभ्यास के प्रश्न

8.11 चर्चा के बिन्दु

8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

ज्ञान–प्राप्ति में शिक्षण विधियों का अत्यधिक योगदान है। शिक्षण–शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर शिक्षक अधिगम के लिए योजनाएँ एवं संगठनात्मक व्यवस्था करते है। इसमें शिक्षण–ब्यूह रचनाओं एवं युक्तियों से सम्बन्धित ज्ञान एवं कौशल सम्मिलित है। विषयवस्तु के ज्ञान में प्रत्यय से सम्बन्धित जानकारियों होती है जबकि शिक्षण शास्त्रीय ज्ञान में छात्रों में ऐसे कौशल उत्पन्न किए जाते है, जिससे वे विषयवस्तु में महारत हासिल कर सके। शिक्षण–शास्त्रीय ज्ञान शिक्षण विधियों की कला एवं विज्ञान है। यह शिक्षक की प्रत्यय उपागम की प्रस्तुति, अवबोध एवं विषयवस्तु की अनुकूलित तार्किकता से सम्बन्धित क्षमता उत्पन्न करती है। पाँच प्रमुख शिक्षण शास्त्रीय उपागम संरचनात्मक उपागम, सहयोगात्मक उपागम, एकीकृत उपागम, चिंतन उपागम तथा खोज आधारित अधिगम है।

8.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जाएगे कि–

1. संरचनावादी ज्ञान–निर्माण की विशेषताएं बता सकेंगे।
2. संरचनावादी शिक्षक की विशेषताएँ की चर्चा कर सकेंगे।
3. वैकल्पिक विधि द्वारा ज्ञान प्राप्ति के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. वैकल्पिक उपागम के उद्देश्यों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

5. मिश्रित उपागम द्वारा ज्ञान प्राप्ति एवं शिक्षक की भूमिका के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

8.3 संरचनावादी उपागम

संरचनावाद वह सिद्धान्त है जो यह मानता है कि अधिगमकर्ता केवल निष्क्रिय रूप से सूचनाएँ लेने के स्थान पर अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करते है, वे अपने पूर्व–विद्यमान ज्ञान में अनुभव प्राप्त करके नवीन ज्ञान को निर्मित करते है। संरचनावाद छात्र को सूचना के निष्क्रिय प्राप्तकर्ता से सीखने की प्रक्रिया में एक सक्रिया भागीदार में बदल देता है। शिक्षक द्वारा निर्देशित छात्र शिक्षक या पाठ्यपुस्तक से केवल यांत्रिक एवं निष्क्रिय रूप में ज्ञान प्राप्त कर पाते है, परन्तु संरचनावाद मे सक्रिय रूप से वे अपने ज्ञान का निर्माण कर पाते है।

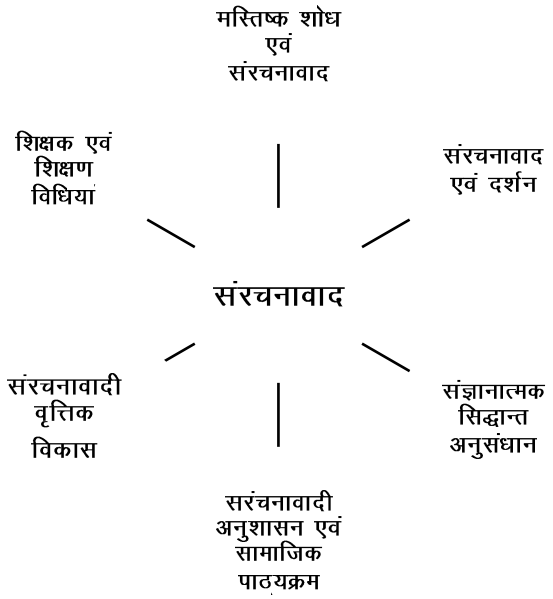

उपरोक्त चित्र से स्पष्ट है कि संरचनावाद का सम्बन्ध दर्शन से भी है। संरचनात्मक सिद्धान्तों से अनुसंधान में भी सहायता मिलती है, क्योंकि ज्ञान के निर्माण से समस्या की पहचान करने एवं समस्या समाधान की योग्यता विकसित होती है। संरचनावाद में शिक्षक की भूमिका में परिवर्तित होता है तथा शिक्षण विधियाँ भी भिन्न प्रकार की होती है। संरचनावादी उपागम अधिगमकर्ता के वृत्तिक विकास में सहायक होता है। संरचनावाद सामाजिक पाठ्यक्रम के साथ सम्बन्धित है, जिसमें छात्रों को एक दूसरे के साथ अन्तःक्रिया करने एवं समानुभूति करने की क्षमता विकसित करता है। छात्र एक दूसरे के साथ सम्बन्धों के महत्व को समझते है। जब छात्र सामाजिक पाठ्यक्रम को सीखते है तो सामाजिक रूप से अधिक जागरूक बनते है तथा उनमें भावात्मक बुद्धिमत्ता विकसित होती है। संरचनावाद ज्ञान के प्रव्ययीकरण एवं अधिग्रहण करने का एक विशेष तरीका है। स्वीडन के विद्वान फर्दिनान्द द सस्यूर इसके प्रवर्तन माने जाते है।

संरचनावाद की अवधारणाएँ–

1. अनुभव को अर्थपूर्ण बनाने का एक तरीका ज्ञान ग्रहण करना है।
2. ज्ञान सदैव एक व्याख्या है तथा अनिश्चितिता के लिए हमेशा खुला रहता है।
3. सभी व्याख्याएं पूर्व ज्ञान पर आधारित होती है।
4. यह छात्र केन्द्रित उपागम है।

संरचनावादी उपागम में अधिगमकर्त्ता ज्ञान का एक निष्क्रिय निर्माणकर्ता प्राप्तकर्ता नही है बल्कि ज्ञान के एक सक्रिय निर्माणकर्त्ता के रूप में होता है। सभी ज्ञान निर्मित होते है तथा सभी अधिगम इस निर्माण की

प्रक्रिया होती है। व्यक्ति समुदाय के एक अंग के रूप में ज्ञान का निर्माण करता है, लेकिन प्रत्येक का अपना अदृश्य संसार होता है।

संरचनावादी उपागम के प्रमुख सिद्धान्त–

1. शिक्षक द्वारा छात्र के दृष्टिकोण को महत्व।
2. कक्षा–कक्ष गतिविधियों को प्रधानता।
3. छात्र की अवधारणाओं को चुनौती।
4. शिक्षक द्वारा प्रासंगिक समस्याएं उठाना।
5. अधिगम एक सामाजिक प्रक्रिया।
6. अभिप्रेरणा अधिगम की कुंजी।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. संरचनात्मक उपागम किस बात पर बल देता है।

.....

.....

2. संरचनावाद के प्रवर्तक कौन है।

.....

.....

8.4 संरचनावाद द्वारा ज्ञान निर्माण की विशेशताएं

1. सभी ज्ञान का निर्माण अमूर्त चिन्तन की प्रक्रिया द्वारा होता है।
2. अधिगमकर्ता की संज्ञानात्मक संरचना अधिगम प्रक्रिया को सुविधाजन्य बनाती है।
3. अधिगमकर्ता की संज्ञानात्मक संरचना में निरन्तर विकास होता रहता है।
4. संरचनावाद का एक विशेष प्रत्यय उभार है, इसमें अधिगमकर्ता को पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित करके नवीन ज्ञान के निर्माण के लिए शिक्षक निर्देशित करता है।
5. संरचनात्मक अधिगम वातावरा सहयोगत्मक अधिगम तथा अधिगमकर्ताओं के मध्य सामाजिक बातचीत/अन्तःक्रिया पर बल देता है।
6. यह विश्वसनीय कार्यों को अर्थपूर्ण संदर्भ में करने पर बल देते है।
7. यह ज्ञान–प्राप्ति का छात्र–केन्द्रित उपागम है। इसमें छात्र को रूचियों, अधिगम कौशलों एवं आवश्यकताओं पर बल दिया जाता है।
8. संरचनात्मक उपागम द्वारा छात्र यह जानने का अवसर प्राप्त करते है कि विषय विशेष किस प्रकार उनके लिए तथा समजा के लिए लाभप्रद/प्रासंगिक है।
9. विषय वस्तु को गइराई से समझना संरचनात्मक उपागम के मुख्य उद्देश्य है। इसमें ज्ञान के व्यवहारिक जीवन में अनुपयोग भी सम्मिलित है।

10. संरचनात्मक उपागम का मुख्य उद्देश्य चिन्तनशील अधिगमकर्ता का विकास करना है, जो अपने विचारों की दृढ़ता एवं सीमाओं के बारे में जागरूक हो।
11. यह जान के विकास एवं व्याख्या के विकास पर बल देता है।
12. संरचनात्मक कक्षा–कक्ष एक छोटा विषमांगी समूह होता है। शिक्षक एवं छात्र के मध्य साझा उत्तरदायित्व।
13. अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है।
14. अधिगम एक सामाजिक प्रक्रिया है तथा यह संदर्भित होता है।
15. अधिगम मस्तिष्क में संचित होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

3. संरचनात्मक उपागम के कक्षा–कक्ष की क्या विशेषता होती है?

.....

.....

4. संरचनात्मक उपागम का मुख्य उद्देश्य क्या है।

.....

.....

8.5 संरचनावाद में शिक्षक की भूमिका

जैसा कि हम सब जानते है कि वर्तमान समय में शिक्षक की भूमिका केवल ज्ञान या सूचना प्रदान करना नही रह गया है। अब शिक्षक की भूमिका पहले से अधिक चुनौतीपूर्ण हो गया है। अब उसकी भूमिका एक सुविधादाता, निर्देशक, मित्र एवं दार्शनिक की भाँति हो गया है। संरचनात्मक उपागम में शिक्षक की भूमिका छात्र द्वारा निर्मित/संरचित ज्ञान के सुविधादाता के रूप में हो गई है। संरचनात्मक उपागम द्वारा ज्ञान–निर्माण में शिक्षक की भूमिका निम्न प्रकार से है–

1. छात्र के ज्ञान के स्तर के आधार पर शिक्षक ज्ञान–निर्माण में सुविधादाता के रूप में कार्य करता है।
2. शिक्षक अधिगमकर्ता को अनुभव प्राप्त करने में व्यस्त करता है, जिससे उनके अंदर निहित वर्तमान ज्ञान को चुनौती प्राप्त हो सके।
3. वह छात्रों की प्रतिक्रियाओं/उत्तरों के द्वारा ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने का अवसर देता है तथा छात्रों के प्रारम्भिक उत्तरों/प्रतिक्रियाओं में परिवर्धन करता है।
4. शिक्षक अपने विचारों को प्रकट करने से पूर्व छात्रों के विचारों के स्वीकृत करता है।
5. वह छात्रों के मध्य उनके प्रत्ययीकरण एवं विचारों के मध्य चुनौती देने हेतु प्रेरित करता है।
6. छात्रों से विचारयुक्त मुक्तात्मक प्रश्नों को पूछ कर छात्रों को प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित करता है।
7. शिक्षक छात्रों को आपस में विचारयुक्त विमर्श के लिए प्रेरित करता है।
8. वह ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में छात्र नेतृत्व, सहयोगपूर्ण व्यवहार तथा क्रियाशीलता को प्रोत्साहित करता है।

9. वह छात्रों के स्वायत्तता एवं पहल को स्वीकृत एवं प्रोत्साहित करता है।
10. उसे कक्षा–कक्ष के बाहर भी अधिगम एवं ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया को विस्तारित करना चाहिए।
11. वह छात्रों को आधुनिक तकनीकी की सहायता से ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
12. उसे छात्रों को प्राथमिक स्त्रोतों के माध्यम से प्रोजेक्ट को तैयार करने के अवसर प्रदान करने चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

5. संरचनात्मक उपागम द्वारा ज्ञान–प्राप्ति में शिक्षक छात्रों को किसलिए प्रेरित करता है?

.....

.....

6. वर्तमान समय में शिक्षक की क्या भूमिका है?

.....

.....

8.6 वैकल्पिक विधि/उपागम द्वारा ज्ञान–प्राप्ति

वैकल्पिक उपागम में मुख्यधारा की शिक्षण–विधियों से अलग कई शिक्षण–विधियाँ सम्मिलित होती है। इस प्रकार का वैकल्पिक अधिगम वातावरण विद्यालयों में भी हो सकता है एवं गृह–आधारित अधिगम वातावरण भी हो सकता है। वैकल्पिक उपागम में कक्षा–कक्ष का आकार छोटा हो सकता है तथा शिक्षक व छात्र के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध हो सकता है। यह एक समुदाय के समक्ष होता है। वैकल्पिक शिक्षण–उपागम में विभिन्न संरचना सम्मिलित हो सकती है। जैसे मुक्त कक्षा–कक्ष, भिन्न शिक्षक–छात्र सम्बन्ध, भिन्न पाठ्यक्रम एवं भिन्न शिक्षण विधियाँ आदि यह गैर–पारम्परिक तथा अप्रमाणिक भी हो सकता है। वैकल्पिक शिक्षाविद् इसे विश्वसनीय समग्र तथा प्रगतिशील समझते है।

वैकल्पिक शिक्षा के उद्देश्य

1. **छात्रों में अन्वेशण की क्षमता का विकास**–विषयवस्तु एवं प्रत्यय को सही ढंग से समझने के कारण छात्रों में अन्वेषण की क्षमता का विकास होता है।
2. **प्रत्यय को समझना**–विभिन्न प्रकार की शिक्षण विधियों के प्रयोग से प्रत्यय को सही ढंग से समझना इस उपागम का मुख्य उद्देश्य है।
3. **बच्चों में प्रश्न पूछने की क्षमता का विकास**– अधिगमकर्ता को प्रश्न–पूछने हेतु प्रेरित करना इस उपागम का उद्देश्य है, शिक्षक द्वारा छात्र के दृष्टिकोण एवं विचारों को महत्व दिया जाता है।
4. **बच्चों में विरोधाभास की क्षमता का विकास**– छात्रों द्वारा दिए गए उत्तरों में विरोधाभास उत्पन्न करके उन्हें गहन चिन्तन हेतु प्रेरित करना इसका उद्देश्य है।
5. **बच्चे की भावात्मक बुद्धिमत्ता का विकास**– छात्र में भावनाओं को ग्रहण करने की योग्यता, उपयोग करने, समझने, प्रबन्ध करने तथा नियन्त्रित करने की योग्यता का विकास करना जिससे वे सामाजिक रूप से भी सफल हो सके।

6. **बच्चे की मानसिक क्षमताओं का विकास**– अधिगमकर्त्ता की मनन, चिन्तन, स्मृति आदि की योग्यताओं को बढ़ाना इस उपागम का उदेद्श्य है।

7. **बच्चों की रचनात्मक का विकास**– बच्चों की सृजनात्मक क्षमता का विकास करना जिससे वे नई चीजों को निर्मित करने एवं उत्पादित करने की क्षमता व कौशलों की प्राप्ति कर सके।

वैकल्पिक उपागम द्वारा ज्ञान–प्राप्ति की विशेषताएँ

1. यह रचनात्मक एवं अनुभवात्मक शिक्षा पर आधारित है।
2. इसमें छात्रों द्वारा विषम–वस्तु को रटने पर बल नही दिया जाता है।
3. इसमें भाषा–कौशल का विकास करके सीखने पर अधिक जोर दिया जाता है।
4. इसमें अनुभव द्वारा सीखने पर अधिक बल दिया जाता है।
5. बालक के सर्वागींण विकास पर अधिक बल दिया जाता है।
6. बालक की रचनात्मकता के विकास पर अधिक बल दिया जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

7. वैकल्पिक शिक्षा उपागम में कौन सी संरचनाएँ सम्मिलित है?

.....

.....

8. वैकल्पिक शिक्षा का क्या उद्देश्य है?

.....

.....

9. वैकल्पिक शिक्षा उपागम की कोई दो विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

8.7 मिश्रित उपागम द्वारा ज्ञान – प्राप्ति

आज का युग सूचना तकनीकी का युग है। छात्र नई तकनीकी उपकरणों जैसे स्मार्ट फोन, आई–पैड, आई–फोन, कम्प्यूटर, इंटरनेट आदि का प्रयोग ज्ञान प्राप्ति के लिए कर रहे है। समय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए यह अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार की तकनीकी सर्वत्र उपलब्ध है तथा इसका विकास काफी तेजी से हो रहा है। ई–अधिगम तथा मोबाइल अधिगम शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण क्रांति लाई है। सूचना एवं सम्प्रेषण तकनीकी ने सूचना प्राप्ति को अत्यन्त आसान बना दिया है। यह छात्रों के समय की बचत करता है। छात्रों व शिक्षकों के अहम सम्प्रेषण में भी आसानी होती है। आईसीटी के प्रयोग से सूचनाओं की खोज करने, पढ़ने तथा अन्य छात्रों के साथ सूचनाओं का साइना करने में सुविधा होती है।

मिश्रित उपागम ऑनलाइन तथा ऑफलाइन अधिगम का मिश्रित रूप होता है तथा दोनों एक दूसरे के पूरक होते है। इसे प्रायः हाईब्रिड अधिगम के रूप में समझा जाता है। तथा ऑनलाइन शैक्षिक वातावरण में यह

विभिन्न रूप में प्रयुक्त होता है। यह शिक्षा प्राप्ति का एक उपागम है। मिश्रित उपागम एक ऐसी व्यवस्था है, जो ऑनलाइन अधिगम सामग्रियों एवं अवसरों को परम्परागत कक्षा–कक्ष आधारित शिक्षण विधि से जोड़ता है। इसमें शिक्षक व छात्र दोनों की भौतिक रूप से उपस्थिति आवश्यक होती है। छात्र था ज्ञान–प्राप्ति के समय, स्थान, गति, तरीके आदि पर नियन्त्रण होता है। यह उपागम ज्ञान के निर्माण में अत्यन्त सहायक होता है, क्योंकि इसमें ऑनलाइन एवं ऑफलाइन दोनों प्रकार के शिक्षा की विशेषताएँ होती है।

मिश्रित उपागम की विशेषताएँ–

1. **अधिगम एवं ज्ञान**– निर्माण प्रक्रिया में छात्र संलग्नता अधिक होना छात्र विभिन्न सूचनाओं के इंटरनेट के माध्यम से भी प्राप्त करने में संलग्न रहते है। कक्षा–कक्ष में भी वे ज्ञान–प्राप्ति की विभिन्न क्रियाओं में सक्रिय रूप से लोग रहते है।

2. **शिक्षक व छात्र अन्तःक्रिया अधिक**– शिक्षक को सूचनाएँ प्रदान करने की आवश्यकता नही होती है अतः वह व्यक्तिगत रूप से छात्रों से अधिक अन्तःक्रिया करता है।

3. **अधिगम हेतु उत्तरदायित्व**– छात्रों में स्वयं ज्ञान–प्राप्ति के लिए उत्तरदायित्व बोध जागृत होता है, जिससे वे अधिक उत्साह व लगन के साथ सीखते है।

4. **समय–प्रबन्धन एवं लचीलेपन**– छात्र इंटरनेट के प्रयोग से संस्था के बाहर कहीं भी सीख सकते है, जिससे उनके समय की बचत होती है तथा लचीलेपन से लाभ मिलता है।

5. **परिवर्धित छात्र**– अधिगम उत्पाद छात्रों का अद्यतन सूचनाएं प्राप्त होती है जो प्रामाणिक एवं विश्वसनीय होता है।

6. **संस्था के गुणवत्ता में वृद्धि**– मिश्रित उपागम से संस्था के स्तर एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है। छात्रों को उपलब्धियों में वृद्धि होने से संस्था अधिक अच्छी मानी जाती है।

7. **शिक्षण व अधिगम वातावरण में अधिक लचीलापन**– ऑनलाइन अधिगम से छात्र कहीं भी सीख सकते है। आभासी अधिगम वातावरण ज्ञान–प्राप्ति एवं ज्ञान के निर्माण में सहायक होता है।

8. **स्व–अधिगम एवं सतत् अधिगम हेतु अधिक प्रभावी**– छात्र स्वयं ही सूचनाओं को संकलित करके ज्ञान–निर्माण में लगे रहते है एवं सतत् अधिगम प्रक्रिया होती रहती है।

9. **प्रयोगात्मक अधिगम हेतु अधिक अवसर**– इंटरनेट पर छात्र विभिन्न ज्ञान व कौशलों को वीडियों में देखकर सीख सकते है। इससे प्रयोगात्मक अधिगम में आसानी होती है।

मिश्रित अधिगम के लाभ–

(i) छात्रों के अधिगम कौशलों में वृद्धि।

(ii) सूचना के लिए अधिक पहुंच।

(iii) छात्रों में ज्ञान–प्राप्ति द्वारा अधिक संतोष तथा बेहतर अधिगम उत्पाद।

(iv) छूसरों से सीखने तथा सिखाने के अधिक अवसर।

(v) पारस्परिक सहयोग के अधिक अवसर।

(vi) मिश्रित उपागम छात्रों को आपस में अन्तःक्रिया करने तथा शिक्षक से अन्तःक्रियाओं के द्वारा अधिगम के अधिक अर्थपूर्ण स्तर को प्रापत करते है।

(vii) मिश्रित उपागम में अधिगमकर्ता ऑनलाइन समुदाय के साथ जुड़ते हैं, वे सामाजिक एवं अकादमिक रूप से अपने आपको प्रस्तुत करने की क्षमता का विकास करते है। डिजिटल अधिगम कौशल जीवन पर्यन्त अधिगम के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

10. मिश्रित उपागम से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

11. मिश्रित उपागम छात्र केन्द्रित क्यों होता है?

.....

.....

12. मिश्रित उपागम में छात्रों में पारस्परिक अन्तःक्रिया अधिक क्यों होती है?

.....

.....

8.8 मिश्रित अधिगम वातावरण में शिक्षक की भूमिका

मिश्रित उपागम ने शिक्षक की भूमिका ज्ञान/सूचना प्रदानकर्त्ता के स्थान पर एक प्रशिक्षक और मेंटर की भाँति कर दी है। इसका यह अर्थ नही है कि इस उपागम में छात्रों की शिक्षा में शिक्षक की भूमिका निष्क्रिय एवं कम महत्वपूर्ण हो गई है। अब छात्रों के अधिगम में शिक्षक की भूमिका अधिक प्रभावी एवं चुनौतीपूर्ण हो गई है।

परम्परागत शिक्षा मुख्यतः शिक्षक निर्देशित होता है, परन्तु मिश्रित उपागम छात्र–केन्द्रित होता है। इसमें तकनीकी की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। मिश्रित उपागम, ऑनलाइन अनुदेशन एवं शिक्षक–आधारित अनुदेशन का उपयुक्त सन्तुलन है। ऑनलाइन अनुदेशन में अन्तःक्रियात्मक, व्यक्तिनिष्ठ अधिगम गति से ज्ञान–प्राप्ति करते है तथा निरन्तर संलग्न एवं प्रोत्साहित रहते है। शिक्षक आधारित अनुदेशन जो अधिगम अनुभवों को मानवीय तत्वों से जोड़कर प्रोत्साहन एवं निदेशन प्रदान करती है, जो केवल शिक्षक द्वारा प्राप्त हो सकती है।

मिश्रित उपागम शिक्षक व छात्र दोनों को लाभ पहुंचाता है। यह छात्रों सक्रिय अधिगमकर्त्ता बनने के अनुमति एवं अवसर प्रदान करता है तथा वे प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान–प्राप्ति कर सकते है। इससे उनमें आत्म–विश्वास की भावना जागृत होती है। इसमें अधिक छात्र स्वतंत्र रूप से कार्य में लगे होते है। अतः शिक्षक को व्यक्तिनिष्ठ अनुदेशन प्रदान करने एवं उनकी समस्याओं के समाधान के अधिक अवसर एवं समय प्राप्त हो जाता है। इससे शिक्षक व छात्रों के मध्य बेहतर सम्बन्ध विकसित होते है। इससे छात्रों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं एवं कठिनाइयों को समझने और उन्हें दूर करने में सहायता मिलती है।

मिश्रित अधिगम वातावरण में अधिगमकर्ता की भूमिका

1. **छात्र स्वामित्व को बढ़ावा**– अधिगम हेतु अधिगम पर छात्र का अधिक स्वामित्व होता है जो बहुत शक्तिशाली बल प्रदान करता है। यह उत्तरदायित्व का बहुत अनुभव है, जो स्वामित्व के अनुभव को बढ़ाता है।
2. **छात्र को लम्बे समय तक केन्द्रित रखना**– सूचनाओं एवं आंकड़ों को प्राप्त करने हेतु इंटरनेट का प्रयोग करने हेतु संसाधन प्राप्त होते है। इन संसाधनों के साथ अन्तःक्रिया करके अधिगमकर्ता अधिक समय तक केन्द्रित रह सकता है, जो पुस्तकों या मुद्रित संसाधनों के प्रयोग से नहीं हो सकता है। यह खोज एवं शोध को भी बढ़ावा देता है।
3. **छात्र की रूचियों को बढ़ाना**– ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया में तकनीकी का प्रयोग करने से यह अधिक रोचक हो जाती है, जिससे वे अधिक केन्द्रित एवं उत्साहित होकर ज्ञान–प्राप्ति करते है।
4. **छात्र–स्वायत्तता प्रदान करना**– ई अधिगम सामग्री के प्रयोग से छात्र को अधिगम लक्ष्य स्थापित करने में सहायता मिलती है। इससे उनकी स्वायत्तता में वृद्धि होती है।
5. **तत्काल उपचारात्मक सूचना एवं छात्र प्रतिपुश्टि**– शिक्षक द्वारा छात्रों को उनके कार्य का तत्काल विश्लेषक समीक्षा तथा प्रतिपुष्टि देने से अपनी शिक्षक–विधियों को परावर्धित करने का समय एवं योग्यता प्रदान करती है। तत्काल छात्र–प्रतिपुष्टि से छात्रों को नाम–प्राप्ति के लिए प्रेरणा प्राप्त होती है।
6. **स्व–गीत से सीखने की क्षमता प्रदान करना**– अधिगम के लिए अधिक लचीलेपन एवं इंटरनेट संसाधनों तक पहुंच के कारण छात्रों को स्व–गति से सीखने की क्षमता प्राप्त होती है। इससे अधिगम प्रक्रिया को गति प्राप्त होती है तथा यदि आवश्यकता पड़े तो अधिक विकसित संसाधनों को प्रदान किया जा सकता है।

मिश्रित उपागम छात्रों में निम्न योग्यताओं का विकास करती है–

1. अनुसंधान कौशल
2. स्व–अधिगम
3. स्व–संलग्नता
4. स्व–अध्यात्मकक बल विकसित करने में सहायक
5. बेहतर निर्णयन क्षमता
6. अधिक उत्तरदायित्व बोध
7. कम्प्यूटर साक्षरता

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

13. मिश्रित उपागम में शिक्षक की भूमिका किस प्रकार की होती है?

.....

.....

14. मिश्रित उपागम से छात्रों में कौन सी योग्यताओं का विकास होता है?

.....

.....

8.9 सारांश

संरचनावाद वह सिद्धान्त है जो यह मानता है कि अधिगमकर्ता केवल निष्क्रिय रूप से सूचनाएँ लेने के स्थान पर अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करते है, वे अपने पूर्व–विद्यमान ज्ञान में अनुभव प्राप्त करके नवीन ज्ञान को निर्मित करते है। संरचनावादी उपागम में अधिगमकर्त्ता ज्ञान का एक निष्क्रिय निर्माणकर्ता प्राप्तकर्ता नही है बल्कि ज्ञान के एक सक्रिय निर्माणकर्त्ता के रूप में होता है। सभी ज्ञान निर्मित होते है तथा सभी अधिगम इस निर्माण की प्रक्रिया होती है। व्यक्ति समुदाय के एक अंग के रूप में ज्ञान का निर्माण करता है, लेकिन प्रत्येक का अपना अदृश्य संसार होता है। वैकल्पिक उपागम में मुख्यधारा की शिक्षण–विधियों से अलग कई शिक्षण–विधियाँ सम्मिलित होती है। इस प्रकार का वैकल्पिक अधिगम वातावरण विद्यालयों में भी हो सकता है एवं गृह–आधारित अधिगम वातावरण भी हो सकता है। वैकल्पिक उपागम में कक्षा–कक्ष का आकार छोटा हो सकता है तथा शिक्षक व छात्र के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध हो सकता है। यह एक समुदाय के समक्ष होता है। वैकल्पिक शिक्षण–उपागम में विभिन्न संरचना सम्मिलित हो सकती है।मिश्रित उपागम ऑनलाइन तथा ऑफलाइन अधिगम का मिश्रित रूप होता है तथा दोनों एक दूसरे के पूरक होते है। इसे प्रायः हाईब्रिड अधिगम के रूप में समझा जाता है। तथा ऑनलाइन शैक्षिक वातावरण में यह विभिन्न रूप में प्रयुक्त होता है। यह शिक्षा प्राप्ति का एक उपागम है। मिश्रित उपागम एक ऐसी व्यवस्था है, जो ऑनलाइन अधिगम सामग्रियों एवं अवसरों को परम्परागत कक्षा–कक्ष आधारित शिक्षण विधि से जोड़ता है। इसमें शिक्षक व छात्र दोनों की भौतिक रूप से उपस्थिति आवश्यक होती है। छात्र था ज्ञान–प्राप्ति के समय, स्थान, गति, तरीके आदि पर नियन्त्रण होता है। यह उपागम ज्ञान के निर्माण में अत्यन्त सहायक होता है, क्योंकि इसमें ऑनलाइन एवं ऑफलाइन दोनों प्रकार के शिक्षा की विशेषताएँ होती है।

8.10 अभ्यास के प्रश्न

1. संरचनावादी उपागम द्वारा ज्ञान निर्माण की विधि का वर्णन कीजिए।
2. वैकल्पिक शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य क्या है।
3. मिश्रित उपागम द्वारा ज्ञान का निर्माण किस प्रकार होता है।
4. मिश्रित उपागम की प्रमुख विशेषताएं बताइएं।
5. संरचनावाद में शिक्षक की भूमिका का वर्णन कीजिए।
6. मिश्रित उपागम में अधिगमकर्ता की भूमिका का वर्णन कीजिए।

8.11 चर्चा के बिन्दु

1. संरचनावादी उपागम एवं वैकल्पिक उपागम द्वारा ज्ञान–प्राप्ति में शिक्षक की भूमिका पर चर्चा कीजिए।
2. मिश्रित उपागम में अधिगमकर्ता की भूमिका पर चर्चा कीजिए।

8.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. संरचनात्मक उपागम अधिगमकर्त्ता द्वारा स्वयं ज्ञान के निर्माण पर बल देता है।
2. संरचनावाद के प्रवर्तन स्वीडन के विद्वान फर्दिनान्द द सल्यूट माने जाते है।
3. कक्षा–कक्ष छोटी विषमांगी होती है।
4. संरचनात्मक उपागम का मुख्य उद्देश्य चिन्तनशील अधिगमकर्त्ता का विकास करना है।

5. शिक्षक छात्रों को आधुनिक तकनीकी द्वारा ज्ञान–निर्माण करने, छात्र नेतृत्व, सहयोगपूर्ण व्यवहार तथा क्रियाशीलता को प्रोत्साहित करता है।
6. वर्तमान समय में शिक्षक की भूमिका सुविधादाता, मार्गदर्शक, मित्र एवं दार्शनिक के रूप में है।
7. वैकल्पिक उपागम में मुक्त कक्षा–कक्ष, भिन्न शिक्षक–छात्र सम्बन्ध, भित्त पाठ्यक्रम व भिन्न शिक्षण–विधियाँ हो सकती है।
8. वैकल्पिक उपागम का मुख्य उद्देश्य छात्रों में अन्वेषण की क्षमता का विकास करना है।
9. वैकल्पिक शिक्षा अनुभवात्मक एवं रचनात्मक शिक्षा पर आधारित है। इसमें भाषा–कौशल के विकास पर बल दिया जाता है।
10. मिश्रित उपागम ऑनलाइन तथा ऑफलाइन का मिश्रित रूप है।
11. मिश्रित उपागम छात्र–केन्द्रित होता है, क्योंकि इसमें छात्र स्व–गति, स्व–क्षमता, स्व–आवश्यकता के अनुसार कभी भी सीखे सकते है।
12. मिश्रित उपागम में छात्रों के मध्य अधिक अन्तःक्रिया के अवसर प्राप्त होते है, क्योंकि वे ऑनलाइन माध्यम से भी जुडे होते है।
13. मिश्रित उपागम में शिक्षक की भूमिका प्रशिक्षक एवं मेंटर की भांति होती है।
14. मिश्रित उपागम से छात्रों में कम्प्यूटर साक्षरता, स्व–संलग्न अनुसंधान कौशल आदि के गुण विकसित होते है।

8.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. मदान, (2017), ज्ञान एवं पाठ्यक्रम, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. Chaudhary, B. (2018), "Knowledge' in knowledge, Langague and Curriculum.
3. ज्ञान का अर्थ एवं उसके प्रमुख प्रकार, www.shikshavi.char.com retrieweb on 12.12.2022 5:00PM
4. https//www.merriam-webstar.com.

इकाई–9 : ज्ञान की निर्माण प्रक्रिया

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 इकाई के उद्देश्य

9.3 ज्ञान निर्माण का अर्थ

9.4 ज्ञान निर्माण की विशेषताएँ

9.5 ज्ञान रचना की प्रक्रिया

9.6 ज्ञान के निर्माण के लिए शिक्षण

9.7 ज्ञान के निर्माण के रूप में अधिगम

9.8 ज्ञान निर्माण में सहभागिता

9.9 सारांश

9.10 अभ्यास के प्रश्न

9.11 चर्चा के बिन्दु

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

दर्शन की ज्ञान मीमांसा के अंतर्गत ज्ञान सम्बन्धी बातों की विवेचना की है। ज्ञान मीमांसा में तीन प्रमुख प्रश्न सम्मिलित रहते है– 1. ज्ञान के स्त्रोत क्या है, 2. वास्तविक ज्ञान कहाँ से आता है एवं उसका स्वरूप क्या है 3. ज्ञान की सत्यता की कसौटी या ज्ञान की प्रमाणिकता, ज्ञान से आशय वास्तविकता के किसी पक्ष के प्रति जागरूकता तथा समझ से है जो कि सत्य विश्वास पर आधारित हो, यह स्पष्ट व्यवस्थित सूचना या तथ्य है जो कि तार्किक प्रक्रिया के अनुप्रयोग के द्वारा वास्तविकता से प्राप्त किया जाता है। यह साक्ष्य पर आधारित सत्य विश्वास है। ज्ञान के लिए तीन शर्तें होना आवश्यक है– सत्य, विश्वास एवं प्रमाणिकता या तर्कसंगतता ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया में अधिगमकर्ता प्राप्त ज्ञान के निर्माण का द्वारा परिवर्तन करते हुए उसका प्रयोग करता है। ज्ञान के निर्माण का अर्थ सूचनाओं के संगठनात्मक एवं उपयोग करता है। ज्ञान के निर्माण का अर्थ सूचनाओं के संगठनात्मक एवं उपयोगी स्वरूप से है, जिसके माध्यम से छात्रों को सर्वांगीण विकास के लिए अधिगम सामग्री शीघ्र उपलब्ध हो जाती है।

9.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

1. ज्ञान–निर्माण का अर्थ एवं विशेषताएं बता सकेंगे।
2. ज्ञान रचना की प्रक्रिया समझ सकेंगे।
3. ज्ञान–निर्माण के लिए शिक्षण के बारे में चर्चा कर सकेंगे।
4. ज्ञान–निर्माण के रूप में अधिगम की व्याख्या कर सकेंगे।
5. ज्ञान–निर्माण में सहभागिता के महत्त्व के बारे में अपना मत प्रस्तुत कर सकेंगे।

9.3 ज्ञान निर्माण का अर्थ

सीखना, ज्ञान के निर्माण की एक प्रक्रिया है। ज्ञान के द्वारा चरित का निर्माण होता है। ज्ञान को ग्रहण करने एवं ज्ञान का निर्माण करने में अन्तर होता है। ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया में अधिगमकर्ता प्राप्त ज्ञान को अपने अनुभवों द्वारा परिवर्तन करते हुए उसका प्रयोग करता है। ज्ञान के निर्माण में वह विषयवस्तु से सम्बन्धित निम्नलिखित व्यवहार को सम्मिलित कर सकता है–

- प्रत्ययों का अर्थ
- अधिगम परिणामों में अंतर
- विचारों में स्वतंत्रता एवं वस्तुनिष्ठता
- विचारों में लचीलापन
- रूचिपूर्ण अधिगम
- अभिप्रेरणा
- सक्रिय अन्तःक्रियात्मक अधिगम

जॉन डीवी के अनुसार, 'केवल वही ज्ञान ही वास्तविक है, जो हमारी प्रकृति में संगठित हो, जिससे हम पर्यावरण को अपनी आवश्यकता के अनुकूल बनाने में समर्थ हो सके और अपने आदर्शों एवं इच्छाओं को उस स्थिति के अनुकूल बना ले जिसमें हम रहते है।'

एगॉग एवं औचक, के अनुसार, ''ज्ञान का निर्माण सीखने का एक दृष्टिकोण है, जो अधिगमकर्ता को अपने अनुभव का प्रयोग कर सक्रिय रूप से समझ के निर्माण से है न कि पहले से संगठित ज्ञान की समझ से।

भार्मा एवं बरौलिया (2009) के अनुसार, ''ज्ञान के निर्माण का अर्थ सूचनाओं का प्रबन्धन, संगठन एवं पुनःप्रारित की प्रक्रिया से है, जिसमें विज्ञान, तकनीकी, दर्शन एवं सामाजिक व्यवस्थाओं से सम्बन्धित तथ्यों को सरलीकृत रूप में प्रस्तुत किया जाता है।"

इस प्रकार ज्ञान के निर्माण का अर्थ सूचनाओं के संगठनात्मक एवं उपयोगी स्वरूप से है, जिसके माध्यम से छात्रों को सर्वांगींण विकास के लिए अधिगम सामग्री शीघ्र उपलब्ध हो जाती है। छात्र स्वयं ही विभिन्न सूचनाओं एवं अधिगम गतिविधियों को व्यवस्थित करके ज्ञान प्राप्त करते है। ज्ञान का निर्माण सूचनाओं का प्रबन्ध एवं संगठन है। यह ज्ञात होने के बाद मस्तिष्क में संचित रहता है, वास्तविक अनुभव द्वारा प्राप्त होता है और अनुभवों के भण्डार में वृद्धि होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. ज्ञान का क्या अर्थ है?

.....

.....

2. ज्ञान के निर्माण से आप क्या समझते है?

.....

.....

3. ज्ञान के निर्माण को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

9.4 ज्ञान निर्माण की विशेषताएं

ज्ञान के निर्माण की प्रमुख विशेषताओं के बारे में विभिन्न विद्वानों शिक्षाशास्त्रियों ने भिन्न–भिन्न विचार प्रकट किए है, जो निम्न है–

1. **संगठनात्मक संरचना बनाने की प्रक्रिया**– ज्ञान के निर्माण के अन्तर्गत सूचनाओं का प्रबन्धन, संगठन एवं पुनः प्राप्ति होती है। इसमें विज्ञान, तकनीकी, दर्शन एवं सामाजिक व्यवस्थाओं से सम्बन्धित तथ्यों को सरल रूप में प्रस्तुत करके संगठनात्मक संरचना दी जाती है।
2. **उद्देश्यपूर्णता के लिए ज्ञान का निर्माण**– बालक में संज्ञानात्मक, बोधात्मक तथा मनोगात्मक पक्षों को प्राप्त कर ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया होती है। संज्ञानात्मक पक्ष के अन्तर्गत ज्ञान, अवबोध, अनुप्रयोग, विश्लेषण, संश्लेषण आदि उदेद्श्य सम्मिलित है।
3. **सूचनाओं के संश्लेषण एवं विश्लेषण के रूप में ज्ञान–निर्माण**– मस्तिष्क में बिखरी हुई सूचनाओं को ज्ञान नही कहा जा सकता है। सूचनाओं का व्यवस्थित रूप ही ज्ञान है। सूचनाओं का विश्लेषण एवं संश्लेषण करके उपरान्त इसे ग्रहण करना ज्ञान–प्राप्ति है।
4. **दार्शनिक प्रक्रिया के रूप में ज्ञान का निर्माण**– दर्शन वह ज्ञान है जो शास्वत सिद्धान्तों तथा उसके कारणों की खोज एवं चर्चा करता है। दर्शन वास्तविकता के परीक्षण हेतु एक उपागम है। दार्शनिक प्रक्रिया वास्तव में स्व समाज एवं मानवीय विचारों की प्रक्रिया है। यह तार्किकता तथा व्यवस्थित विचारों की विधि है। इस प्रकार ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया एक दार्शनिक प्रक्रिया है।
5. **बौद्धिक ज्ञान के रूप में ज्ञान का निर्माण**–

   ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया बौद्धिकता से सम्बन्धित होती है। बौद्धिकता एक मानसिक स्थिति है, जो बुद्धि के उपयोग, विकास एवं अभ्यास पर बल देती है। यह तार्किकता से भी सम्बन्धित है।
6. **एक व्यापक प्रक्रिया के रूप में ज्ञान का निर्माण**– ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया में कई प्रक्रियाएं सम्मिलित होती है। यह एक सामाजिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा बौद्धिक प्रक्रिया है। सभी प्रक्रियाओं के समन्वित रूप ज्ञान–निर्माण में परिलक्षित होता है।
7. **ज्ञान का निर्माण तकनीकी सूचना की प्रक्रिया के रूप में**– सूचना एवं सम्प्रेषण क्रान्ति के इस युग में सूचनाओं को प्राप्त करने मे तकनीकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः ज्ञान का निर्माण तकनीकी सूचना की प्रक्रिया के रूप में है।
8. **वर्गीकरण की प्रक्रिया के रूप में ज्ञान का निर्माण**–

   ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया विभिन्न रूपों में होती है। मस्तिष्क में ज्ञान के विभिन्न रूप अलग–अलग वर्गीकृत रूप में संचित होते है। विभिन्न विषयों व प्रत्ययों से सम्बन्धित ज्ञाना, सामाजिक ज्ञान, व्यवहारिक ज्ञान, तकनीकी ज्ञान आदि विभिन्न रूपों में निर्मित।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

4. ज्ञान–निर्माण की कोई दो विशेषताएँ बताइए।

.....

.....

5. सूचना के सम्बन्ध में ज्ञान–निर्माण की क्या विशेषताएं है?

.....

.....

6. ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया किस प्रकार संश्लेषण एवं विश्लेषणात्मक है?

.....

.....

9.5 ज्ञान रचना की प्रक्रिया

पाठ्यक्रम के द्वारा छात्रों में ज्ञान अवबोध, व्यवहार एवं कौशल विकसित होते है। ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के लिए अन्तर अनुशासनात्मक पाठ निरीक्षण, प्रोजेक्ट कार्य पुस्तकाल्य एवं प्रयोगशालाओं की आवश्यकता होती है। ज्ञान का जो स्वरूप पाठ्यक्रम के अन्तर्गत नही होता है या जिनका मूल्यांकन अंकों के आधार पर नही किया जाता है उनके सम्बन्धस में भी ज्ञान की रचना पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। विषयों का एकीकरण या आपस में समन्वय होना आवश्यक होता है। विद्यालयी ज्ञान एवं व्यवहारिक ज्ञान को आपस में सम्बन्ध होना चाहिए।

सूचना की अपेक्षा ज्ञान को प्राथमिकता देनी चाहिए। सूचनाओं को रटने के बजाय ज्ञान की रचना पर बल दिया जाना चाहिए। नवीन विषयों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित करने से पूर्व यह प्रयास होना चाहिए कि पहले से मौजूद विषयों एवं विभिन्न गतिविधियों द्वारा इन्हें पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाय।

ज्ञान के चयन के संदर्भ में यह ध्यान देना आवश्यक है कि ये छात्र के विकासात्मक पहलुओं के हिसाब से उपयुक्त हो, तार्किक रूप से क्रमबद्ध हो, विभिन्न विषयों से सम्बन्धित प्रत्ययों को आपस में जोड़ने की आवश्यकता है। इस प्रकार छात्रों के ज्ञान रचना में सहायता मिलेगी।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

7. पाठ्यक्रम द्वारा छात्रों में क्या विकसित होते है?

.....

.....

8. ज्ञान के चयन के संबंध में कौन से तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए?

.....

.....

9.6 ज्ञान के निर्माण के लिए शिक्षण

ज्ञान के निर्माण की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया सीखना है। अधिगमकर्ता सक्रिय रूप से गतिविधियों के आधार पर ज्ञान की रचना करते है। विचारों का निर्माण एवं पुर्ननिर्माण अधिगमकर्ता के विकास के प्रमुख लक्षण है।

ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना शिक्षकों का दायित्व हैं अधिगम की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेने वाला बालक स्वयं ज्ञान का निर्माण करता है। शिक्षक के दौरान उन्हें भी प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित करना चाहिए। रटने एवं बिना समझे उत्तर देने का हतोत्साहित करना

चाहिए, सैद्धान्तिक ज्ञान को व्यवहारिक ज्ञान को व्यवहारिक ज्ञान से सम्बन्धित करना चाहिए। छात्र के पूर्व ज्ञान एवं एक कुशल–शिक्षक छात्रों की क्षमताओं का पूरा उपयोग करके ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया को तीव्र कर सकता है।

अन्वेषण, प्रश्न–पूछने, वाद–विवाद, व्यवहारिक प्रयोग आदि के द्वारा ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया को सुनिश्चित किया जा सकता है। छात्रों को स्वतंत्र चिन्तन के पूर्ण अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। छात्रों द्वारा दिए गए विभिन्न प्रकार के उत्तरों को शिक्षक द्वारा स्वीकार करना चाहिए। इस प्रकार के शिक्षण से छात्र द्वारा ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया में सहायता मिलती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

9. ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया में शिक्षक की क्या भूमिका है?

.....

.....

10. किन शिक्षण विधियों के प्रयोग से ज्ञान–निर्माण को सुनिश्चित किया जा सकता है?

.....

.....

9.7 ज्ञान के निर्माण के रूप में अधिगम

ज्ञान का निर्माण छात्र में अमूर्त चिन्तन, संगठन, संरचना, खोज एवं उच्च स्तर की मनन क्षमता विकसित करती है। ज्ञान रखने से तथा ज्ञान के विकास से मिलती–जुलती परिस्थितियों में अर्जित ज्ञान के स्थानान्तरण की क्षमता विकसित होती है। ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया में छात्र स्वयं बिखरी हुई सूचनाओं एवं अधिगम गतिविधियों को व्यवस्थित करके ज्ञान प्राप्त करते है।ज्ञान के निर्माण के रूप में अधिगम की धारणा को विकसित करने में जीन पियाजे, जीन डीवी तथा बायगॉहस्की आदि मनोवैज्ञानिकों का विशेष योगदान है। ज्ञान के निर्माण के सिद्धान्त के अनुसार अधिगम एक क्रियाशील प्रक्रिया है, जिसमें अधिगमकर्ता स्वयं के ज्ञान को निर्मित किया जाता है। ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया में अधिगमकर्ता पूर्व में अर्जित ज्ञान को नष्ट नही करते बल्कि उसका पुर्ननिर्माण करते है। ज्ञान के निर्माण के लिए उचित वातावरण में अधिगमकर्ता अपने अधिगम के लिए उत्तरदायी होते है। वे स्वयं के अधिगम तथा निष्पादन उपलब्धियों का आकलन करते है। उन्हे निर्देशित करने के लिए आत्म–संज्ञान क्षमताओं को विकसित करते है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

11. अधिगम एक क्रियाशील प्रक्रिया क्यों है?

.....

.....

12. ज्ञान–निर्माण प्रक्रिया में अधिगम के लिए कौन उत्तरदायी होता है? और क्यो?

.....

.....

9.8 ज्ञान निर्माण में सहभागिता

ज्ञान–निर्माण के लिए उसकी पद्यतियों प्रक्रियाओं आदि का विश्लेषण करना अनिवार्य हैं यह पता लगाना आवश्यक है कि यह व्यवस्थाएं किए प्रकार एक दूसरे से पृथक हैं। ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया में सहभागिता अत्यन्त आवश्यक हैं किसी प्रत्यय पर प्राप्त ज्ञान को आधुनिक समय में इंटरनेट पर डाल दिया जाता हैं इसके द्वारा उस प्रत्यय को समझने के इच्छुक व्यक्ति उससे ज्ञान प्राप्त कर सकते है। अन्य विशेषज्ञ उस ज्ञान में वृद्धि कर सकते है या परिवर्तन कर सकते है। इस प्रकार ज्ञान–निर्माण में एक दूसरे की सहभागिता से इसे अधिक विकसित किया जा सकता है। इस प्रकार के ज्ञान–निर्माण सम्बन्धित गतिविधियों को बढ़ा कर शैक्षणिक प्रक्रिया का हिस्सा बनाया जा सकता है। शिक्षा के अनुभव की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है। किसी भी विषय या प्रत्यय का अद्यतन ज्ञान प्राप्त किया जा सकताहै। उदाहरण के लिए पर्यावरण प्रदूषण के बारे में प्राप्त जानकारियों को इंटरनेट पर अपलोड किया जा सकता है। इस ज्ञान को इच्छुक व्यक्ति प्राप्त करसकते है। इसके क्षेत्र में विशेषज्ञ व्यक्ति इसमें संशोधन या परिवर्तन कर सकते है या अपनी टिप्पणियों लिख सकते है। इस प्रकार ज्ञान निर्माण में सहभागिता से अद्यतन ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

13. ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में सहभागिता क्यों आवश्यक है?

.....

.....

14. ज्ञान में संशोधन कौन कर सकता है?

.....

.....

9.9 सारांश

ज्ञान के निर्माण का अर्थ सूचनाओं के संगठनात्मक एवं उपयोगी स्वरूप से है, जिसके माध्यम से छात्रों को सर्वांगींण विकास के लिए अधिगम सामग्री शीघ्र उपलब्ध हो जाती है। छात्र स्वयं ही विभिन्न सूचनाओं एवं अधिगम गतिविधियों को व्यवस्थित करके ज्ञान प्राप्त करते है। ज्ञान का निर्माण सूचनाओं का प्रबन्ध एवं संगठन है। यह ज्ञात होने के बाद मस्तिष्क में संचित रहता है, वास्तविक अनुभव द्वारा प्राप्त होता है और अनुभवों के भण्डार में वृद्धि होती है। पाठ्यक्रम के द्वारा छात्रों में ज्ञान अवबोध, व्यवहार एवं कौशल विकसित होते है। ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के लिए अन्तर अनुशासनात्मक पाठ निरीक्षण, प्रोजेक्ट कार्य पुस्तकाल्य एवं प्रयोगशालाओं की आवश्यकता होती है। ज्ञान का जो स्वरूप पाठ्यक्रम के अन्तर्गत नही होता है या जिनका मूल्यांकन अंकों के आधार पर नही किया जाता है उनके सम्बन्धस में भी ज्ञान की रचना पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। ज्ञान का निर्माण छात्र में अमूर्त चिन्तन, संगठन, संरचना, खोज एवं उच्च स्तर की मनन क्षमता विकसित करती है। ज्ञान रखने से तथा ज्ञान के विकास से मिलती–जुलती परिस्थितियों में अर्जित ज्ञान के स्थानान्तरण की

क्षमता विकसित होती है। ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया में सहभागिता अत्यन्त आवश्यक हैं किसी प्रत्यय पर प्राप्त ज्ञान को आधुनिक समय में इंटरनेट पर डाल दिया जाता हैं इसके द्वारा उस प्रत्यय को समझने के इच्छुक व्यक्ति उससे ज्ञान प्राप्त कर सकते है। अन्य विशेषज्ञ उस ज्ञान में वृद्धि कर सकते है या परिवर्तन कर सकते है। इस प्रकार ज्ञान–निर्माण में एक दूसरे की सहभागिता से इसे अधिक विकसित किया जा सकता है।

9.10 अभ्यास के प्रश्न

1. ज्ञान–निर्माण की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. ज्ञान–रचना की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
3. ज्ञान के निर्माण के रूप में शिक्षण का वर्णन कीजिए।
4. ज्ञान के निर्माण के रूप में अधिगम की विवेचना कीजिए।
5. ज्ञान–निर्माण में छात्र–सहभागिता का क्या महत्व है।

9.11 चर्चा के बिन्दु

1. ज्ञान–निर्माण में सहायक तथ्यों के बारे में चर्चा कीजिए।

9.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सूचनाओं का व्यवस्थित एवं संगठित स्वरूप ही के निर्माण ज्ञान है।
2. ज्ञन के निर्माण का अर्थ सूचनाओं के संगठनात्माक एवं उपयोग स्वरूप से है।
3. ज्ञान की निर्माण सीखने का एक दृष्टिकोण है जो अधिगमकर्ता को अपने अनुभव का प्रयोग कर सक्रिय रूप से समझ के निर्माण से है न कि पहले से संगठित ज्ञान की समझ से।
4. ज्ञान–निर्माण एक दार्शनिक प्रक्रिया है। यह उद्देश्यपूर्ण होती है।
5. ज्ञान–निर्माण सूचनाओं के निर्धारण की प्रक्रिया है।
6. बिखरी हुई सुचनाएं ज्ञान नही है। इन्हें मस्तिष्क में विश्लेषित एवं संश्लेषित किया जाता है।
7. पाठ्यक्रम द्वारा छात्रों में ज्ञान, अवबोध्य कौशल एवं व्यवहार विकसित होते है।
8. ज्ञान के चयन के संदर्भ में यह ध्यान रखना चाहिए कि यह छात्र के विकासात्मक पहलुओं के अनुरूप से तथा तार्किक रूप से क्रमबद्ध हो।
9. ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया में शिक्षक छात्रों को सक्रिय रूप से भाग लेने हेतु प्रोत्साहित कर सकता है।
10. अन्वेषण, प्रश्न– पूछने, वाद–विवाद, व्यवहारिक प्रयोग सुनिश्चित किया जा सकता है।
11. अधिगम एक क्रियाशील प्रक्रिया है, क्योंकि अधिगमकर्ता स्वयं के ज्ञान एवं अनुभव पर आधारित विचारों एवं ज्ञान को निर्मित करता है।
12. ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया में अधिगम के लिए अधिगमकर्ता उत्तरदायी होता है, क्योंकि वह स्वयं अपने अधिगम एवं उपलब्धियों का आकलन करते है।
13. ज्ञान–निर्माण की प्रक्रिया में सहभागिता इसलिए आवश्यक है, क्योंकि इससे इच्छुक व्यक्ति/अधिगमकर्ता अद्यतन ज्ञान प्राप्त कर सकता है।
14. विषय–विशेषज्ञ द्वारा ज्ञान में परिवर्तन किया जा सकता है।

9.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. मदान, (2017), ज्ञान एवं पाठ्यक्रम, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. Chaudhary, B. (2018), "Knowledge' in knowledge, Langague and Curriculum.
3. ज्ञान का अर्थ एवं उसके प्रमुख प्रकार, www.shikshavi.char.com retrieweb on 12.12.2022 5:00PM
4. https//www.merriam-webstar.com.

खण्ड– 04 : शिक्षा और ज्ञान

खण्ड परिचय

खण्ड 04 शिक्षा और ज्ञान से संबंधित है अन्य इकाइयों की भांति इस इकाई को भी तीन इकाइयों में विभाजित कर उसका वर्णन प्रस्तुत किया गया है। यह खंड जिन तीन इकाइयों में विभाजित किया गया है वह इस प्रकार है–

इकाई 10 शिक्षा के चार स्तंभ (डेलर्स आयोग रिपोर्ट)

इकाई 11 शिक्षा का भविष्य विज्ञान

इकाई 12 ज्ञान के निर्माता

उपरोक्त इकाइयों के अंतर्गत वर्णित की गयी विषय वस्तुओं का विस्तृत परिचय इस प्रकार है–

इकाई 10 जो कि शिक्षा के चार स्तंभ (डेलर्स आयोग रिपोर्ट) से संबंधित है। इस इकाई के अंतर्गत डेलर्स आयोग रिपोर्ट 1996 को स्पष्ट तरीके से वर्णित किया गया है। डेलर्स आयोग रिपोर्ट के प्रारूप को प्रदर्शित करते हुए डेलर्स आयोग के परिप्रेक्ष्य में 21वीं सदी के विरोधाभास को प्रस्तुत किया गया है। शिक्षा के चार स्तंभ के अंतर्गत ज्ञान के लिए सीखना, कर्म के लिए सीखना, सह जीवन के लिए सीखना तथा स्व और सुजीवन के लिए सीखना को विस्तृत रूप में व्याख्यायित किया गया है।

इकाई 11 जो कि भविष्य शिक्षा से संबंधित है। इस इकाई के अंतर्गत भविष्य शिक्षा के अर्थ एवं संप्रत्यय को स्पष्ट किया गया है। भविष्य शिक्षा की आवश्यकता एवं उसके उद्देश्य को बिंदुवार स्पष्ट किया गया है। भविष्य शिक्षा के कार्य को बिंदुवार प्रस्तुत किया गया है। साथ ही भविष्य शिक्षा के महत्व को भी बताते हुए इकाई के अंत में उच्च शिक्षा को भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप किस प्रकार से विकसित करना चाहिए इस विषय में भी प्रकाश डाला गया है।

इकाई 12 जो कि ज्ञान का निर्माण से संबंधित है। इस इकाई में ज्ञान के निर्माण के अर्थ एवं उसके प्रकार तथा महत्व को विस्तृत रूप में बताया गया है। ज्ञान के प्रकारों को बताते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि इसके अनेक प्रकार जैसे– स्थानीय ज्ञान, सार्वभौमिक ज्ञान, प्रत्यक्ष ज्ञान एवं अप्रत्यक्ष ज्ञान इत्यादि ज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। साथ ही ज्ञान के महत्व को बिंदुवार स्पष्ट किया गया है। ज्ञान के अनेक सिद्धांतों जैसे– वास्तविक विचार और वास्तविक समस्याएं, विचारों के ऊपर उठना इत्यादि पर प्रकाश डाला गया है। ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया को आरेख के माध्यम से स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है। ज्ञान के निर्माण की विशेषताओं को बताते हुए उसके स्वरूप पर भी विस्तृत प्रकाश डाला गया है। ज्ञान के निर्माण के रूप में अधिगम तथा ज्ञान के अंतरण एवं ज्ञान प्राप्ति के रूप में अधिगम में अंतर को स्पष्ट रूप में दर्शाया गया है। इससे सम्बन्धित अनेक सम्प्रत्ययों को भी उदाहरण के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया है।

इकाई– 10 :शिक्षा के चार स्तंभ (डेलर्स आयोग की रिपोर्ट)

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 इकाई के उद्देश्य

10.3 डेलर्स आयोग रिपोर्ट 1996

10.4 डेलर्स आयोग के रिपोर्ट का प्रारूप

10.5 डेलर्स आयोग का परिप्रेक्ष्य

10.5.1 इक्कीसवी सदी के विरोधाभास

10.6 शिक्षा के चार स्तंभ

10.6.1 ज्ञान के लिए सीखना

10.6.2 कर्म के लिए सीखना

10.6.3 सहजीवन के लिए सीखना

10.6.4 स्व और सुजीवन के लिए सीखना

10.7 सारांश

10.8 अभ्यास के प्रश्न

10.9 चर्चा के बिन्दु

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना

शिक्षा के चार स्तंभों पर चर्चा करना संदर्भ विशेष में एक चिरंतन विषय कहा जा सकता है। क्योंकि यह प्रकरण जितना प्राचीन है उतना ही नवीन भी। शिक्षा के ये चार स्तंभ वे सार्वभौमिक मूल्य हैं जिनके आधार पर किसी भी देश व संस्कृति विशेष की शिक्षा की रूपरेखा तैयार की जाती है। हम समझ सकते हैं कि संपूर्ण विश्व में मानव मात्र की शिक्षा के जो भी लक्ष्य तय किए जा सकते हैं, वे इन चार प्रमुख लक्ष्यों में समाहित है। यदि आप यह सोच रहे हैं कि इन चार स्तंभों की आवश्यकता क्या है तो ध्यान रहे कि आपने शिक्षा की गुणवत्ता के ह्रास पर अनेक वक्तव्य सुने होंगे जो कि किसी शिक्षा विशेषज्ञ द्वारा भी हो सकते हैं और अल्पज्ञ द्वारा भी। समाज के प्रत्येक वर्ग में जब शिक्षा की गुणवत्ता की चिंता हो रही हो तब हम समझ सकते हैं कि शिक्षा की प्रक्रिया कहीं ना कहीं अपने लक्ष्यों य स्तंभों से भटक गई है। यदि हम गुणवत्ता विहीन शिक्षा की बात करें तो हमें उस प्रक्रिया को कुछ और नाम देना होगा पर शिक्षा नहीं क्योंकि विद्या वही जो बंधनों से मुक्त करे (''सा विद्या या विमुक्तये'')। अपनी धुरी से भटकी हुई शिक्षा व्यवस्था सबसे नकारात्मक रूप में मत आरोपण (Indoctrination/ मस्तिष्क दूषण) द्वारा आतंकवादियों को भी तैयार कर सकती हैं। उदाहरण के लिए हम समझ सकते हैं कि पाकिस्तान अधिकृत (कब्जे वाले) कश्मीर में प्रशासनिक शब्दावली में तो विद्यालय ही चल रहे हैं पर निकलते हैं अजमल कसाब जैसे आतंकवादी। आम जन की समझ में हिंसा व आतंक का पर्याय बन गए तालिबान शब्द का वास्तविक अर्थ विद्यार्थी (तालिब) ही होता है। जबकि विद्यालय का दायित्व कि वे ऐसे

नागरिक तैयार करें जो कर्तव्यों के प्रति सचेष्ट हो। अतः यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि हमारे शिक्षक विशेष रूप से विद्यार्थी–शिक्षक शिक्षा के आधारभूत स्तंभों को जाने, समझे और उनका अनुसरण करें। वैश्विक स्तर पर शिक्षा के जो चार स्तंभ तय किए गए हैं वे इस प्रकार हैः–

i. ज्ञान के लिए सीखना (Learning to Know)

ii. कर्म के लिए सीखना (Learning to do)

iii. सहजीवन के लिए सीखना (Learning to Live together)

iv. स्व और सुजीवन के लिए सीखना (Learning to Be)

उपरोक्त चार स्तंभ सीखने (शिक्षा) के समस्त व्यक्तिगत और सामाजिक लक्ष्यों को समाहित करते हैं। जैसा कि पहले कहा गया था कि ये चिरंतन लक्ष्य है, जो कि किसी भी देश व काल में प्रासंगिक होते हैं। सरल शब्दों में कहा जाए तो यदि शिक्षा प्रासंगिक है तो गुणवत्तापूर्ण ही होगी। जैसा कि हम जानते हैं इन चार स्तंभों को सार्वभौमिक कहा गया है अर्थात यह समस्त विश्व की शिक्षा व्यवस्था को अनुप्राणित कर रहे हैं। इन चार स्तंभों पर विस्तृत चर्चा करने से पूर्व हम उन प्रश्नों का समाधान कर लेते हैं जो हम में से कुछ सोच रहे होंगे कि शिक्षा के चार स्तंभ कब, कैसे और किसके द्वारा तय किए गए है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर शिक्षा के इन चार स्तंभों का विवरण डेलर्स आयोग की रिपोर्ट में मिलता है। अन्तर्गत हम डेलर्स आयोग की रिपोर्ट के विषय में चर्चा करेंगे।

10.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. शिक्षा के चार स्तंभों का वर्णन कर सकेंगे।
2. शिक्षा के चार स्तंभों के श्रोत/स्रोतों को बता सकेंगे।
3. शिक्षा के चार स्तंभों के औचित्य सिद्ध कर सकेंगे।
4. शिक्षा के चार स्तंभों की विस्तृत विवेचना कर सकेंगे।
5. डेलर्स आयोग की स्थापना व इसकी रिपोर्ट पर चर्चा कर सकेंगे।

10.3 डेलर्स आयोग रिपोर्ट 1996

डेलर्स आयोग की रिपोर्ट यूनेस्को (संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक संगठन (United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization) द्वारा **'सोखना एक अंतरनिधि'** (Learning the Treasure within) के नाम से 1996 में प्रकाशित की गई थी। इस रिपोर्ट के पाठ अंग्रेजी, फ्रांसीसी, और स्पेनिश भाषा में उपलब्ध है। ज्ञातव्य हो कि यूनेस्को संयुक्त राष्ट्र का एक एक अनुषांगिक संगठन है जो शिक्षा संस्कृति व विज्ञान के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से शांति की स्थापना और अनुरक्षण के लिए महत्वपूर्ण कार्य करता है। जैसा कि हम जानते हैं कि शिक्षा अर्थ विशेष में भविष्य के लिए नियोजन व निवेश है। अतः यूनेस्को भी सदस्य राष्ट्रों को शैक्षिक नियोजन व नीति निर्धारण में समय–समय पर सहयोग प्रदान करता रहता है। सहयोग की इस श्रंखला में यूनेस्को ने शिक्षा पर कुछ आयोगों का समय–समय पर गठन किया है। उनमें से डेलर्स आयोग को सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। डेलर्स आयोग का औपचारिक व वास्तविक नाम **'इक्कीसवीं सदी के लिए शिक्षा पर अंतर्राष्ट्रीय आयोग'** है। इस पंद्रह सदस्यीय आयोग के अध्यक्ष जैक डेलर्स (Jacques Delors) थे। इसलिए इसे डेलर्स आयोग और आयोग की रिपोर्ट को डेलर्स रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है।

10.4 डेलर्स आयोग के रिपोर्ट का प्रारूप

डेलर्स आयोग की रिपोर्ट में तीन भाग है। दृष्टिकोण (अध्याय 1 2 व 3), सिद्धांत (अध्याय 4 व 5) और निर्देश (अध्याय 6 7 8 व 9)। इन तीन भागों और नौ अध्यायों के अलावा रिपोर्ट के प्रारंभ में भूमिका और अंत में उपसंहार भी दिया गया है। जिसमें महत्वपूर्ण विषयों पर विवेचना प्रस्तुत की गई है। इस रिपोर्ट को अंग्रेजी भाषा में 266 पृष्ठों में प्रकाशित किया गया है। आयोग के प्रमुख रिपोर्ट के अलावा उपसंहार वाले भाग में आयोग के सदस्यों के व्यक्तिगत आलेख भी प्रस्तुत किए गए हैं। कुल 11 सदस्यों ने अपने आलेखों का योगदान किया था उनमें से एक आलेख भारतीय सदस्य डॉ कर्ण सिंह द्वारा 'वसुधैव कुटुंबकम' के संदर्भ में प्रस्तुत है जो कि शिक्षा के चार स्तंभों में से एक 'सहजीवन के लिए शिक्षा' को प्रत्यक्ष रूप से अवधारणात्मक आधार प्रदान करता है। डॉ कर्ण सिंह जैसे भारतीय दार्शनिक विद्वान के आयोग का सदस्य होने के कारण कुछ लोग आयोग की रिपोर्ट का नाम 'सीखना एक अंतरनिधि' को भारतीय योगदान मान लेते हैं। परंतु आयोग की रिपोर्ट के नामकरण का आधार फ्रांसीसी दंतकथाकार ल फोंटेन (La Fontaine) की कृति 'हलवाहा और उसके पुत्र' (The Ploughman and his Sons) से प्रेरित है (पृष्ठ 35)। आयोग की रिपोर्ट का नामकरण हो या आयोग द्वारा सुझाए गए शिक्षा के चार स्तंभ दोनों ही भारतीय ज्ञान परंपरा से विशेष समानता रखते हैं। इस समानता का जो प्रमुख कारण प्रतीत होता है कि ये सनातन व सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों पर आधारित है। प्राचीन भारतीय शैक्षिक परंपरा में शिक्षा के उद्देश्य कुछ इसी प्रकार उल्लिखित है।

10.5 डेलर्स आयोग का परिप्रेक्ष्य

द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका के अनुभव के उपरांत वैश्विक समाज ने तृतीय विश्व युद्ध को टालने का हर संभव प्रयास किया है। हम कह सकते हैं कि वैश्विक नेतृत्व विशेष रूप से संयुक्त राष्ट्र (United Nations) अपने इस पुण्य लक्ष्य में एक बड़ी सीमा तक सफल भी रहा है। लेकिन मानवता के शांति और कल्याण का उद्देश्य पूरा ना हो सका। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद डेलर्स आयोग के गठन वर्ष 1993 ई० तक लगभग 150 युद्ध हुए जिनमें बीस करोड़ लोगों के मारे जाने की पुष्टि की गई थी। अंततः कहा जा सकता है कि बीसवीं शताब्दी में मनुष्य युद्धों से विरत ना हो सका। वैश्विक शांति के लिए आवश्यक हैं कि मनुष्य मात्र के मस्तिष्क में शांति की स्थापना हो। शांति, जो कि यूनेस्को का ध्येय है और यह शिक्षा के माध्यम से ही संभव है। एक सुखद भविष्य की कामना मानव मात्र का स्वभाव है। बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में जहां एक तरफ हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश के लिए उत्साहित थे वहीं दूसरी तरफ बीसवीं सदी के अनुभवों की पीड़ा से व्यथित भी थे। बीसवीं सदी में हमने विज्ञान व तकनीकी के क्षेत्रों में पर्याप्त विकास किया जिससे मानव की जीवन सहज व सुखद हो सका है। परंतु शायद हमारी विकास की सोच समेकित व सतत नहीं रही है। एक ही देश में और अलग–अलग देशों में जीवन स्तर का बड़ा अंतर आज भी विद्यमान है। इक्कीसवीं सदी में मानव द्वारा जिन समस्याओं का सामना अपेक्षित था उनके केंद्र में जो कारण, विरोधाभास या तनाव हो सकते थे और जिनपर विजय पाना शिक्षा के उद्देश्यों में आवश्यक रूप से शामिल है, आयोग ने उनका अपनी रिपोर्ट की भूमिका में उल्लेख किया है जो कि इस प्रकार है।

10.5.1 इक्कीसवीं सदी के विरोधाभास

इक्कीसवीं सदी के विरोधाभास को निम्न रूपों में देखा जा सकता है–

i. वैश्विक बनाम स्थानीय
ii. सार्वभौमिक बनाम वैयक्तिक
iii. परंपरा बनाम आधुनिकता
iv. दीर्घावधि बनाम लघु अवधि प्रतिफल
v. प्रतिस्पर्धा बनाम सहयोग
vi. ज्ञान का असाधारण प्रसार और आत्मसातीकरण की मानवीय क्षमता
vii. आध्यात्मिकता बनाम भौतिकता

शिक्षा को व्यक्ति में वह क्षमताएं विकसित करनी होगी जो उपरोक्त द्वंदों व तनावों के समाधान में सहायक हो सकें और व्यक्ति जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सामंजस्य स्थापित कर सकें। इक्कीसवीं सदी के तीव्र परिवर्तनों से उत्पन्न द्वंदों व चुनौतियों के मध्य सामंजस्य पूर्ण व्यक्तिक के विकास के लक्ष्य को प्राप्त करते हुए **'ज्ञान समाज'** की स्थापना करना ही शिक्षा का परम लक्ष्य है।

आयोग के अनुसार सूचना क्रांति के युग (21वीं सदी) में शिक्षा से दो ऐसी मांगे रहेंगी जो परस्पर विरोधी प्रतीत होती हैं। प्रथमतया संप्रेषण के साधनों में अभूतपूर्व वृद्धि होने से शिक्षा को सतत रूप से विकसित होती हुई ज्ञानराशि का प्रभावी ढंग से संचरण करना होगा। द्वितीय शिक्षा को व्यक्ति और समाज के विकास के लक्ष्य को केंद्र में रखते हुए कुछ ऐसे संदर्भ बिंदु तय करने होंगे जिससे कि व्यक्ति सूचनाओं की विशाल धारा में बह ना जाए, जिनमें से कुछ सूचनाएं अल्पजीवी हो सकती हैं। जैसा कि एक बच्चे के मस्तिष्क को सूचनाओं का भंडार गृह नहीं बनाया जा सकता अतः आयोग जीवनपर्यंत अधिगम की अवधारणा को पुनः स्थापित करता है। वैसे भारतीय वाङ्मय में प्राचीन काल से ही जीवन पर्यंत अधिगम की संकल्पना मिलती है

आचार्यात् पादमादत्ते पादं शिष्यः स्वमेधया ।

सब्रह्मचारिभ्यः पादं पादं कालक्रमेण च ॥

अर्थात शिक्षार्थी एक चौथाई शिक्षक से सीखता है, एक चौथाई अपनी मेधा से (अपने प्रयासों से), एक चौथाई सहपाठियों से और एक चौथाई समय (जीवन अनुभव से) सीखता है। समय से सीखने का निहितार्थ है कि सीखना एक सतत मानवीय कर्म है। जैसा कि इस इकाई में पहले भी कहा गया है कि डेलर्स रिपोर्ट के सिद्धांतों में प्राचीन भारतीय शिक्षा परंपरा से पर्याप्त साम्य मिलता है। यह एक संयोग भी हो सकता है, या भारत से डॉ० कर्ण सिंह जैसे विद्वान का आयोग का सदस्य होना। आगे आप देखेंगे आयोग संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था को जिन चार स्तंभों पर आधारित करता है वह भी भारतीय ज्ञान परंपरा के सार तत्वों में से ही है। आधुनिक भारत में विवेकानंद, टैगोर, गांधी आदि विद्वानों ने शिक्षा की जो अवधारनाएं प्रतिपादित की हैं वे इन चार स्तंभों य लक्ष्यों द्वारा ही सार्थक हो सकती है। आइए अब हम सीखने के उन चार स्तंभों पर चर्चा करते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. अपने लक्ष्यों से भटकी हुई शिक्षा के क्या प्रतिफल हो सकते हैं?

.....

.....

2. डेलर्स आयोग में भारत से कौन सदस्य थे ?

.....

.....

3. डेलर्स आयोग 1996 की रिपोर्ट के नामकरण का आधार क्या है?

.....

.....

4. डेलर्स आयोग के अनुसार शिक्षा को इक्कीसवी सदी के कितने विरोधाभासों का समाधान करना है?

.....

.....

10.6 शिक्षा के चार स्तंभ

शिक्षा के चार स्तम्भ के अन्तर्गत ज्ञान के लिए सीखना, कर्म के लिए सीखना, सहजीवन के लिए सीखना तथा स्व एवं सुजीवन के लिए सीखना सम्मिलित है। जिसका विस्तृत विवेचन निम्नवत है–

10.6.1 ज्ञान के लिए सीखना

यहां ज्ञान शब्द का प्रयोग क्रिया शब्द के रूप में हुआ है जिसका तात्पर्य जानने या भिज्ञ होने से है। किसी भी वस्तु या व्यक्ति को समझने का प्रथम पद उसके विषय में जानना या सूचना रखना होता है। सीखने का यह प्रकार जीवन पर्यंत चलने वाली अधिगम प्रक्रिया में साधन और साध्य दोनों ही रूपों में समझा जा सकता है। जानने के लिए सीखना सिर्फ कुछ अव्यवस्थित तत्वों को जानने तक ही सीमित नहीं है, वरन ज्ञान प्राप्ति के साधनों, यंत्रों, उपकरणों आदि में दक्षता हासिल करना है। साधन के रूप में यह व्यक्ति को अपने वातावरण को समझने और तदनुरूप गरिमामय जीवन यापन में सहायक है। अर्थात सीखने की प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति यह समझ सकता है कि सीखा कैसे जाता है (Learning How to Learn)। साध्य के रूप में यह जानने, समझने, और खोज (अन्वेषण) के आनंद का आधार है। ध्यान रहे कि जानकारी ही आगे चलकर शोध करने और निर्णय करने की क्षमता का आधार बनती है। अतः माध्यमिक स्तर पर ही हमें विद्यार्थियों को ज्ञान के साधनों, अवधारणाओं, संदर्भ, प्रक्रियाओं (शोध) आदि से सुसज्जित करना होगा। ध्यातव्य हो कि भारतीय संविधान के अनुसार वैज्ञानिक सोच, मानवतावाद और जांच (अन्वेषण) और सुधार की भावना रखना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है (अनुच्छेद 51 A: h)।

ज्ञान के लिए सीखना वास्तव में सीखने को सीखना है (Learning to learn)। जिसमें एकाग्रता के लिए सीखना, स्मृति के लिए सीखना और विचार के लिए सीखना भी शामिल है।

आयोग ने अपनी रिपोर्ट में उदाहरण दिया जो कि आज के भारतीय परिदृश्य में सर्व व्याप्त समस्या प्रतीत होती है। आयोग ने माना कि उन समाजों में जहां टेलीविजन (टीवी) हावी है और बच्चे तेजी से चौनल बदलते रहते हैं वहां बच्चों में एकाग्रता का अभाव हो सकता है। जो आगे चलकर खोज (अन्वेषण) की प्रक्रिया, जिसमें हम प्राप्त सूचनाओं का गहराई से अध्ययन करते हैं, के लिए घातक सिद्ध होगा। एकाग्रता के लिए सीखने के कई रूप हो सकते हैं। विभिन्न परिस्थितियों वा अवसरों में जैसे कि खेल, औद्योगिक प्रशिक्षण, भ्रमण (यात्रा) विज्ञान–प्रयोग आदि के माध्यम से एकाग्रता का प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

आज जब हमारे पास सूचनाओं को संग्रहित करने के अभूतपूर्व साधन हैं जैसे कि स्मार्टफोन (Samrt Phone) क्लाउड कंप्यूटर (Cloud Computing Services) लेकिन हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि मानव स्मृति व उसकी क्षमता का विकास अनावश्यक और रूढ़िगत बात हो गई है। विभिन्न सूचना माध्यमों द्वारा प्रस्तुत तात्कालिक सूचनाओं की दलदल में फंसने से बचने के लिए स्मृति का विकास भी आवश्यक है। जो एक विषहर औषधि के रूप में व्यक्ति के काम आएगी। अतः शिक्षकों को बचपन से ही बच्चों की स्मृति के विकास पर ध्यान देना होगा। सर्वप्रथम हमें परंपरागत व उबाऊ अभ्यासों को अपने शिक्षणशास्त्र से हटाना होगा। आइए हम शिक्षक बच्चों की शिक्षा के लिए कुछ रचनात्मक व्यवहारिक और रुचिकर क्रियाओं के विकास की ओर सोचे।

ज्ञान निर्माण या प्राप्त करना एक सतत प्रक्रिया है। ज्ञान की धारा सतत परिवर्तनशील भी है। अतः स्मृति व एकाग्रता के विकास से यह नहीं समझना चाहिए कि व्यक्ति अधिकाधिक सूचनाओं को जान सकेगा और याद रख सकेगा। सूचना क्रांति की इक्कीसवीं सदी में यह सर्वदा असंभव कार्य है। लेकिन ज्ञानराशि की सार्थकता इसकी समग्रता में ही है। हमें याद रखना होगा कि उच्च शिक्षा स्तर पर विशेषज्ञता का आधार सामान्य बोध ही है। ज्ञान के लिए सीखने के संदर्भ में प्रारंभिक शिक्षा को तब सफल तब माना जाएगा जब वह जीवनपर्यंत अधिगम को आधार प्रदान करे। अर्थात बच्चों में सीखने के प्रति प्रेम उत्पन्न कर सके।

10.6.2 कर्म के लिए सीखना

कर्म के लिए सीखना और ज्ञान के लिए सीखना इस तरह से अंतरसंबंधित है कि इन्हें समान्यतः पृथक करके नहीं समझा जा सकता है। अत्यंत व्यावहारिक शब्दों में कर्म के लिए सीखना व्यवसायिक शिक्षा से जुड़े

हुए प्रश्नों के समाधान को लक्षित करता है। आज के समय में जहां बेरोजगारी की चर्चा और चिंता चारो ओर है। जहां हमारे लगभग पचास प्रतिशत स्नातक किसी भी कार्य को करने का कौशल नहीं रखते हैं (India Skill Report, 2021) उस समय शिक्षा व्यवस्था को कर्म के लिए सीखने (कौशलों के विकास और व्यवहारिक ज्ञान) पर और अधिक ध्यान देना होगा। इस समस्या के समाधान हेतु भारत सरकार ने इस दिशा में 'कुशल भारत अभियान' की शुरुआत भी की है।

डेलर्स आयोग इक्कीसवीं सदी में तेज गति से बदलते हुए व्यावसायिक परिदृश्य का अनुमान लगाते हुए कर्म के लिए सीखने को शिक्षा के स्तंभ के रूप में संस्तुति करता है। कर्म के लिए शिक्षा के दो पक्ष है। प्रथम बच्चों को इस तरह से शिक्षित करना कि वे सीखे हुए ज्ञान का व्यवहार में सहजता से प्रयोग कर सकें। द्वितीय शिक्षा व्यक्ति को भविष्य के कार्यों वा व्यवसायों के लिए तैयार करें जिनकी प्रकृति वर्तमान में स्पष्ट नहीं है। अतः शिक्षा को कौशलों के विकास तक ही सीमित न रहकर उन दक्षताओं व क्षमताओं का विकास करना होगा जो कि तकनीकी परिवर्तनों के फलस्वरुप आए कार्य परिवर्तनों से अनुकूलन में सहायक हो। अर्थात व्यक्ति अपनी चिंताओं वा द्वंदों का सफलतापूर्वक सामना करते हुए भविष्य के निर्माण में अपनी भूमिका अदा कर सकें। कुछ मूलभूत कौशल जैसे कि संप्रेषण, दूसरों के साथ काम करना, संघर्षों का प्रबंधन व समाधान आदि कर्म के लिए सीखने में अनिवार्य रूप से शामिल है। कर्म के लिए सीखने को उत्पादकता के सीमित अर्थ में ही नहीं समझना चाहिए वरन ज्ञान के विकास को नवाचार में रूपांतरित करते हुए नए व्यवसायों और रोजगारों के सृजन की क्षमता के रूप में समझना चाहिए। कर्म के लिए सीखना वास्तव में जीवन कौशलों का विकास करना है।

10.6.3 सहजीवन के लिए सीखना

वर्तमान संदर्भ में सहजीवन के लिए सीखना शिक्षा का मुख्य मुद्दा है। शिक्षा प्रणाली को इस दिशा में अभी बहुत कार्य करना है। बीसवीं शताब्दी में मानवता ने दो विश्वयुद्धों की त्रासदी का सामना किया है। विश्व युद्ध के उपरांत शांति की अपेक्षा से संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्थाएं स्थापित हुई और शांति की स्थापना और सरक्षण के लिए सतत प्रयासरत भी हैं। सभी प्रयासों के बावजूद मानव ने संघर्ष तथा विनाश के पर्याप्त साधन जुटा रखे हैं। युद्ध क्षेत्रों से परे सांस्कृतिक, आर्थिक, भाषाई, राजनीतिक क्षेत्रों में भी व्यक्ति हो या राष्ट्र सभी संघर्षरत है। इसके पीछे का मनोविज्ञान यह है कि सामान्यतः व्यक्ति अपनी विशेषताओं को श्रेष्ठ मानकर चलता है। फलस्वरूप पूर्वाग्रहों और प्रतिस्पर्धा का जन्म होता है। खेद की बात यह है कि कभी–कभी तो शिक्षा प्रणाली ही इन संघर्षों के लिए उचित वातावरण तैयार करती है। शिक्षा व्यवस्था को वह रास्ता (पाठ्यचर्या) अपनाना होगा जिससे व्यक्ति दूसरों को समझ सके और जीवन पर्यंत सामूहिक व साझा उद्देश्यों का अनुभव कर सके और उनकी प्राप्ति में अपने प्रयासों को समूहिक प्रयासो में एकीकृत कर सके। उदाहरण स्वरूप मानव भूगोल, विदेशी भाषा व साहित्य जैसे विषयों को प्राथमिक स्तर से ही प्रारंभ करके मानव प्रजाति में विविधता, समानता और अन्योन्नश्रिता की समझ विकसित की जा सकती है। दूसरों की भाषा व संस्कृति को समझना और उसका सम्मान करना सीखना होगा। याद रहे कि दूसरों को समझने की प्रथम शर्त है कि व्यक्ति अपने आप को समझें। अपनी भाषा व संस्कृति की समझ का विकास भी आवश्यक है। शिक्षकों को इस संदर्भ में आदर्श स्थापित करने होंगे तभी विद्यार्थी समझ सकते हैं संघर्ष की स्थिति में संवाद और शास्त्रार्थ (वाद–विवाद) से भी मुकाबला किया जा सकता है। शिक्षकों व शिक्षा प्रणाली को बचपन से ही सहकारिता व सहजीवन के लिए शिक्षित करना होगा। इस कार्य में खेल, समुदायिक कार्य, आस–पड़ोस में स्वच्छता और उसकी मरम्मत का कार्य, बुजुर्गों की सहायता आदि सहजीवन के लिए सीखने के माध्यम बन सकते हैं। यह अत्यंत ही खेदजनक होगा कि संपूर्ण विश्व को वसुधैव कुटुम्बकम का संदेश देने वाले देश के नागरिकों में सहजीवन के गुणों का अभाव हो।

10.6.4 स्व और सुजीवन के लिए सीखना

प्राचीन वैदिक शिक्षा प्रणाली में आत्मज्ञान और आत्मानुभूति को शिक्षा का मुख्य उद्देश्य माना गया है। स्व के लिए सीखना उसी दिशा की ओर इंगित करता है। डेलर्स आयोग ने सीखने का यह स्तम्भ एडगर फोरे (Edgar Faure) आयोग, 1972 की रिपोर्ट से लिया है। जिसका शीर्षक 'स्व के लिए सीखना' (Learning to be: The World of Education today and tomorrow) था। सीखने के इस स्तंभ के अंतर्गत शिक्षा को दो

अंतर्संबंधित कार्य करने हैं। प्रथम तो शिक्षा व्यक्ति को मनुष्यता की प्राप्ति में सहायक हो। जिसे हम स्व के लिए सीखना कह सकते हैं। दूसरा शिक्षा व्यक्ति में उन क्षमताओं का विकास करे जिससे की वह सहज, सुखद और गरिमामयी ढंग से जीवन यापन कर सके। इसे हम सुजीवन के लिए सीखना कह सकते है। डेलर्स आयोग 1996 और उससे पूर्व फोरे आयोग 1972 की रिपोर्ट में तीव्र औद्योगिक व तकनीकी विकास फलस्वरूप अमानवीकरण (Dehumanization) की समस्या पर जोर दिया गया है। आज के भारतीय समाज में यह समस्या स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रही है। अँग्रेजी पदबंध 'लर्निंग टु बी' (learning to be) का यदि शाब्दिक अनुवाद करें तो 'होने (बनाने) के लिए सीखना' होगा अर्थात मनुष्य के मनुष्य बनने के लिए सीखना। अतः शिक्षा व्यवस्था को व्यक्ति में उन क्षमताओं का विकास करना है जिससे व्यक्ति अपने जीवन की समस्याओं का समाधान कर सके, अपने निर्णय लेने में सक्षम हो सके और अपनी जिम्मेदारियों का निर्वाह सफलतापूर्वक कर सके। इसे हम अस्तित्व के लिए या सुजीवन के लिए सीखना कह सकते हैं।

स्व के लिए सीखने का तात्पर्य व्यक्ति में उन मानवीय शक्तियों के विकास से है जिसमें व्यक्ति का जीवन व्यक्ति के और व्यक्ति अपने जीवन के नियंत्रण में रह सके। इस हेतु शिक्षा व्यक्ति को विचार, निर्णय और अनुभूति और कल्पना की स्वतंत्रता प्रदान करती है। आयोग ने कल्पना और रचनात्मकता को स्वतंत्रता की स्पष्ट अभिव्यक्ति माना है। मानव व्यवहार के मानकीकरण (Standardization) से इस स्वतंत्रता के लिए संकट पैदा हो सकता है। जब हम शिक्षक अपनी कल्पना से आदर्श व्यक्ति के मानक के अनुसार बच्चों के व्यक्तित्व को तैयार करने की कोशिश करते हैं तो कहीं ना कहीं हम शिक्षा की अवधारणा व लक्ष्य से भटक जाते हैं। याद रहे की विवेकानंद जी ने शिक्षा को व्यक्ति में अंतर्निहित शक्तियों की अभिव्यक्ति माना है। अतः शिक्षा के माध्यम से बाहरी शक्तियों के आरोपण द्वारा व्यक्तित्व का विकास संभव ही नहीं है। इसलिए हमें बच्चों को खोज व प्रयोग के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करने होंगे। खोज वा प्रयोग को सिर्फ विज्ञान विषय के संबंध में नहीं समझना चाहिए अपितु खोज और प्रयोग कलात्मक, सौंदर्यात्मक, क्रीड़ात्मक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक और सामाजिक भी हो सकते हैं। जो की जीवन के विभिन्न पक्षों से संबन्धित हो। आयोग ने माना है कि कला व साहित्य को शिक्षा प्रक्रिया में फिर से महत्व देना होगा जिससे कि व्यक्ति स्वानुभूति के लिए सक्षम हो सकें। सारांशतः स्व के लिए सीखना व्यक्ति के सर्वांगीण विकास और मानुषत्व के विकास को को लक्षित करता है। जिसे भारतीय परंपरा में आत्मज्ञान कहा गया है। भगवत गीता में समत्व की संकल्पना और पतंजलि योग सूत्र में 'चित्तवृत्ति निरोध की संकल्पना आदि से एक ही सार निकलता है कि व्यक्ति सुख और दुख के समय में सहज जीवन जी सके। सहज जीवन कि कला को सीखने को ही डेलर्स आयोग ने स्व के लिए सीखना (Learning to be) कहा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

5. कर्म के लिए सीखने का उच्च स्तर क्या है?

.....

.....

6. सहजीवन की शिक्षा के लिए किन विषयों को प्राथमिक स्तर से शुरू करना होगा?

.....

.....

7. डेलर्स आयोग में वर्णित 'स्व के लिए सीखने' का स्तम्भ का मूल स्रोत क्या है?

.....

.....

10.7 सारांश

शिक्षा के उपरोक्त चार स्तंभ व्यक्ति की शिक्षा की ऐसी संकल्पना प्रस्तुत करते हैं जिससे व्यक्ति जीवन पर्यंत सीखने की ओर अग्रसर होता है। ज्ञान के लिए सीखना का तात्पर्य शिक्षक द्वारा ज्ञान प्रदान करना नहीं अपितु ज्ञान के प्रति लगाव पैदा करना है। अतः जीवन पर्यंत सीखना को हम शिक्षा के चार स्तंभों के ऊपर की कड़ी समझ सकते हैं जिस पर कोई भवन समान व संतुलित रूप से टिका रहता है। जिस प्रकार हम किसी भवन के चार स्तंभों में से किसी एक को कम या अधिक महत्व नहीं दे सकते उसी प्रकार सीखने (शिक्षा) के चार स्तंभ भी समान रूप से महत्वपूर्ण और अंतर्संबंधित है। ध्यातव्य है कि शिक्षा की इन स्तंभों का संबंध जीवन के किसी एक कालखंड से नहीं वरन संपूर्ण जीवन से है। अतः शिक्षा व्यवस्था को 'जीवनपर्यंत सीखने' के अवसर उपलब्ध कराने होंगे। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा की कुछ इसी प्रकार की अवधारणा प्रस्तुत की गई है।

10.8 अभ्यास के प्रश्न

1. शिक्षा के चार स्तम्भ समस्त विश्व की शिक्षा व्यवस्था को अनुप्राणित कराते है। कथन का तर्कपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत करिए।
2. डेलर्स आयोग और उसकी रिपोर्ट की विस्तृत विवरण दीजिए।
3. शिक्षा के चार स्तंभों की भारतीय ज्ञान परंपरा के संदर्भ में विवेचना कीजिए।

10.9 चर्चा के बिन्दु

1. डेलर्स रिपोर्ट में उल्लिखित शिक्षा के चारों स्तम्भों पर चर्चा कीजिए।

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. अपने लक्ष्यों से भटकी हुई शिक्षा जिम्मेदार नागरिकों की बजाय हिंसा का रास्ता अपनाने वाले आतंकवादी भी तैयार कर सकती है।
2. डॉ० कर्ण सिंह (सुपुत्र श्री महाराजा हरि सिंह, जम्मू और कश्मीर)
3. डेलर्स आयोग 1996 की रिपोर्ट के नामकरण का आधार फ्रांसीसी दंतकथाकार ल फोंटेन (La Fontaine) की कृति 'हलवाहा और उसके पुत्र' (The Ploughman and his Sons) है।
4. शिक्षा को इक्कीसवी सदी के सात विरोधाभासों का समाधान करना है ।
5. ज्ञान के विकास को नवाचार में रूपांतरित करते हुए नए व्यवसायों और रोजगारों के सृजन करना।
6. सहजीवन की शिक्षा के लिए मानव भूगोल, विदेशी भाषा व साहित्य को प्राथमिक स्तर से शुरू करना होगा।
7. एडगर फोरे (Edgar Faure) आयोग, 1972 की रिपोर्ट से लिया गया है।

10.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Delors, J. (1998). Learning: The treasure within. UNESCO.
2. Faure, E. (1972). Learning to be: The world of education today and tomorrow. UNESCO.
3. Dr. Karan Singh: https://in.one.un.org/page/about-dr-karan-singh/
4. India Skills Report 2021 https://indiaeducationforum.org/pdf/ISR-2021.pdf
5. Governmtnt of India (2020). The Constitution of India. Government of India Ministry of Law and Justice Legislative Department.
6. UNESCO. Future of Education. https://en.unesco.org/futuresofeducation/s

इकाई– 11 : शिक्षा का भविष्य विज्ञान

इकाई की संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 इकाई के उद्देश्य

11.3 भविष्य शिक्षा का अर्थ

11.4 भविष्य शिक्षा की आवश्यकता

11.5 भविष्य शिक्षा के उद्देश्य

11.6 भविष्य शिक्षा के कार्य

11.7 भविष्य के लिए विज्ञान शिक्षा

11.8 भविष्य की शिक्षा का महत्व

11.9 शिक्षा का भविष्य और भविष्य की शिक्षा

11.10 उच्च शिक्षा को भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित करना

11.11 सारांश

11.12 अभ्यास के प्रश्न

11.13 चर्चा के बिन्दु

11.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

भविष्य शिक्षा के स्वरूप को समझने के लिए 'शिक्षा' के स्वरूप को समझना अनिवार्य है। शिक्षा विकासात्मक प्रक्रिया है अतः शिक्षा का प्रमुख कार्य बालक को एक बेहतर कल के लिए तैयार करना है। शिक्षा का उद्देश्य ही बालक या समाज के भविष्य का निर्माण करना है। मैक्समुलर के दृष्टिकोण से शिक्षा विकासमान प्रतिक्षण परिणामी विश्व के लिए व्यक्तियों के निर्माण करने के उत्तरदायित्व को वहन करती है।

यूनेस्को ने भी **"लर्निंग टू बी'** को शिक्षा का आधार स्तम्भ कहा है। अर्थात शिक्षा का कार्य व्यक्ति और समाज को बनाना है। यदि शिक्षा का कार्य व्यक्ति को बनाना है तो यह निर्माण की प्रक्रिया बिना दृष्टि के सम्भव नहीं हो सकती है। इस प्रकार 'भविष्य बोध' या 'दृष्टि' शिक्षा का अंतर्निहित भाव है और शिक्षा को भविष्योन्मुख बनाता है। भविष्य की कल्पना के आधार पर ही शिक्षा के उद्देश्य और विधियां निश्चित की जाती हैं अतः शिक्षा का स्वरुप ही भविष्य मूलक है।

शिक्षा, समाज को गम्भीरता से सोचने के लिए विवश करता है कि वर्तमान शिक्षा का स्वरूप कैसा हो ? इसी दृष्टिकोण से डॉ0 सतीश चंद्र सेठ के विचारों को भी उद्धरित करना समीचीन है, "वह शिक्षा ही क्या है जो भारत की युवा पीढ़ी को एक नए वांछनीय भविष्य की कल्पना करने और प्राप्त करने के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण प्रदान नहीं करती।" अर्थात सभी दृष्टिकोणों से शिक्षा को भविष्य से अलग नहीं किया जा सकता।

यदि हम भविष्य विज्ञान का इतिहास उठाकर देखें तो यही परिलक्षित होता है कि भविष्य विज्ञान के अंतर्गत ही शिक्षा से जुड़ी समस्याओं का अध्ययन होता रहा है। जर्नल आफ टीचर एजुकेशन में ऐसे अध्ययनों का उल्लेख मिलता है जिनसे भविष्य विज्ञान की विषय वस्तु भी स्पष्ट होती है।

बर्डिन ने भविष्य के संदर्भ में अनुदेशात्मक नियोजन पर विचार दिए हैं। मेकडिनियल ने पाठ्यक्रम की समस्याओं का अध्ययन किया है। डाउ ने फ्यूचर स्कूल की आवश्यक्ता और परम्परागत स्कूलों की स्थिति एवं अंतरिम व्यवस्था पर विशद विवेचना प्रस्तुत की है। कापलान ने अध्यापक प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में 'भविष्य विज्ञान' को स्थान देने का सुझाव दिया गया है। इस प्रकार भविष्य विज्ञान ही शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं का वस्तुनिष्ठ और वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता रहा है।

पिछले दशकों में 'भविष्य शिक्षा' भविष्य विज्ञान की परिधि से निकलकर स्वयमेव विकसित अनुशासन का स्वरूप लेने का प्रयास करती रही है। सन् 1979 से ही पाठ्यक्रम परीक्षा प्रणाली, शैक्षिक प्रशासन शिक्षण व्यवसाय वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा के विषय में पूर्वानुमान और पूर्वकथन के प्रयास होते रहे हैं। पूर्वानुमान का निर्धारित समय सन् 1990 से सन् 2000 तक का रहा है। भविष्य कथन के लिए डेल्फी तकनीकी का प्रचलन रहा है। कही–कही डाक्यूमेन्टरी स्टडी और एक्सपैक्टेशन सर्वे के प्रयोग भी होते रहे हैं। लेकिन प्रायः अध्ययनों का आधार पाश्चात्य धरातल ही रहा है। जहां तक भारतवर्ष में 'भविष्य शिक्षा' के सुव्यवस्थित प्रारम्भ का प्रश्न है "डा0 सतीश चन्द्र सेठ" भविष्य शिक्षा के जनक माने जाते हैं। जैसा कि भविष्य विज्ञान का इतिहास दर्शाता है भारतवर्ष में भविष्य शिक्षा की आयु करीब दो दशक की है और इसका उत्तरोत्तर विकास भी हो रहा है। प्रस्तुत इकाई में भविष्य शिक्षा के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा करेंगे।

11.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. भविष्य शिक्षा को समझ सकेंगे।
2. भविष्य शिक्षा की उपयोगिता से अवगत हो सकेंगे।
3. भविष्य शिक्षा के महत्व पर चर्चा कर सकेंगे।
4. भविष्य शिक्षा के कार्यों की विवेचना प्रस्तुत कर सकेंगे।
5. भविष्य शिक्षा की आवश्यकता को वर्तमान समय के साथ समन्वय स्थापित कर सकेंगे।

11.3 भविष्य शिक्षा का अर्थ

भविष्य अध्ययन से सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण करने पर भविष्य शिक्षा का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। राबर्ट जुंक भविष्य विज्ञान को "नियोजन का विज्ञान" ही मानते है क्योंकि नियोजन की प्रक्रिया में भी भविष्य के सम्बन्ध में विचार किया जाता हैं भविष्य विज्ञान और नियोजन दोनों में ही फलानुमान और निदान निहित है लेकिन नियोजन का क्षेत्र भविष्य विज्ञान से थोड़ा अधिक विस्तृत है। नियोजन में फलानुमान और निदान के आधार पर विकास की दिशा को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक सुझाव भी दिए जाते है।

इस प्रकार जुंक के दृष्टिकोणों से यही निहितार्थ निकलता है कि, **"भविष्य शिक्षा"** भविष्यमूलक शैक्षिक नियोजन की प्रक्रिया है।

भविष्य मूलक शैक्षिक नियोजन की प्रक्रिया में फलानुमान और निदान करने के लिए भविष्य की परिकल्पना, पूर्वानुमान और पूर्वकथन के साथ–साथ वर्तमान स्थिति का विश्लेषण सम्मिलित है। अतः "भविष्य शिक्षा" से हमारा तात्पर्य वह शिक्षा है जो वर्तमान समाज के तीव्रगामी परिवर्तनों का बोध और गतिशील तथा जटिल भावी सामाजिक जीवन का उचित प्रत्यक्षीकरण कराने में समर्थ हो।

दूसरे शब्दों में, **"भविष्य शिक्षा" वह शिक्षा है जो सामाजिक भविष्य के विभिन्न निर्धारक क्षेत्रों के विषय में भविष्य कथन करती है और भविष्य में होने वाली पूर्वानुमानित जटिलताओं के संदर्भ में वांछनीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त साधन और विधियां प्रदान करती है।"**

इस प्रकार भविष्य शिक्षा भविष्य की चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करती है भविष्य शिक्षा का सम्बन्ध भविष्य की प्राविधिक आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करने तथा वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर भविष्य के ग्रहण किए गए संकेतों की वैज्ञानिक विवेचना एवं विश्लेषण करना है। सही अर्थों में भविष्य शिक्षा का स्वरूप अंतर्विषयी है क्योंकि इसका विषय क्षेत्र ही समग्र है। भविष्य विज्ञान पर आधारित होने के कारण भविष्य शिक्षा एक अंतर्विषयी अनुशासन और प्रवृत्ति के रूप में विकसित हो रही है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. भविष्य की शिक्षा से आपका क्या अभिप्राय है ?

.....

.....

2. भविष्य की शिक्षा को परिभाषित कीजिए।

.....

.....

3. भविष्य शिक्षा का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

.....

.....

11.4 भविष्य शिक्षा की आवश्यकता

शिक्षा एक विकासात्मक प्रक्रिया है। शिक्षा का कार्य मनुष्य का निर्माण और विकास करना है। इस प्रक्रिया में वर्तमान ज्ञान पुराने और अनुपयोगी ज्ञान और अनुभव बहुत सहायक नहीं हो सकते। आज हमारी युवा पीढ़ी शिक्षा प्राप्ति की लम्बी अवधि और अनुभवों से गुजरने के पश्चात डिग्री और प्रमाण पत्र तो प्राप्त कर लेती है लेकिन अन्त में निष्कर्ष प्राप्त होता है कि वर्षों के शैक्षिक अनुभव और ज्ञान निरर्थक और अप्रासंगिक सिद्ध हो रहे हैं।

हमारी शिक्षा में अनुभव और ज्ञान प्रदान करते समय भविष्य के जटिल समाज की आवश्यकता, नयी पीढ़ी और समाज की अपेक्षाओं को ध्यान में नहीं रखा गया है ऐसी स्थिति में भारत में शिक्षा के मानव संसाधन विकास उपागम को कैसे स्वीकार किया जा सकता है, जबकि हमारी शिक्षा में भविष्य की दृष्टि है ही नहीं।

डॉ0 सतीश चन्द्र सेठ एक सार्थक प्रश्न उठाते हैं, कि क्या हमारे शैक्षिक कार्यक्रम हमारे विद्यार्थियों और बुद्धिजीवियों को प्रेरित करते हैं कि : "वे भविष्य को गहरायी से खोज सकें, प्रौद्योगिकी के निहितार्थों को समझ सकें, वे सीख सके कि दूरदर्शिता और पूर्वानुमान पर आधारित प्रबन्धन के द्वारा समाज की पुनः रूप रेखा कैसे बनाई जा सकती है। प्रत्युत्तर में तो यही कहा जा सकता है कि हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली भविष्य शिक्षा की आवश्यकता को अपरिहार्य रूप से इंगित करती है। हमारे देश में यदि शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शैक्षिक योजनाओं को भविष्योन्मुख बनाया जाता है, तात्पर्य यह है कि शैक्षिक नियोजन करते समय यदि जटिल सामाजिक सम्बन्धों, नई पीढ़ी की आवश्यकताओं, भविष्य में रोजगार के अवसर तथा मूल्य व्यवस्था को ध्यान में

रखा जाता है तो यह शिक्षा देश के भावी कर्णधारों के निर्माण में सकारात्मक भूमिका निभा सकती है। जनतांत्रिक राष्ट्र भारत वर्ष में सहभागिता युक्त जनतंत्र समाजवाद, धर्मनिरपेक्षवाद, मानवतावाद आदि मूल्यों की रक्षा के लिए 'भविष्य शिक्षा' एक अनिवार्य नैतिक आवश्यकता मानी जा सकती है।

11.5 भविष्य शिक्षा के उद्देश्य

भविष्य शिक्षा को सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए विभिन्न शोधों के निष्कर्षों के आधार पर भविष्य शिक्षा के उद्देश्यों को ज्ञान, बोध, व्यवहार, दृष्टिकोण आदि वर्गों के अंतर्गत चिन्हित किया गया है जो निम्नवत है–

1. ज्ञान

(क) भविष्य अध्ययन या भविष्य शिक्षा का ज्ञान, अर्थ, परिभाषाओं और विशेषताओं से परिचित कराना।

(ख) भविष्य अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रों का ज्ञान प्रदान करना।

(ग) भविष्य अध्ययन की विभिन्न संख्यात्मक व गुणात्मक विधियों का ज्ञान प्रदान करना।

2. बोध

(क) विभिन्न क्षेत्रों में जैसे कि पर्यावरण, जनसंख्या, भौतिक और मानवीय संसाधन, शिक्षा, ऊर्जा, स्वास्थ्य, भोजन, अर्थ व्यवस्था मनोविज्ञान, संचार, परिवहन, सूचना प्रौद्योगिकी, खनिज संसाधन अंतरिक्ष अध्ययन आदि के संदर्भ में भविष्य अध्ययन की आवश्यक्ता और साथ को समझने की क्षमता प्रदान करना।

(ख) भविष्य के गहन और सूक्ष्म अध्ययन या परीक्षण की विभिन्न विधियों (विधियों के अर्थ और सीमांकन) का बोध कराना।

3. व्यवहार

(क) भविष्य अध्ययन से सम्बन्धित अभ्यासों के माध्यम से विद्यार्थियों में विस्तृत चिंतन की क्षमता उत्पन्न करना।

(ख) भविष्य अध्ययन की विभिन्न विधियों के माध्यम से भविष्य सम्बन्धी अभ्यासों के लिए अनुभव प्रदान करना।

(ग) भविष्य कथन या भविष्य वाणी के आधार पर सम्भावित योजनाओं के लिए आवश्यक कुशलता का विकास करना।

4. दृष्टिकोण और चेतना

(क) भविष्योन्मुख विचारों, चिंतन और अभ्यासों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोणों का विकास करना।

(ख) केवल भविष्य ही नहीं, बल्कि वांछित भविष्य के प्रति चेतना उत्पन्न करना।

11.6 भविष्य शिक्षा के कार्य

निर्धारित उद्देश्यों के आधार पर 'भविष्य शिक्षा' निम्नलिखित कार्य करती है–

1. भविष्य में आने वाले परिवर्तनों के प्रति एक चेतना प्रदान करती है।
2. भविष्य में तकनीकी विकास के फलस्वरूप सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप को समझने की क्षमता प्रदान करती है।

3. भविष्य के समाज के आर्थिक राजनैतिक भौगोलिक, जैविक, धार्मिक, वाणिज्य–व्यापार, प्रौद्योगिक, शैक्षिक तथा मानवीय पक्षों के लिए यह प्रत्यावर्तित दृश्य प्रस्तुत करती है।
4. समाज के वांछित भविष्य के लिए यह संदर्भित नियोजन की भूमिका स्पष्ट करती है।
5. भविष्य शिक्षा दीर्घ कालीन योजनाओं का मार्ग प्रशस्त करती है।
6. यह शिक्षा के भविष्योन्मुख स्वरूप को अधिक स्पष्ट और चिन्हित करती है।
7. यह शिक्षा के संदर्भ में प्रौद्योगिक विकास से सम्बन्धित भविष्यवाणी और मूल्यांकन करती है।
8. यह भविष्योन्मुख पाठ्यक्रम की योजना तैयार करती है।
9. भविष्य शिक्षा के लिए उपयुक्त सामग्री प्रस्तुत करती है।
10. भविष्य शिक्षा ज्ञान के सभी विषय क्षेत्रों के परिवर्तित स्वरूप का प्रयोग सामाजिक और मानवीय विकास के लिए करती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

4. भविष्य शिक्षा की आवश्यकताओं का वर्णन कीजिए।

.....

.....

5. भविष्य शिक्षा के किन्हीं तीन उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

6. भविष्य शिक्षा के कार्यों पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

11.7 भविष्य के लिए विज्ञान शिक्षा

आर0वी0एम0 के अनुसार कक्षा स्तर पर विज्ञान को कैसे अधिक व्यावहारिक बनाया जा सकता है। हमारे देश की स्कूली व्यवस्था में विज्ञान पाठ्यक्रम का एक प्रमुख हिस्सा है। हमारी स्कूली प्रणाली में विज्ञान का उद्देश्य प्राकृतिक चीजों और प्राकृतिक घटनाओं के बारे में जानकारी प्रदान करना है। इस प्रणाली उस विज्ञान सामग्री का चयन करते हैं, उन्हें उचित रूप से व्यवस्थित करते हैं और अन्य सामान्य शिक्षा के उद्देश्य के साथ उनका सामंजस्य स्थापित करते हैं। इसलिए विज्ञान का अर्थ है सामान्य शिक्षा के उद्देश्य से अपनाया गया स्कूली विज्ञान या शैक्षिक विज्ञान।

आधुनिक स्कूलों में अधिकांश विद्यार्थियों को सामान्य या व्यावसायिक प्रकृति की विज्ञान शिक्षा प्रदान की जाती है। मौजूदा शिक्षा प्रणाली बड़े पैमाने पर स्नातक स्तर के छात्र तैयार करने की ओर झुक रही है। विज्ञान प्रत्येक बच्चे की प्राथमिक शिक्षा का एक प्रमुख घटक होना चाहिए और इसमें भौतिक और जैविक विज्ञान दोनों के विषय शामिल होने चाहिए, जिन्हें व्यावहारिक जांच और पूछताछ पर आधारित होना चाहिए। प्राथमिक स्तर

पर युवा शिक्षार्थी जिन गतिविधियों में संलिप्त होते हैं उसमें पर्याप्त विविधता का अभाव है। विज्ञान का अध्ययन सदैव प्रयोग एवं अवलोकन द्वारा करना आवश्यक है। प्राथमिक विज्ञान महत्वपूर्ण है क्योंकि यह अपने प्राकृतिक वातावरण के बारे में बच्चे की सहज जिज्ञासा विकसित करने के लिए एक रूपरेखा प्रदान करता है।

उत्साह की भावना :

युवाओं के लिए विज्ञान शिक्षण न केवल उन्हें भौतिक दुनिया के बारे में ज्ञान देना है क्योंकि यह रूचिकर और महत्वपूर्ण दोनों है, बल्कि वैज्ञानिक ज्ञान जो उत्साह लाता है उसे भी व्यक्त करता है। विज्ञान अब ज्ञान के एक समूह के रूप में प्रस्तुत होता है जो मूल्य–मुक्त, उद्देश्यपूर्ण से अलग है। युवा लोग किसी भी व्यापक सुसंगतता के अपर्याप्त संकेत के साथ तथ्यों की एक श्रृंखला सीखते हैं।

विज्ञान शिक्षण अधिक व्यावहारिक एवं क्रियाशील होना चाहिए। विज्ञान कानून या साहित्य के पाठ्यक्रम से भिन्न है और केवल किताबें पढ़ने से इसकी सच्चाई पर महारत हासिल नहीं किया जा सकती। प्रयोग एवं अवलोकन द्वारा अध्ययन करना सदैव आवश्यक है। छात्रों कों व्यावहारिक गतिविधियाँ करना चाहियें जो छात्रों को अपने स्वयं के सीखने में अधिक सक्रिय और स्वतंत्र भूमिका निभाने की अनुमति दें। व्यावहारिक गतिविधियाँ मूर्त परियोजनाओं के माध्यम से मजबूत आत्म–छवियों को बढ़ावा देती हैं।

पाठ्यक्रम की प्रासंगिकता :

विज्ञान पाठ्यक्रम की सामग्री जिसे हम अपने छोटे बच्चों को प्रदान करते हैं, जिस प्रकार की समझ वे हासिल करते हैं, वह उन्हें रोजमर्रा के संदर्भ में वैज्ञानिक जानकारी से प्रभावी ढंग से और आत्मविश्वास से निपटने के लिए सक्षम नहीं बनाती है। युवा बच्चों को उन तरीकों को समझने में सक्षम होने की आवश्यकता है जिनके द्वारा विज्ञान वैज्ञानिकों द्वारा किए गए दावों के प्रमाण प्राप्त करता है।

विज्ञान के बारे में विचारों की शिक्षा को कोई महत्व नहीं दिया गया है। विज्ञान के बारे में विचारों के शिक्षण पर अधिक जोर देने के लिए व्याख्यात्मक कहानियों की एक श्रृंखला प्रस्तुत करना आवश्यक है। विचारों को संप्रेषित करने और विचारों को सुसंगत, यादगार और सार्थक बनाने में कथा के मूल्य पर जोर दिया जाना चाहिए।

खेल शक्तिशाली शिक्षण उपकरण हैं, जब उन्हें अन्य खोजपूर्ण, व्यावहारिक गतिविधियों और एक व्याख्याता की तुलना में एक प्रशिक्षक के रूप में कार्य करने वाले शिक्षक के चल रहे निर्देश के साथ जोड़ा जाता है।विज्ञान शिक्षा को मूल वैज्ञानिक अवधारणाओं को पढ़ाने पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है और उतना ही महत्वपूर्ण रूप से, उन विचारों को उन घटनाओं से जोड़ना है, जिन्हें छात्र अपने रोजमर्रा के जीवन में देखते हैं। विज्ञान की शिक्षा विज्ञान के भविष्य और वैश्विक ज्ञान समाज के निरंतर विकास के लिए मौलिक है।

11.8 भविष्य की शिक्षा का महत्व

गांधी जी सभी आवश्यक ज्ञान–कौशल, मानवीय मूल्य और चरित्र निर्माण की क्षमता को बुनियादी शिक्षा के अंतर्गत समाहित करते थे, तब वे भारत की परंपरागत संवाद–संस्कृति पर अपना विश्वास प्रगट करते थे। गांधीजी ने 1937 में पहली बार औपचारिक रूप से शिक्षा की एक अभिनव व्यवस्था प्रस्तुत की थी। इसे बेसिक शिक्षा या बुनियादी शिक्षा के नाम से जाना जाता है। आचार्य विनोबा भावे इसे **'नित्य नई तालीम'** कहते थे। नित्य शब्द के जोड़े जाने से यह स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा की गतिशीलता ही उसकी प्राणदायिनी शक्ति है : **'नित्य नई तालीम का मतलब है : जो कल थी, वह आज नहीं है और जो आज है, वह कल नहीं रहेगी,** जैसे नदी का पानी। वैसे ही रोज के अनुभव के आधार पर जो शिक्षा नित्य बदलती रहती है, वह है नित्य–नई तालीम'।

बदलाव और विकास मानव सभ्यता की एक नैसर्गिक प्रक्रिया है, जिसका मूल आधार मनुष्य की प्रकृति को जानने, समझने और उसका उपयोग करने की प्रवृत्ति है। इसी से मानवता का ज्ञान भंडार बढ़ता जाता है। समाज जो आज है, कल बदल चुका होगा। सच्ची तालीम या शिक्षा, वही है जो व्यक्ति को व्यक्तित्व प्रदान कर सके और वह सामाजिक संरचना को नया आयाम देने में सक्षम हो। समय के साथ ज्ञानार्जन की प्रक्रिया

का वर्तमान स्वरूप–शिक्षा व्यवस्था और नीतियां हमारे समक्ष उपस्थित हैं, इसकी गतिशीलता परिवर्तन को दिशा देती है। मानव जीवन को सार्थक, सहज, सम्यक और गरिमापूर्ण बनाने में शिक्षा के प्रचार–प्रसार तथा गुणवत्ता संवर्धन का कोई अन्य विकल्प नहीं है।

यूनेस्को ने 1996 में इक्कीसवीं सदी के शिक्षा स्वरूप के लिए जो प्रतिवेदन तैयार कराया था, उसमें शिक्षा को 'आवश्यक अलभ्य' लक्ष्य कहा गया था। शिक्षा हर समस्या का समाधान नहीं है, लेकिन मनुष्य सबसे पहले उसी में हर समस्या का समाधान ढूंढ़ता है। वह शिक्षा ही है, जो संस्कारों को गढ़ती है, जिन्हें पीढ़ी–दर–पीढ़ी संवारा जाता है, मानव के भविष्य को सुनहरा बनाने के प्रयासों में यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण कड़ी है। जब मनुष्य की तार्किक क्षमता और संवेदनात्मक समझ बढ़ती है, तभी वह दास प्रथा, जाति और नस्लभेद, रंगभेद जैसे अस्वीकार्य प्रचलनों से अपने को मुक्त कर पाता है।

इस पृष्ठभूमि को समझने के लिए अत्यंत सार्थक और व्यावहारिक उदाहरण हैं महात्मा गांधी के शैक्षिक विचार, और उनके द्वारा प्रतिपादित शिक्षा की प्रणाली, जिसे पश्चिमी सभ्यता की चमक–दमक में लगभग पूरी तरह दरकिनार कर दिया गया था। वास्तव में उनका चिंतन भारत की उनकी गहरी समझ पर आधारित था।

स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि शिक्षा मनुष्य के अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति हैं शिक्षा का उद्देश्य, स्वरूप और सारी प्रक्रिया व्यक्ति के सर्वोत्तम गुणों को प्रस्फुटित करने का प्रयास करती रहे। यह तभी होगा जब व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक क्षमताओं का सहजता से विकास होता रहा हो। वह शिक्षा तो अपूर्ण ही मानी जाएगी, जिसमें बच्चों की आध्यात्मिक, बौद्धिक और शारीरिक शक्तियों के सामंजस्य–युक्त विकास पर समुचित अनुपात में ध्यान न दिया जा रहा हो।

इस समय सारा ध्यान केवल पाठ्य पुस्तकों के अध्याय याद करने और परीक्षा में उसी को लिख कर उत्तर देने और अधिकाधिक अंक प्राप्त करने तक सीमित हो गया है। देश के समक्ष बड़ी चुनौती यही है कि इसे कैसे बदला जाय! यह समस्या नई नहीं है, यह गांधीजी के समय में भी थी। आज वह पहले से बड़े परिमाण में नई शिक्षा नीति का क्रियान्वयन करने वालों के समक्ष उपस्थित है। बुनियादी तालीम के पूर्ण मंतव्य को सभी पूरी तरह 1937 में नहीं समझ सके थे और आज तो स्थिति यह है कि अनेक लोग उसे तकली तक सीमित मान लेते हैं, या केवल ग्रामीण इलाकों के लिए गांधीजी की एक योजना मान कर बदली हुई परिस्थिति के लिए पूरी तरह अनुपयुक्त करार दे देते हैं।

11.9 शिक्षा का भविष्य और भविष्य की शिक्षा

नई शिक्षा नीति 2020 का उद्देश्य ज्ञान आधारित जीवंत समाज का विकास रखा गया है जिसे प्राप्त करने के लिए विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों को पर्याप्त लचीला बनाया जाएगा। यह भारतीय शिक्षा पद्धति को राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के अनुरूप संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था को लोकतांत्रिक बनाने के प्रयास की अभिव्यक्ति है।

भारत सरकार द्वारा 21वीं सदी की पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आने के बाद सबसे पहले उसके सम्यक् मूल्यांकन की चुनौती है। इस शिक्षा नीति में जो अंतिम बात है वह हमारे लिए सर्वाधिक उपयोगी है। इसके अंतर्गत भारतीय भाषाओं की जानकारी, योग्यता और प्रवीणता को भी रोजगार की अर्हता में जोड़ा जाएगा। यदि इस मुद्दे को ठीक से लागू किया जाए तो भारतीय भाषाएं लहलहा उठेंगी। उनके विकास की गति को पंख लग जाएंगे।

इस शिक्षा नीति के प्रारूप को अंतिम रूप देने के पूर्व इसमें 2 लाख सुझावों का समावेश किया गया है जिसे 2.5 लाख ग्राम पंचायतों, 6600 ब्लाकों और 676 जिलों से प्राप्त किया गया था। इसे वर्तमान सदी की आशा एवं आकांक्षा के अनुरूप तैयार किया गया है।

अब छात्रों को बीच में ही नामांकन और पाठ्यक्रम बदलने की छूट दे दी गई है। फलतः यदि कोई छात्र अपनी योग्यता के विपरीत किसी गलत विषय का चयन कर लेता है तो वह अपनी गलती सुधार सकता है। इसमें पहली बार शिक्षा के माध्यम के रूप में पांचवीं तक मातृभाषा को रखा गया है और यदि संभव हो तो

उसे आठवीं तक जारी रखने का आग्रह किया गया है। इससे भारतीय बच्चों के मानवाधिकारों की रक्षा हो सकेगी।

भारत सरकार ने नई शिक्षा नीति को लोकोपयोगी बनाते हुए छठी कक्षा से ही व्यावसायिक शिक्षा पर जोर दिया है। चूंकि शिक्षा और रोजगार दोनों एक दूसरे के पूरक हैं अतः नई शिक्षा नीति में अच्छी शिक्षा के साथ बेहतर भविष्य की कल्पना को भी साकार करने का प्रयास किया गया है। हमारे प्रधानमंत्री भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिए जिस कौशल विकास की चर्चा करते हैं वह इसका प्रमाण है। इसमें छात्रों के मूल्यांकन की प्रक्रिया में भी आमूल–चूक परिवर्तन किया गया है। अब उनके योगात्मक आकलन के बजाय रचनात्मक आकलन पर जोर दिया जाएगा जिससे उनमें निहित संभावनाओं को सही दिशा दी जा सके। इसमें उच्चस्तरीय शोध को बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन की स्थापना की व्यवस्था की गई है। साथ ही शिक्षण क्षेत्र में नई प्रौद्योगिकी के प्रयोग पर जोर दिया जा रहा है। इसके लिए राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी मंच की स्थापना की जाएगी।

आज कोरोना संकट ने प्रौद्योगिकी एवं डिजिटल आधारित शिक्षा पद्धति अपनाने के लिए विवश कर दिया है। हम भलीभांति जानते हैं कि कोरोना कहर से शिक्षा क्षेत्र सर्वाधिक प्रभावित हुआ है, जिसके चलते करोड़ों छात्रों की शिक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। हमें अधिकांश सत्रों की परीक्षाएं रद्द करनी पड़ी हैं और शेष के विकल्प ढूंढने पड़ रहे हैं। बावजूद इसके एक प्राध्यापक होने के नाते हम अपने उत्तरदायित्वों का पूरी निष्ठा से पालन करते हुए तकनीक की सहायता से छात्रों को शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग,, गूगल मीट, गूगल क्लासरूम, जूम, ई–पाठशाला, यूट्यूब, रिकॉर्डिंग एवं स्मार्ट फोन आदि माध्यमों से हम विद्यार्थियों को पढ़ा रहे हैं। उनकी कक्षाएं ले रहे हैं। हम आंतरिक मूल्यांकन का कार्य भी ऑनलाइन ही कर रहे हैं। हम ई–कंटेंट अथवा अध्ययन सामग्री उन तक पहुंचा रहे हैं।

ऑनलाइन शिक्षण सामग्री अधिक मात्रा में कैसे उपलब्ध हो, ऑनलाइन परीक्षाएं कैसे हों, ऑनलाइन पाठ्यक्रम कैसे पढ़ाए जाएं, इस दृष्टि से बड़े परिवर्तन होने की उम्मीद है। लॉकडाउन की स्थिति में हम सभी अपने घरों में बैठे हुए हैं। लेकिन हम निष्क्रिय नहीं बैठे हैं बल्कि पहले की ही तरह सक्रिय भूमिका निभाते हुए अपने कार्यों में लगे हुए हैं। वर्तमान विश्व में ज्ञान–विज्ञान के जो नवीनतम साधन और उपलब्धियां हैं, उस संदर्भ में छात्रों को अद्यतन रखना बेहद आवश्यक है। इसलिए हम सब तकनीकी साधनों के माध्यम से कार्य कर रहे हैं। हमारे मार्ग में चाहे किसी भी प्रकार की बॉधा आए लेकिन हमें रुकना नहीं है, थकना नहीं है बस राष्ट्र–विजय की कामना लेकर आगे ही बढ़ते जाना है।

11.10 उच्च शिक्षा को भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप विकसित करना

शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके माध्यम से देश की बाकी व्यवस्थाएं बनती हैं और शिक्षा देने वालों पर इसकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी भी होती है। इसलिए भविष्य की बागडोर किसके हाथ में होगी यह नीतियों से तय करना बहुत ही जरूरी है। विश्व के अधिकांश देशों में उच्च शिक्षा प्रदान करने का मानक पी.एचडी. को माना गया है। यह शोध करके प्राप्त की गई डिग्री है। इसकी डिग्री केवल उपसर्ग नहीं है, बल्कि यह सबसे उच्च शैक्षिक उपलब्धि है। विश्व के हर विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाले शिक्षक अपनी उम्र का बड़ा हिस्सा किसी विषय पर शोध करने में लगाते हैं, जिनके नतीजों से उन्हें डिग्री एवं भविष्य की पीढियों को तैयार करने और विषय की समझदारी की मान्यता मिलती है।

शिक्षण और शोध एक दूसरे का अहम अंग हैं। इन्हें विश्व के नामी विश्वविद्यालयों में एक साथ जोड़ कर ही देखा जाता है, परंतु यह निराशाजनक है कि भारत शिक्षण के साथ शोध में भी पिछड़ा रह गया है। शिक्षकों का शिक्षा देने की कला में माहिर होना बहुत जरूरी है। इंडिया स्किल्स रिपोर्ट के 2021 में जारी हुए आठवें संस्करण के अनुसार केवल 45.9 प्रतिशत स्नातक ही रोजगार योग्य हैं। इस वर्ष जारी किए गए एक संबंधित सूचकांक में एक भी भारतीय संस्थान श्रेष्ठ 100 में अपनी जगह नहीं बना पाया। इससे भारत की शिक्षण प्रणाली पर फिर सवाल उठ गए जिसका जिम्मेदार बहुत हद तक शिक्षा और उद्योग के बीच एकीकरण की कमी है। परंतु पी.एचडी. की अनिवार्यता को खत्म करने के मकसद को समझने की बजाय बुद्धिजीवी नई

बहस में उलझते दिख रहे हैं। वैसे यदि इसे हम विश्वस्तरीय नजरिये से समझेंगे तो पाएंगे कि विश्व के सभी बड़े विश्वविद्यालयों में इसी तरह के प्रावधान पहले से हैं।

यहां भारत को विश्व के दो सफल माडल– जर्मनी और जापान से सबक लेना चाहिए। जर्मनी का शिक्षा कार्यक्रम उसके निर्माण कौशल का एक विशेष हिस्सा है। उद्योग की आवश्यकताओं के साथ छात्र कौशल के मिलान में जापान की स्कूल प्रणाली एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में इसी तरह की व्यवस्था को विकसित करने की जरूरत है। महामारी के बाद भारत की अर्थव्यवस्था को बढ़ाने के लिए नौकरी बाजार ऐसे कौशल की मांग करेगा जो वर्तमान की उच्च शिक्षा प्रदान नहीं कर रही है।

भारतीय शिक्षा जगत केवल प्रकाशनों पर केंद्रित है और शायद ही कोई उत्पाद के व्यावसायीकरण, पेटेंट कराने या इसे उत्पादन स्तर तक ले जाने पर ध्यान केंद्रित करता है। गुणवत्ता या उत्कृष्टता के बजाय मात्रा पर अधिकांश भारतीय शोधकर्ताओं का मौलिक महत्व भारतीय विज्ञान की विफलता का एक प्रमुख कारक है। एक अन्य आंकड़े को देखेंगे तो समझ पाएंगे कि भारत में पिछले एक दशक के दौरान यहां के 579 मेडिकल कालेजों में से लगभग 332 ने एक भी शोध लेख प्रकाशित नहीं किया है। इसी तरह के अनेक आंकड़ों से आप भारत की आविष्कारों एवं शोध में बदतर होती परिस्थितियों को समझ पाएंगे। ऐसे में देश की उच्च शिक्षा में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

7. भविष्य के लिए विज्ञान शिक्षा का महत्व क्या है?

.....

.....

8. शिक्षा का भविष्य और भविष्य की शिक्षा के बारे में विवेचना कीजिए।

.....

.....

9. उच्च शिक्षा को भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरोध कैसे विकसित करेंगे?

.....

.....

11.11 सारांश

भविष्य की शिैक्षा में तकनीक का हस्तक्षेप बढ़ेगा और अनेक अनजाने तथा अनदेखे विषय अध्ययन के क्षेत्र में आएंगे। बावजूद इसके हमें भारतीय और पाश्चात्य, परंपरागत एवं तकनीक आधारित शिक्षा पद्धति के बीच संतुलन बनाकर अपनी शिक्षा व्यवस्था को लगातार परिष्कृत करना होगा। वर्तमान सदी इतिहास की सबसे अनिश्चित तथा चुनौतीपूर्ण परिवर्तनों की सदी है। अतः भविष्य की अनजानी चुनौतियों को ध्यान में रखकर हमें स्वयं को तैयार करना होगा। आने वाले समय में केवल एक विषय के ज्ञान से हमारा भला नहीं हो सकता है। अतः हमें हर विषय की अद्यतन जानकारी को शिक्षा का अविच्छिन्न अंग बनाना होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारी वर्तमान सरकार ने इस दिशा में भविष्यवादी दृष्टि के अनुरूप सुधार तथा बदलाव करती रहेगी। ऐसा करके ही हम शिक्षा के भविष्य को सुरक्षित कर सकते हैं। साथ ही, भविष्य की शिक्षा को समयानुरूप बना सकते हैं।

11.12 अभ्यास के प्रश्न

1. भविष्य की शिक्षा से आपका क्या अभिप्राय है? भविष्य की शिक्षा का वर्णन कीजिए।
2. भविष्य शिक्षा के कार्यों पर प्रकाश डालिए।
3. भविष्य के लिए विज्ञान शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालिए।

11.13 चर्चा के बिन्दु

1. भविष्य शिक्षा के अन्तर्गत आने वाले महत्वपूर्ण बिन्दुओं की चर्चा कीजिए।

11.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. भविष्य शिक्षा भविष्य की चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करती है भविष्य शिक्षा का सम्बन्ध भविष्य की प्राविधिक आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करने तथा वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर भविष्य के ग्रहण किए गए संकेतों की वैज्ञानिक विवेचना एवं विश्लेषण करना है। सही अर्थों में भविष्य शिक्षा का स्वरूप अंतर्विषयी है क्योंकि इसका विषय क्षेत्र ही समग्र है। भविष्य विज्ञान पर आधारित होने के कारण भविष्य शिक्षा एक अंतर्विषयी अनुशासन और प्रवृत्ति के रूप में विकसित हो रही है।

2. भविष्य शिक्षा" वह शिक्षा है जो सामाजिक भविष्य के विभिन्न निर्धारक क्षेत्रों के विषय में भविष्य कथन करती है और भविष्य में होने वाली पूर्वानुमानित जटिलताओं के संदर्भ में वांछनीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त साधन और विधियां प्रदान करती है।

3. भविष्य शिक्षा के स्वरूप को समझने के लिए 'शिक्षा' के स्वरूप को समझना अनिवार्य है। शिक्षा विकासात्मक प्रक्रिया है अतः शिक्षा का प्रमुख कार्य बालक को एक बेहतर कल के लिए तैयार करना है। शिक्षा का उद्देश्य ही बालक या समाज के भविष्य का निर्माण करना है। मैक्समुलर के दृष्टिकोण से शिक्षा विकासमान प्रतिक्षण परिणामी विश्व के लिए व्यक्तियों के निर्माण करने के उत्तरदायित्व को वहन करती है।

4. शिक्षा विकासात्मक प्रक्रिया है। शिक्षा का कार्य मनुष्य का निर्माण और विकास करना है। इस प्रक्रिया में वर्तमान ज्ञान पुराने और अनुपयोगी ज्ञान और अनुभव बहुत सहायक नहीं हो सकते। आज हमारी युवा पीढ़ी शिक्षा प्राप्ति की लम्बी अवधि और अनुभवों से गुजरने के पश्चात डिग्री और प्रमाण पत्र तो प्राप्त कर लेती है लेकिन अन्त में यही अनुभव करती है कि वर्षों के शैक्षिक अनुभव और ज्ञान निरर्थक और अप्रासंगिक सिद्ध हो रहे हैं।

5. भविष्य शिक्षा को सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए विभिन्न शोधों के निष्कर्षों के आधार पर भविष्य शिक्षा के उद्दश्यों को ज्ञान, बोध, व्यवहार, दृष्टिकोण आदि वर्गों के अंतर्गत चिन्हित किया गया है जैसेः–

- ज्ञान
- बोध
- व्यवहार

6.

- भविष्य में आने वाले परिवर्तनों के प्रति एक चेतना प्रदान करती है।
- भविष्य में तकनीकी विकास के फलस्वरूप सामाजिक परिवर्तन के स्वरूप को समझने की क्षमता प्रदान करती है।

- भविष्य के समाज के आर्थिक राजनैतिक भौगोलिक, जैविक, धार्मिक, वाणिज्य–व्यापार, प्रौद्योगिक, शैक्षिक तथा मानवीय पक्षों के लिए यह प्रत्यावर्तित दृश्य प्रस्तुत करती है।
- समाज के वांछित भविष्य के लिए यह संदर्भित नियोजन की भूमिका स्पष्ट करती है।
- भविष्य शिक्षा दीर्घ कालीन योजनाओं का मार्ग प्रशस्त करती है।

7. बदलाव और विकास मानव सभ्यता की एक नैसर्गिक प्रक्रिया है, जिसका मूल आधार मनुष्य की प्रकृति को जानने, समझने और उसका उपयोग करने की प्रवृत्ति है। इसी से मानवता का ज्ञान भंडार बढ़ता जाता है। समाज, जो आज है, कल बदल चुका होगा। सच्ची तालीम या शिक्षा, वही है जो व्यक्ति को व्यक्तित्व प्रदान कर सके और वह सामाजिक संरचना को नया कलेवर देने में सक्षम हो। समय के साथ ज्ञानार्जन की प्रक्रिया का वर्तमान स्वरूप– शिक्षा व्यवस्था और नीतियां– हमारे समक्ष उपस्थित हैं, इसकी गतिशीलता परिवर्तन को दिशा देती है। मानव जीवन को सार्थक, सहज, सम्यक और गरिमापूर्ण बनाने में शिक्षा के प्रचार–प्रसार तथा गुणवत्ता संवर्धन का कोई अन्य विकल्प नहीं है।

8. भारत सरकार द्वारा 21वीं सदी की पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आने के बाद सबसे पहले उसके सम्यक् मूल्यांकन की चुनौती है। इस शिक्षा नीति में जो अंतिम बात है वह हमारे लिए सर्वाधिक उपयोगी है। इसके अंतर्गत भारतीय भाषाओं की जानकारी, योग्यता और प्रवीणता को भी रोजगार की अर्हता में जोड़ा जाएगा। यदि यही मुद्दा ठीक से लागू किया जाए तो भारतीय भाषाएं लहलहा उठेंगी। उनके विकास की गति को पंख लग जाएंगे।

9. शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके जरिये देश की बाकी व्यवस्थाएं बनती हैं और शिक्षा देने वालों पर इसकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी भी होती है। इसलिए भविष्य की बागडोर किसके हाथ में होगी यह नीतियों से तय करना बहुत ही जरूरी है। विश्व के अधिकांश देशों में उच्च शिक्षा प्रदान करने का मानक पीएचडी को माना गया है। यह शोध करके प्राप्त की गई डिग्री है। इसकी डिग्री केवल उपसर्ग नहीं है, बल्कि यह सबसे उच्च शैक्षिक उपलब्धि है। विश्व के हर विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाले शिक्षक अपनी उम्र का बड़ा हिस्सा किसी विषय पर शोध करने में लगाते हैं, जिनके नतीजों से उन्हें डिग्री एवं भविष्य की पीढ़ियों को तैयार करने और विषय की समझदारी की मान्यता मिलती है।

11.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. ममता मल्होत्रा एवं महेश शर्मा (2011) : शिक्षा का अधिकार : प्रभात प्रकाशन दिल्ली।
2. दीनानाथ बत्रा (2014) : भारतीय शिक्षा का स्वरूप : प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली।
3. सौरभ अग्रवाल (2021) : शिक्षा के सिद्धांत : एस वी पी डी एप्लीकेशन हाउस नई दिल्ली।
4. डॉ मोहनलाल गुप्ता (2017) : भारत में पश्चिमी शिक्षा का प्रसार : सुभद्रा प्रकाशन जोधपुर।

इकाई– 12 : ज्ञान के निर्माता

इकाई की संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 इकाई के उद्देश्य

12.3 ज्ञान निर्माण का अर्थ

12.4 ज्ञान के प्रकार

12.5 ज्ञान का महत्व

12.6 ज्ञान निर्माण के सिद्धांत

12.7 ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया

12.8 ज्ञान निर्माण की विशेषताएं

12.9 ज्ञान का स्वरूप

12.10 कक्षा व्यवस्था में ज्ञान निर्माण का महत्व

12.11 शिक्षक द्वारा कक्षाओं में ज्ञान निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए रणनीतियों का उपयोग करना

12.12 शिक्षा के लिए ज्ञान निर्माण के भविष्य के निहितार्थ

12.13 ज्ञान के निर्माण के रूप में अधिगम, ज्ञान के अंतरण तथा ज्ञान प्राप्ति के रूप में अधिगम में अंतर

12.14 सारांश

12.15 अभ्यास के प्रश्न

12.16 चर्चा के बिन्दु

12.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.18 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.1 प्रस्तावना

ज्ञान सूचनाऐं हैं यानी किसी चीज के बारे में जितनी भी सूचनाऐं हो सकती हैं यदि वह हमारे पास है तो हम कह सकते हैं कि हमें उस चीज का पूर्ण ज्ञान है। यह सूचनाऐं हमें प्राप्त कैसे होती हैं? हमारी ज्ञानेंद्रियों से। फिर यह सूचनाऐं हमारे मस्तिष्क के पास आती हैं और मस्तिष्क इन सूचनाओं का प्रक्रमण करता है और उन पर प्रतिक्रिया देता है। साथ ही इस प्रकरण को ज्ञान संरचनाओं के रूप में व्यवस्थित करके एकत्रित कर लेता है। ताकि जब ऐसी ही स्थिति दोबारा आए तो उसे फिर से उसकी क्रिया ना करनी पड़े और वह पहले से ही उसका प्रयोग कर ले। मस्तिष्क द्वारा एकत्रित की गई इन्हीं व्यवस्थित ज्ञान संरचनाओं को पियाजे ने स्कीमा कहा था और इन्हीं ज्ञान संरचनाओं को व्यवस्थित करना इनका पुनर्गठन करना और इनमें वृद्धि करना ज्ञान निर्माण। प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत ज्ञान के निर्माण से सम्बन्धित बिन्दुओं एवं उनके विभिन्न पक्षो पर चर्चा करेंगे।

12.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप इस योग्य हो जाएंगे कि–

1. ज्ञान निर्माण के अर्थ एवं प्रकार से परिचित हो सकेंगे।
2. ज्ञान के महत्व एवं सिद्धांत को समझ सकेंगे।
3. ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया से अवगत हो सकेंगे।
4. ज्ञान निर्माण की विशेषताओं एवं स्वरूप के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
5. शिक्षा के लिए ज्ञान निर्माण के भविष्य के निहितार्थ को वर्णित कर सकेंगे।

12.3 ज्ञान निर्माण का अर्थ

ज्ञान निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षार्थी अन्वेषण, प्रतिबिंब और बातचीत के माध्यम से सक्रिय रूप से किसी विषय या अवधारणा के बारे में अपनी समझ बनाते हैं। इसमें सीखने की गतिविधियों और परियोजनाओं के माध्यम से प्राप्त जानकारी और अनुभवों से अर्थ का निर्माण करना शामिल है। यह प्रभावी शिक्षण का एक महत्वपूर्ण घटक है और कक्षा सेटिंग (आभासी कक्षाओं और व्यक्तिगत कक्षाओं दोनों) में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

"रचनावादी दृष्टिकोण से, सीखना वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से लोग ऐसे अर्थ का निर्माण करते हैं जो उस संदर्भ में अनुकूल होता है जिसमें इसे बनाया गया था। यह दुनिया का अनुभव करने और अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर किया जाता है। इस अर्थ में, वे ''सबसे अच्छा सीखते हैं जब वे एक प्रामाणिक स्थिति में सामाजिक रूप से बातचीत कर रहे होते हैं जो उनके पूर्व ज्ञान और लक्ष्यों के लिए प्रासंगिक होता है, और जो स्वायत्त और स्व–निर्देशित कामकाज को बढ़ावा देता है।''

"स्कीम का प्रगतिशील गठन और वृद्धि ज्ञान निर्माण है"

12.4 ज्ञान के प्रकार

ज्ञान के कई प्रकार जो निम्नवत है–

1. स्थानीय ज्ञान
2. सार्वभौमिक ज्ञान
3. प्रत्यक्ष ज्ञान
4. अप्रत्यक्ष ज्ञान
5. सैद्धांतिक ज्ञान
6. प्रायोगिक ज्ञान
7. स्कूली ज्ञान
8. स्कूल से बाहर ज्ञान
9. प्रकरण संबंधी ज्ञान
10. संपूर्ण ग्रंथ संबंधी ज्ञान

ज्ञान का सागर तो अथाह है जिसे जितना खोजो उतना बढ़ता जाता है बिना किसी सीमा के। परंतु मेरे विचार में मनुष्य के ज्ञान को निम्नलिखित तीन विभागों में बाँट सकते हैं।

1. प्रामाणिक ज्ञान,
2. आध्यात्मिक ज्ञान
3. व्यावहारिक ज्ञान।

1. **प्रामाणिक ज्ञान** को हम विज्ञान या पदार्थ ज्ञान भी कह सकते हैं जो भौतिक पदार्थों के गुणों और विशेषताओं पर आधारित होता है और जिसकी सत्यता के प्रमाण मौजूद होते हैं। एक जैसी परिस्थिति में एक जैसी क्रिया एक जैसा परिणाम देती है, चाहे कर्ता कोई भी हो।
   उदाहरण :– पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा और उसके परिणामों का ज्ञान, हवाई जहाज उड़ाने का ज्ञान, ऐयर कंडिशनर से ठंडक पैदा करने का ज्ञान, मोबाइल फोन से दूर दूर तक बातें कर पाने का ज्ञान और भवन निर्माण का ज्ञान आदि।

2. **आध्यात्मिक ज्ञान** जिसमें मुख्यतः धार्मिक मान्यताएँ और भावनात्मक विषयों से सम्बंधित व्याख्यायें शामिल होती हैं और में परिकल्पनाओं पर आधारित होती है। अर्थात् ऐसी बातें जिनका आवश्यक तौर पर कोई भौतिक प्रमाण नहीं होता, जो केवल लक्षणों पर आधारित होती हैं। इसमें कर्ता के बदल जाने पर अक्सर परिणाम भी बदलते हैं।
   उदाहरण :– परमेश्वर सम्बंधित ज्ञान, जन्म और मृत्यु से आगे और पीछे की अवस्था का ज्ञान, मन की शांति और अशांति का ज्ञान, प्रेम और घृणा के कारणों का ज्ञान, विकारों और स्वभावों का ज्ञान और मोक्ष प्राप्ति के साधनों का ज्ञान आदि।

3. **व्यावहारिक ज्ञान** तो मुख्यतः अनुभवों पर आधारित होता है और हर कर्ता का अलग–अलग होता है। इसके आधार में परिस्थितियों और समय बीतने के साथ साथ विभिन्न स्रोतों से प्राप्त विभिन्न प्रकार का ज्ञान होता है, जिससे कर्ता के आचरण, व्यक्तित्व और चरित्र का निर्माण होता रहता है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह ज्ञान व्यक्ति–विशेष की पहचान बनाता है।
   उदाहरण :– बड़ों की इज्जत करने का ज्ञान, नम्रता का ज्ञान, दैनिक दिनचर्या का ज्ञान, कार्य स्थल पर सहकर्मियों से बर्ताव का ज्ञान, सहयोग और सहायता देने और लेने का ज्ञान, बच्चों और पत्नी के संरक्षण का ज्ञान और स्वास्थ्य सम्बन्धी सावधानियों का ज्ञान आदि।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. ज्ञान निर्माण से क्या आशय है?

   .....
   .....

2. ज्ञान निर्माण के प्रकारों का वर्णन कीजिए।

   .....
   .....

3. प्रमाणिक ज्ञान क्या है? उदाहरण सहित समझाइए।

   .....
   .....

12.5 ज्ञान का महत्व

मानव जीवन में ज्ञान का बहुत अधिक महत्व है। मानव जीवन के लिये उसकी रीढ़ की हड्डी की तरह कार्य करता है इसलिए ज्ञान का महत्व आज और भी ज्यादा बढ़ गया है। ज्ञान का महत्व निम्नवत है–

- ज्ञान को मनुष्य की तीसरी आँख कहा गया है।

- ज्ञान भौतिक जगत और आध्यात्मिक जगत को समझने में मदद करता है।
- ज्ञान से ही मानसिक, बौद्धिक, स्मृति, निरीक्षण, कल्पना व तर्क आदि शक्तियों का विकास होता है।
- ज्ञान समाज सुधारने में सहायता करता है जैसे– अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता को दूर करता है।
- ज्ञान शिक्षा प्राप्ति हेतु साधन का काम करता है।
- ज्ञान अपने आप को जानने का सशक्त साधन है।
- ज्ञान का प्रकाश सूर्य के समान है ज्ञानी मनुष्य ही अपना और दूसरे का कल्याण करने में सक्षम होता है।
- ज्ञान विश्व के रहस्य को खोजता है।
- ज्ञान धन के समान है जितना प्राप्त होता है उससे अधिक पाने की इच्छा रखते है।
- ज्ञान सत्य तक पहुंचने का साधन है।
- ज्ञान शक्ति है।
- ज्ञान प्रेम तथा मानव स्वतंत्रता के सिद्धांतों का ही आधार है।
- ज्ञान क्रमबद्ध चलता है आकस्मिक नहीं आता है।
- तथ्य, मूल्य, ज्ञान के आधार के रूप में कार्य करते है।
- ज्ञान मानव को अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है।

12.6 ज्ञान निर्माण के सिद्धांत

ज्ञान निर्माण के प्रमुख सिद्धांत निम्नवत है–

1. **वास्तविक विचार और वास्तविक समस्याएं** :– कक्षा में छात्रों को वास्तविक दुनिया की समस्याओं को समझने के बारे में चिंतित होना चाहिए।
2. **विचार सुधार योग्यः**– छात्रों के विचारों को सुधार योग्य वस्तु माना जाता है।
3. **विभिन्न प्रकार के विचारः**– कक्षा में छात्रों द्वारा उठाए गए विभिन्न प्रकार के विचार आवश्यक हैं।
4. **विचारों के ऊपर उठनाः**– विचारों और समझ में निरंतर सुधार के माध्यम से, छात्र उच्च–स्तरीय अवधारणाएँ बनाते हैं।
5. **ज्ञान मीमांसाः**– विद्यार्थी आगे बढ़ने का रास्ता स्वयं ढूंढ लेते हैं।
6. **सामुदायिक ज्ञान एवं सामूहिक जिम्मेदारीः**– कक्षा में अपने सामूहिक ज्ञान को बेहतर बनाने में छात्रों का योगदान ज्ञान निर्माण कक्षा का प्राथमिक लक्ष्य है।
7. **ज्ञान का लोकतंत्रीकरणः**– सभी लोगों को कक्षा में ज्ञान की उन्नति में योगदान देने के लिए आमंत्रित किया जाता है।
8. **ज्ञान की सममित उन्नतिः**– ज्ञान निर्माण समुदायों का लक्ष्य लोगों और संगठनों को अपने ज्ञान की पारस्परिक प्रगति सुनिश्चित करने के लिए सक्रिय रूप से काम करना है।
9. **ज्ञान का व्यापक योगदानः**– छात्र ज्ञान के सामूहिक निर्माण में योगदान देते हैं।
10. आधिकारिक स्रोतों **का रचनात्मक उपयोगः**– शिक्षकों सहित सभी प्रतिभागी, अपनी समझ का समर्थन करने के लिए एक स्वाभाविक दृष्टिकोण के रूप में कॉल का समर्थन करते हैं।
11. **ज्ञान निर्माण की बातचीतः**– छात्र कक्षा में ज्ञान की प्रगति को साझा करने और उसमें सुधार करने के लिए बातचीत में लगे हुए हैं।

12. **समानांतर, सक्षम और परिवर्तनीय मूल्यांकन** :– छात्र अपनी समझ के बारे में वैश्विक दृष्टिकोण प्राप्त करते हैं, फिर निर्णय लेते हैं कि अपने ग्रेड तक कैसे पहुँचें। वे विभिन्न तरीकों से मूल्यांकन करते हैं और उसमें भाग लेते हैं।

12.7 ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया

बालक जब भी किसी परिस्थिति में जाता है तो वह अपने पूर्व निर्मित स्कीमा के आधार पर उस परिस्थिति को समझने का प्रयास करता है यदि वह उसे समझ जाता है तो वह संतुलन की व्यवस्था में रहता है यदि वह उसे नहीं समझ पा रहा है यानी परिस्थिति उसके लिए नई है तो वह असंतुलन की अवस्था में पहुंच जाता है। ऐसी स्थिति में उसका मस्तिष्क जिज्ञासा मूल प्रवृत्ति के साथ साम्यधारण की प्रक्रिया के अंतर्गत ज्ञान का अर्जन करता है। अर्जन की प्रक्रिया में वह दो तरीकों का प्रयोग करता है। समावेशन और समायोजन। इस तरह वह अर्जन के दोनों तरीकों का प्रयोग करके अपने आप को परिस्थिति के अनुसार अनुकूलित कर लेता है यानी अनुकूलन।

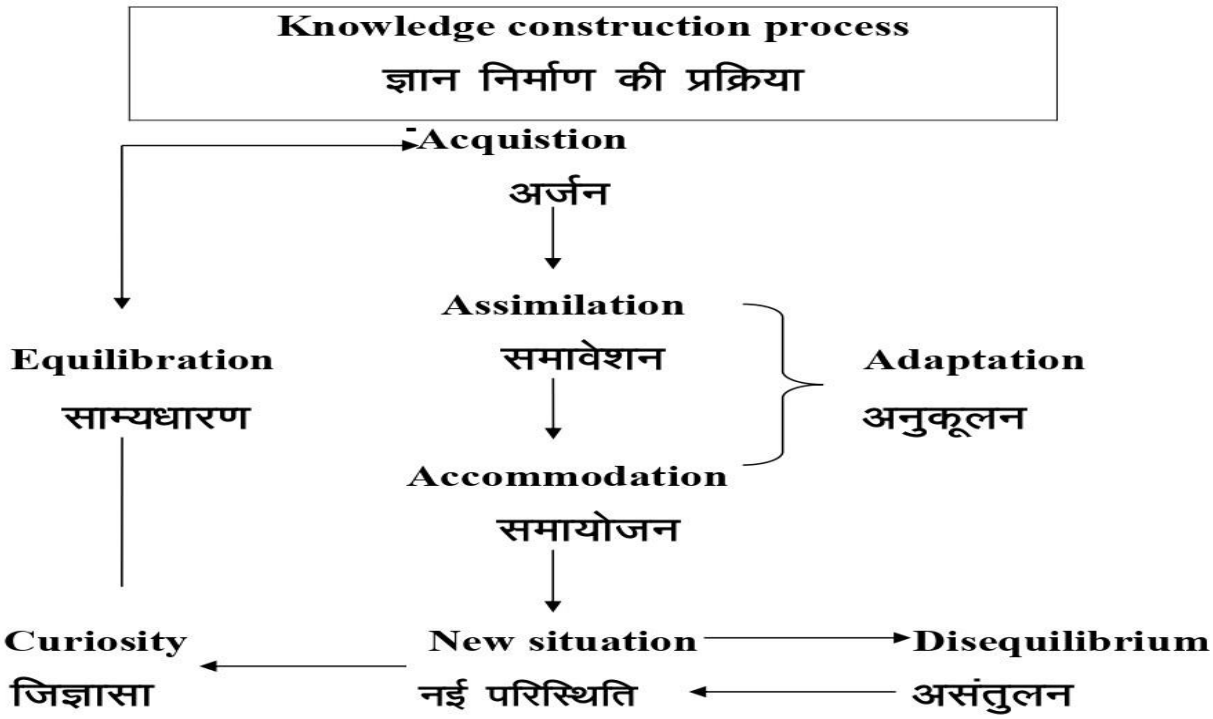

- **साम्यावस्था/संतुलन की अवस्था** : बालक जब किसी परिस्थिति में जाता है और वह वास्तविकता को अपने पूर्व स्कीमा के आधार पर कर पता है तब वह संतुलन की अवस्था में रहता है पियाजे मस्तिष्क की इस अवस्था को साम्यावस्था कहते हैं।
- **असंतुलन की अवस्था** : जब पूर्व निर्मित स्कीमा वास्तविकता की व्याख्या या कार्यात्मकता या कार्य संपादन हेतु पर्याप्त नहीं है तो हमारा मस्तिष्क जिज्ञासा मूल प्रवृत्ति के साथ एक सक्रिय उत्तेजित अवस्था में संज्ञानात्मक प्रक्रमण करता है पियाजे इस उत्तेजित अवस्था को असंतुलन की अवस्था कहते हैं।
- **अर्जन ज्ञान** : इंद्रियों के माध्यम से सूचनाओं को प्राप्त करके स्कीमा निर्माण की प्रक्रिया अर्जन की प्रक्रिया है।

अर्जन की प्रक्रिया में दो तरीको से होती हैं–

(1) समावेशन (2) समायोजन

(1) समावेशन :– इसकी तीन स्थितियां हो सकती हैं।

(i) पूर्व निर्मित स्कीमा के आधार पर बालक वास्तविकता की व्याख्या या किसी कार्य को संपन्न कर दें।
(ii) पूर्व निर्मित स्कीमा में कोई नई जानकारी जोड़ लेना।
(iii) नई सूचनायें आये और हम पूर्व निर्मित स्कीमा के अनुसार इन सूचनाओं को परिवर्तित करके प्रयोग करें न कि अपने स्कीमा में कोई परिवर्तन करें।

अब हम इन तीनों स्थितियों को एक–एक उदाहरण से समझते हैं –

- बालक ने पहली बार एक सफेद कुत्ता देखा उसकी मां ने उसे बताया यह कुत्ता है यही कुत्ता जब उसे दोबारा दिखता है तो बालक उसको कुत्ता बोलता है। यानी उसने अपने पूर्व निर्मित स्कीमा का प्रयोग किया है तो यह समावेशन की पहली स्थिति है।
- बालक अगली बार एक काला कुत्ता देखा है तो वह उसको भी कुत्ता बोलता है यानी यहां उसने अपने स्कीम में एक नई सूचना जोड़ ली की कुत्ता काले रंग का भी होता है। यह समावेशन की दूसरी स्थिति है।
- कुछ दिन बाद बालक एक बछड़ा देखता है और कहता है देखो यह कितना बड़ा कुत्ता है यानी इस स्थिति में उसने अपने स्कीम में परिवर्तन नहीं किया बल्कि आने वाली सूचना में परिवर्तन कर लिया बछड़े को बड़ा कुत्ता बता कर यह समावेशन की तीसरी स्थिति है ।

(2) समायोजन :– वास्तविकता की व्याख्या करने या कार्यात्मक प्रदर्शन हेतु या कार्य संपादन हेतु पूर्व निर्मित स्कीमा में परिवर्तन करना। नई सूचनाओं की प्राप्त के कारण या परिस्थिति की मांग के कारण प्रयोग हेतु पूर्व निर्मित स्कीम में परिवर्तन करना समायोजन कहलाता है।

उदाहरण – जब बच्चा बछड़े को बड़ा कुत्ता बोल रहा होगा तो उसके बड़े उसको रोकेंगे और बताएंगे कि यह कुत्ता नहीं है यह बछड़ा है तब बालक अपने पूर्व निर्मित स्कीमा मैं परिवर्तन करके जोड़ लेगा की बड़ा सा चार पैरों वाला जानवर कुत्ता नहीं बछड़ा होता है। फिर बालक बछड़े को कुत्ते वाले स्कीमा से अलग करके बछड़े के लिए नया स्कीम बना लेगा। यानी समायोजन में हम स्कीमा में कुछ जोड़ रहे होते हैं और समायोजन में स्कीमा को ही परिवर्तित कर रहे होते हैं।

- **अनुकूलन**

  किसी भी परिस्थिति में यदि बालक समावेशन या समायोजन या दोनों प्रक्रियाओं का प्रयोग करते हुए परिस्थिति की व्याख्या या कार्यात्मक प्रदर्शन या कार्य का निष्पादन करता है।

- **साम्यधारण / समाविष्टीकरण**

  वह प्रक्रिया जिसके द्वारा मस्तिष्क की उत्तेजित अवस्था को वापस साम्यावस्था (संतुलन की अवस्था) में लाया जाता है। साम्यधारण वह संज्ञानात्मक प्रक्रमण है जो जिज्ञासा मूल प्रवृत्ति के द्वारा प्रेरित होता है तथा जहां संज्ञान नई परिस्थिति या नई वास्तविकता को समझने और व्याख्या करने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया का परिणाम स्कीमा का गठन या ज्ञान का निर्माण होता है। पियाजे ने साम्यधारण को **'अधिगम का चालक इंजन'** कहां है क्योंकि यह सभी प्रकार के अधिगम की मूलभूत प्रक्रिया है।

12.8 ज्ञान निर्माण की विशेषताएं

ज्ञान निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति नए ज्ञान को बनाता है और पूर्व मौजूदा ज्ञान के साथ उसे जोड़ता है। यह एक सिस्टमात्मक और नैतिक प्रक्रिया है, जो अनुभव, समझ, विचार, अध्ययन और प्रयोग के माध्यम से ज्ञान को विकसित करती है।

ज्ञान निर्माण की विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

1. सतत अध्ययनः ज्ञान निर्माण में सतत अध्ययन एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इसके द्वारा, व्यक्ति नए ज्ञान को उत्पन्न करता है और उसे अपने मौजूदा ज्ञान से जोड़ता है।
2. विवेचनाः व्यक्ति को ज्ञान निर्माण करने के लिए विवेचना करने की आवश्यकता होती है। इसके द्वारा, वह ज्ञान के साथ–साथ उसके पीछे की तर्क और कारण को समझता है।
3. अनुभवः अनुभव एक महत्वपूर्ण विशेषता है जो ज्ञान निर्माण के दौरान प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा, व्यक्ति के पास ज्ञान के विस्तृत अनुभव होते हैं जो उसे नए ज्ञान को समझने और प्रयोग करने में सहायक है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

4. ज्ञान का क्या महत्व है? किन्हीं दो ज्ञान के महत्व को बताइए।

.....

.....

5. ज्ञान निर्माण की कितने सिद्धांतों का वर्णन किया गया है।

.....

.....

6. ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया के अंतर्गत साम्यधारण क्या है?

.....

.....

12.9 ज्ञान का स्वरूप

ज्ञान एक विश्वास है जिसे सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है। ज्ञान बहुमूल्य रत्नों से भी महँगी चीज मानी जाती है जिसको कोई चुरा नहीं सकता। ज्ञान ही एक ऐसी चीज है जिसके लिए किसी व्यक्ति को चिंतित नहीं होना पड़ता कि इसे कोई चुरा लेगा क्यूंकि किसी व्यक्ति का ज्ञान चुराने के लिए खुद के पास ज्ञान होना चाहिए।

सार्वभौमिक आधार–ज्ञान के वर्गीकरण के सार्वभौमिक आधार की प्रक्रिया का आशय ज्ञान में उन सभी तथ्यों एवं मान्यताओं को समाहित करने से है जो कि सम्पूर्ण विश्व में समानता से स्वीकार की जाती हैंय जैसे–विश्व शान्ति के लिये ज्ञान, विश्व संस्कृति के लिये ज्ञान, सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय के लिये ज्ञान का उपयोग होना चाहिए।

12.10 कक्षा व्यवस्था में ज्ञान निर्माण का महत्व

कक्षा व्यवस्थापन में ज्ञान का निर्माण इतना महत्वपूर्ण होने का एक प्रमुख कारण यह है कि यह गहन शिक्षा और समझ को बढ़ावा देता है। जब छात्र ज्ञान निर्माण में संलग्न होते हैं, तो वे सामग्री की अपनी समझ को मजबूत कर सकते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि वे नई जानकारी को अपने वर्तमान विषय ज्ञान के साथ एकीकृत करते हैं।

परिणाम सामग्री की अधिक मजबूत और स्थायी समझ है। इससे छात्रों को अधिक सार्थक और यादगार सीखने का अनुभव मिलता है, जो उनकी भविष्य की शैक्षणिक और व्यावसायिक सफलता को प्रभावित कर सकता है।

कक्षा में ज्ञान निर्माण महत्वपूर्ण होने का एक और कारण यह है कि यह छात्रों को आवश्यक कौशल और दक्षता विकसित करने में मदद करता है। इन कौशलों में आलोचनात्मक सोच, समस्या–समाधान और सहयोग शामिल हैं। आज की तेजी से बदलती दुनिया में इन कौशलों की मांग तेजी से बढ़ रही है और शैक्षणिक और व्यावसायिक स्थिति में सफलता के लिए ये आवश्यक हैं।

जब छात्र ज्ञान निर्माण में संलग्न होते हैं, तो वे व्यावहारिक कौशल का निर्माण करते हैं। इन कौशलों को वास्तविक दुनिया की स्थितियों में लागू किया जा सकता है, सामग्री के बारे में उनकी समझ को मजबूत और गहरा किया जा सकता है। इससे समग्र रूप से सामग्री की एक मजबूत समझ पैदा होती है।

12.11 शिक्षक द्वारा कक्षाओं में ज्ञान निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए रणनीतियों का उपयोग करना

ऐसी कई रणनीतियाँ हैं जिनका उपयोग शिक्षक अपनी कक्षाओं में ज्ञान निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए कर सकते हैं।

- **सहयोग को प्रोत्साहित करना** – समूह गतिविधियों और परियोजनाओं के माध्यम से छात्रों के लिए एक साथ काम करने और एक–दूसरे से सीखने के अवसर पैदा करने से सम्बन्धित।
- **आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देना** – ऐसे प्रश्न पूछें जो छात्रों को सामग्री के बारे में गंभीर रूप से सोचने और नई जानकारी और उनके मौजूदा ज्ञान के बीच संबंध बनाने के लिए प्रोत्साहित करें।
- **व्यावहारिक, अनुभवात्मक शिक्षा का उपयोग करें** – छात्रों को व्यावहारिक, पूछताछ–आधारित शिक्षण गतिविधियाँ प्रदान करें जो सक्रिय अन्वेषण और प्रतिबिंब को बढ़ावा देती हैं।

12.12 शिक्षा के लिए ज्ञान निर्माण के भविष्य के निहितार्थ

शिक्षा के लिए ज्ञान निर्माण के भविष्य के निहितार्थ महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इसमें सीखने और सिखाने के बारे में हमारे सोचने के तरीके को बदलने की क्षमता है। यह छात्रों को तेजी से बदलती दुनिया में सफलता के लिए तैयार करने में मदद करता है। यह गहन ज्ञान और समझ को बढ़ावा देता है, आलोचनात्मक सोच और सहयोग को बढ़ावा देता है। इसके अतिरिक्त यह व्यावहारिक, अनुभवात्मक सीखने के अवसर प्रदान करता है।

शिक्षा में प्रौद्योगिकी की भूमिका बढ़ती जा रही है। इसमें ज्ञान निर्माण की शक्ति को बढ़ाने की क्षमता है। आभासी शिक्षण गतिविधियाँ और परियोजनाएँ छात्रों को कहीं से भी और किसी भी समय सक्रिय अन्वेषण और प्रतिबिंब में संलग्न होने की अनुमति देती हैं। परिणामस्वरूप इसमें और भी अधिक प्रभावी बनने की क्षमता है।

- **प्रशिक्षण के लिए निहितार्थ**

ज्ञान का निर्माण एक सक्रिय प्रक्रिया है जो व्यक्तिगत या सामाजिक सहभागिता के माध्यम से होती है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रशिक्षकों को शिक्षार्थियों को भागीदारी के तरीकों का उपयोग करके अर्थ बनाने की प्रक्रिया में सामाजिक और व्यक्तिगत रूप से शामिल होने के अवसर प्रदान करने चाहिए। शिक्षार्थी निष्क्रिय रिसेप्टर्स नहीं हैं। उन्हें सक्रिय रूप से सीखने में संलग्न होना चाहिए और सुनने, पढ़ने और याद रखने के क्लासिक प्रदर्शनों से परे, अर्थ के निर्माण में सहायता करनी चाहिए। इसके अलावा प्रशिक्षकों को ऐसे संदर्भ बनाने चाहिए जहां प्रतिभागी संबोधित विषय के साझा अर्थ और समझ का निर्माण करने के लिए संवाद में संलग्न हो सकें।

ज्ञान के निर्माण को प्रामाणिक और वास्तविक दुनिया के वातावरण द्वारा बढ़ावा दिया जाता है। प्रशिक्षकों को प्रासंगिक समस्याओं और अनुभवों को शामिल करना चाहिए जिन्हें सीखने की प्रक्रिया के भीतर वास्तविक दुनिया से जोड़ा जा सकता है। साथ ही हमें अपने प्रशिक्षण संदर्भ के बाहर, हमारे प्रतिभागियों के जीवन में, उनके व्यक्तिगत और सामाजिक वातावरण में, सहज या योजनाबद्ध अनुभवों में और उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की समृद्धि में होने वाली सीख का लाभ उठाना चाहिए।

ज्ञान का निर्माण लोगों के पूर्व ज्ञान और अनुभव के आधार पर होता है। सभी प्रकार के सीख उस पर आधारित है जो प्रतिभागी पहले से जानते हैं और प्रशिक्षण में अपने साथ लाते हैं। इसमें किसी भी संदर्भ में अर्जित सभी प्रकार की शिक्षा शामिल हैः सांस्कृतिक ज्ञान, व्यक्तिगत ज्ञान, मेटाकॉग्निटिव ज्ञान और मौन ज्ञान। हम जिन प्रशिक्षणों की योजना बनाते हैं और उनका नेतृत्व करते हैं उनमें पूर्व ज्ञान मेज पर अदृश्य अतिथि होता है। यह या तो सहयोगी या शत्रु हो सकता है, लेकिन इसे कभी भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इसलिए हमें प्रतिभागियों को मौजूदा मान्यताओं और समझ के बारे में जागरूक होने, व्यक्त करने, चुनौती देने, बदलने या जोड़ने के अवसर शामिल करने चाहिए। ऐसा करने में, हमें एक प्रतिभागी–केंद्रित दृष्टिकोण की ओर बढ़ना चाहिए जिसमें उनकी पृष्ठभूमि, रुचियां, प्रश्न, सीखना और अर्थ निर्माण हमारे प्रशिक्षण के केंद्र में बन जाएं।

ज्ञान के निर्माण को कई दृष्टिकोणों और अभ्यावेदन (सीखी गई सामग्री, कौशल और सामाजिक क्षेत्रों) में शामिल होने से समर्थन मिलता है। इसका तात्पर्य यह है कि हमें प्रतिभागियों को विभिन्न तरीकों कई प्रारूपों और विभिन्न स्थितियों में ज्ञान और कौशल का परिचय देना चाहिए, साथ ही उन्हें कई और विविध दृष्टिकोणों से जानकारी देखने की चुनौती देनी चाहिए।

ज्ञान के निर्माण को शिक्षार्थी के आत्म–नियमन और आत्म–जागरूकता के विकास से बढ़ावा मिलता है। इस प्रकार हम केवल प्रासंगिक कौशल और जानकारी सीखने में शिक्षार्थियों का समर्थन नहीं कर सकते हैं हमें उपकरण और संदर्भ भी प्रदान करने होंगे जिसमें वे अपने स्वयं के सीखने का प्रबंधन करने की क्षमता विकसित करें। जब वे अपनी समझ और ज्ञान निर्माण प्रक्रियाओं से अवगत हो जाते हैं, तो वे सीखने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए प्रशिक्षकों पर निर्भर नहीं रहेंगे।

12.13 ज्ञान के निर्माण के रूप में अधिगम, ज्ञान के अंतरण तथा ज्ञान प्राप्ति के रूप में अधिगम में अंतर

ज्ञान का निर्माणः– ज्ञान के निर्माण के रूप में अधिगम की धारणा को विकसित करने में जॉन पियाजे, जॉन डीवी तथा बायगोट्स्की का विशेष योगदान रहा है। ज्ञान के निर्माण के सिद्धान्त के अनुसार अधिगम एक क्रियाशील प्रक्रिया है जिसमें अधिगमकर्ता स्वयं के ज्ञान व अनुभव पर आधारित अवधारणाओं विचारों तथा ज्ञान को निर्मित करते हैं। ज्ञान प्राप्त करने के स्थान पर ज्ञान निर्मित किया जाता है। ज्ञान एक स्थिर वस्तु नहीं होती बल्कि इसे व्यक्ति द्वारा उस वस्तु के बारे में (ज्ञान के बारे में) अपने स्वयं के अनुभव द्वारा निर्मित किया जाता है।

ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया में हम पुराने अर्जित ज्ञान को नष्ट नहीं करते बल्कि उसका पुनर्निर्माण करते हैं। ज्ञान के निर्माण के लिए एक उचित वातावरण में अधिगमकर्ता उनके स्वयं के अधिगम के लिए जिम्मेदारियाँ वहन करते हैं। वे स्वयं के अधिगम तथा निष्पादन का निरीक्षण करने तथा उन्हें निर्देशित करने के लिए आत्मसंज्ञान क्षमताओं को विकसित करते हैं। ज्ञान के निर्माणवादी विचार ने हमें यह समझाया है कि कैसे सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक तथा राजनीतिक स्थितियों के संदर्भो में सक्रियता (क्रियाशीलता) के द्वारा अधिगम को सुविधाजनक बनाया जा सकता है।

ज्ञान की प्राप्तिः– ज्ञान प्राप्त करने हेतु हम अपनी पंच ज्ञानेन्द्रियों तथा संज्ञान (बुद्धि की सीखने, चिंतन मनन करने व नयी परिस्थितियों में समायोजन करने व सूझ की) शक्ति का उपयोग करते हैं। हमारी पंच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं

(1) आंख (2) कान (3) नाक (4) मुँह (5) त्वचा। ये पंच ज्ञानेन्द्रियाँ व बुद्धि ज्ञान प्राप्ति के स्रोत हैं। देखकर, सुनकर, सूंघकर, चखकर तथा छूकर हम अपने मस्तिष्क से जुड़े उनके संबंध से किसी वस्तु के रूप, रंग, आकार, गंध, स्वाद, कठोरता–कोमलता आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। ये ज्ञान प्राप्ति के प्राथमिक मानवीय स्रोत हैं। इनके अतिरिक्त हम अपने व्यक्तिगत अनुभव से दूसरे व्यक्तियों के बारे में यह ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं कि कौनसे शिक्षक अच्छा पढ़ाते हैं कौनसा छात्र प्रतिभाशाली है या कमजोर है इत्यादि। पूर्व संचित ज्ञान परम्परा व मान्यताओं से भी हम ज्ञान प्राप्त करते हैं। पुस्तकों के अध्ययन से ज्ञान इसी श्रेणी में आता है। विषय विशेषज्ञों शिक्षकों के परामर्श से भी ज्ञान अर्जित होता है।

ज्ञान की प्राप्ति–

- पंच ज्ञानेंद्रियों एवं बुद्धि के उपयोग से
- संचित ज्ञान, पुस्तक एवं इंटरनेट के माध्यम से
- विशेषज्ञ शिक्षकों के परामर्श से

ज्ञान का अंतरण–

ज्ञान के अंतरण या स्थानांतर से तात्पर्य सीखने के एक क्षेत्र में प्राप्त ज्ञान का दूसरे मिलते–जुलते क्षेत्र में उपयोग से है। उदाहरण के लिए स्कूटर चलाने का सीखा हुआ ज्ञान मोटरसाइकिल चलाने में उपयोग करना सीखे ज्ञान का अंतरण है।

क्रो एवं क्रो के अनुसार–"सीखने के एक क्षेत्र में प्राप्त होने वाले ज्ञान या कुशलताओं का चिंतन करके, अनुभव करने और कार्य करने की आदतों का सीखने के दूसरे क्षेत्र में प्रयोग करना साधारणतः प्रशिक्षक का स्थानान्तर कहा जाता है।''

''ज्ञान के निर्माण के रूप में अधिगम'' का ''ज्ञान प्राप्ति व ज्ञान अंतरण के रूप में अधिगम'' में अंतर–

स्वरूप (अंतर)	ज्ञान के निर्माण के रूप म अधिगम	ज्ञान प्राप्ति व ज्ञान अंतरण के रूप में अधिगम
1. अर्थ	खोज या अनुसंधान द्वारा स्वयं करके ज्ञान या अधिगम का नवीन पुनर्संगठित पुनर्संरचनागत अधिगम का निर्माण करना	ज्ञानेन्द्रियों द्वारा या शिक्षण अध्ययन ज्ञानार्जन व प्राप्त ज्ञान अधिगम का भिन्न समान क्षेत्र में स्थानांतरण
2. प्रक्रिया	वर्तमान ज्ञान/अधिगम के निरंतर संगठन, पुनर्संगठन, संरचना व पुनर्संरचना द्वारा ज्ञान/अधिगम की रचना	पंच ज्ञानेन्द्रियाँ या परामर्श या अध्ययन से पूर्व से रचित ज्ञान की प्राप्ति तथा दूसरे क्षेत्र से प्राप्त अधिगम का उपयोग।
3. अधिगमकर्ता की भूमिका	अधिगमकर्ता स्वयं ज्ञान की खोज करता है।	उपलब्ध ज्ञान को शिक्षक से या स्वाध्याय से समझना, उसका अंतरण सजातीय क्षेत्र में अधिगमकर्ता द्वारा करना।
4. शिक्षक की भूमिका	शिक्षक सहायक मात्र है पूर्व खोज प्रक्रिया में बाद में वह सहायता हटा लेता है।	शिक्षक–छात्र दोनों के सहयोग से ज्ञान प्राप्ति तथा छात्र द्वारा ज्ञान का अंतरण।
5. उदाहरण	वैयक्तिक विभिन्नता के प्रकारों के अनुसार छात्र द्वारा अपनी कक्षा के छात्रों को विभिन्न प्रकारों में रखना।	शिक्षक से या पुस्तक से पढ़कर शब्दकोश से शब्द का अर्थ ज्ञात करने की विधि समझना तथा वाक्यों में दिए गए कठिन शब्दों का

	जू में जाकर अधिगमकर्ता जानवर व उनके वातावरण से ज्ञान रचेगा।	शब्दार्थ शब्दकोष से सही परिप्रेक्ष्य में ज्ञात करना।
6. उपयोगिता	ज्ञान/अधिगम का निर्माण छात्र में अमूर्त चिंतन, संगठन, पुनर्संगठन संरचना–पुनर्संरचना, खोज या अनुसंधान, उच्च स्तर की मनन क्षमता विकसित करना है।	ज्ञान रखने से ज्ञान भंडार के विकास तथा मिलती जुलती स्थिति में अर्जित ज्ञान के स्थानांतर की क्षमता विकसित होती है। ज्ञान का पुनरुत्पादन अंतरण से संभव है ।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

7. ज्ञान के स्वरूप से आपका क्या आशय है।

.....

.....

8. कक्षा व्यवस्था में ज्ञान निर्माण का क्या महत्व है

.....

.....

9. शिक्षक द्वारा कक्षा में ज्ञान निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए कौन–कौन सी रणनीतियों को अपनाया।

.....

.....

12.14 सारांश

निष्कर्षतः ज्ञान निर्माण प्रभावी शिक्षण का एक महत्वपूर्ण घटक है और कक्षा सेटिंग में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। समझ के सक्रिय निर्माण को प्रोत्साहित करने से गहन शिक्षा को बढ़ावा मिलता है और छात्रों को आवश्यक कौशल विकसित करने में मदद मिलती है। इससे शैक्षणिक और व्यावसायिक दोनों पृष्ठभूमियों में सफलता मिलती है। हालाँकि, योजना और व्यावहारिक सीखने की गतिविधियाँ ज्ञान निर्माण को लागू करने में आने वाली चुनौतियों को दूर कर सकती हैं। शिक्षा के लिए ज्ञान निर्माण के भविष्य के निहितार्थ महत्वपूर्ण हैं और आने वाली पीढ़ियों के लिए सीखने और सिखाने के बारे में हमारे सोचने के तरीके को बदलने की क्षमता रखते हैं।

12.15 अभ्यास के प्रश्न

1. ज्ञान निर्माण से क्या आशय है ? ज्ञान निर्माण के सिद्धांतों का वर्णन कीजिये।
2. ज्ञान का क्या महत्व है ? ज्ञान के पांच महत्व को लिखिए।
3. ज्ञान निर्माण की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

12.16 चर्चा के बिन्दु

1. ज्ञान के स्वरूप, प्रकार, महत्व, ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया, ज्ञान निर्माण का शैक्षिक निहितार्थ पर चर्चा करें।

12.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ज्ञान निर्माण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षार्थी अन्वेषण, प्रतिबिंब और बातचीत के माध्यम से सक्रिय रूप से किसी विषय या अवधारणा के बारे में अपनी समझ बनाते हैं। इसमें सीखने की गतिविधियों और परियोजनाओं के माध्यम से प्राप्त जानकारी और अनुभवों से अर्थ का निर्माण करना शामिल है। यह प्रभावी शिक्षण का एक महत्वपूर्ण घटक है और कक्षा सेटिंग (आभासी कक्षाओं और व्यक्तिगत कक्षाओं दोनों) में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

2. मनुष्य के ज्ञान को निम्नलिखित तीन विभागों में बाँट सकते हैं–

(i) प्रामाणिक ज्ञान,

(ii) आध्यात्मिक ज्ञान

(iii) व्यावहारिक ज्ञान।

3. **प्रामाणिक ज्ञान** को हम विज्ञान या पदार्थ ज्ञान भी कह सकते हैं जो भौतिक पदार्थों के गुणों और विशेषताओं पर आधारित होता है और जिसकी सत्यता के प्रमाण मौजूद होते हैं। एक जैसी परिस्थिति में एक जैसी क्रिया एक जैसा परिणाम देती है, चाहे कर्त्ता कोई भी हो।

उदाहरण :– पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा और उसके परिणामों का ज्ञान, हवाई जहाज उड़ाने का ज्ञान, ऐयर कंडिशनर से ठंडक पैदा करने का ज्ञान, मोबाइल फोन से दूर दूर तक बातें कर पाने का ज्ञान और भवन निर्माण का ज्ञान आदि।

4. मानव जीवन में ज्ञान का बहुत अधिक महत्व है। मानव जीवन के लिये उसकी रीढ़ की हड्डी की तरह कार्य करता है इसलिए ज्ञान का महत्व आज और ज्यादा बढ़ गया है। ज्ञान का महत्व निम्नलिखित है–

- ज्ञान को मनुष्य की तीसरी आँख कहा गया है।
- ज्ञान भौतिक जगत और आध्यात्मिक जगत को समझने में मदद करता है।

5. ज्ञान **निर्माण** के निम्नलिखित तीन सिद्धान्त है।

(i) **वास्तविक विचार और वास्तविक समस्याएं** :– कक्षा में छात्रों को वास्तविक दुनिया की समस्याओं को समझने के बारे में चिंतित होना चाहिए।

(ii) **विचार सुधार योग्य** :– छात्रों के विचारों को सुधार योग्य वस्तु माना जाता है।

(iii) **विभिन्न प्रकार के विचार** :– कक्षा में छात्रों द्वारा उठाए गए विभिन्न प्रकार के विचार आवश्यक हैं।

6. **साम्यावस्था/संतुलन की अवस्था** :– बालक जब किसी परिस्थिति में जाता है और वह वास्तविकता को अपने पूर्व स्कीमा के आधार पर कर पता है तब वह संतुलन की अवस्था में रहता है पियाजे मस्तिष्क की इस अवस्था को साम्यावस्था कहते हैं।

7. ज्ञान एक विश्वास है जिसे सत्य के रूप में स्वीकार किया गया है। ज्ञान बहुमूल्य रत्नों से भी महँगी चीज मानी जाती है जिसको कोई भी चोर चुरा नहीं सकता। ज्ञान ही एक ऐसी चीज है जिसके लिए किसी

व्यक्ति को चिंतित नहीं होना पड़ता कि इसे कोई चुरा लेगा क्यूंकि किसी व्यक्ति का ज्ञान चुराने के लिए खुद के पास ज्ञान चाहिए।

8. कक्षा सेटिंग में ज्ञान निर्माण इतना महत्वपूर्ण होने का एक प्रमुख कारण यह है कि यह गहन शिक्षा और समझ को बढ़ावा देता है। जब छात्र ज्ञान निर्माण में संलग्न होते हैं, तो वे सामग्री की अपनी समझ को मजबूत कर सकते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि वे नई जानकारी को अपने वर्तमान विषय ज्ञान के साथ एकीकृत करते हैं।

9. ऐसी कई रणनीतियाँ हैं जिनका उपयोग शिक्षक अपनी कक्षाओं में ज्ञान निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए कर सकते हैं।

- सहयोग को प्रोत्साहित करें
- आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा दें
- व्यावहारिक, अनुभवात्मक शिक्षा का उपयोग करें

12.18 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. लुई एल0 हे चेरिल रिचर्डसन : ज्ञान का सौंदर्य।
2. डॉ0 नीरज कुमार (2023) : ज्ञान ग्रंथ : बुक क्लिनिक पब्लिकेशन।
3. राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (2005) : नई दिल्ली, एन0 सी0 ई0 आर0 टी0।
4. गुप्ता एस0 पी0 एवं अलका गुप्ता (2017) : भारतीय शिक्षा के समसामयिक प्रकरण : शारदा पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
5. शर्मा आर0 ए0 (1996) : दूरवर्ती शिक्षा : सूर्या पब्लिकेशन, मेरठ।

खण्ड– 05 : ज्ञान और शक्ति

खण्ड परिचय

प्रस्तुत खण्ड में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार, पाठ्यक्रम में विभिन्न सामाजिक समूहों के ज्ञान का समावेश तथा अपवर्जन तथा विविधता को दूर करने में शिक्षा की भूमिका का विवेचन किया जाएगा प्रस्तुत खण्ड का विभाजन तीन इकाईयों में किया गया है जिसका विवरण इस प्रकार है–

इकाई 13 प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत ज्ञान का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य, समाज का समाजशास्त्रीय अर्थ एवं परिभाषा, समाजशास्त्र का अर्थ, शैक्षिक समाजशास्त्र, शैक्षिक समाज विज्ञान का अर्थ, शैक्षिक समाजशास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध, शैक्षिक समाजशास्त्र की सीमाएं, शैक्षिक समाजशास्त्र तथा शिक्षा का शैक्षिक समाजशास्त्र तथा पाठ्यक्रम, शैक्षिक समाजशास्त्र तथा शिक्षण–पद्धतियाँ इत्यादि का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

इकाई 14 प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत पाठ्यक्रम को प्रभावित करने वाले विभिन्न सामाजिक समूहों जैसें प्राथमिक समूह व द्वितीयक समूह, पाठ्यक्रम में विभिन्न दार्शनिक विचार, विचार पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण, विषय केन्द्रित एवं पाठ्यक्रम की त्रुटियाँ का अर्थ एवं परिभाषा निर्माण के आधारभूत सिद्धांत, पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में विभिन्न दार्शनिक विचार, पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण, विषयकेन्द्रित एवं विषमागत पाठ्यक्रम तथा अनुभव केन्द्रित अथवा क्रियाकेन्द्रित पाठ्यक्रम की त्रुटियाँ, पाठ्यक्रम का क्रियान्वयन, पाठ्यक्रम के स्तर को ऊँचा करने तथा पुनः निर्माण के लिए उपाय, राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रस्तावित पाठ्यक्रम तथा पाठ्यक्रम के विभिन्न स्तरों के उद्देश्य की विस्तृत चर्चा की गई है।

इकाई 15 प्रस्तुत इकाई में विभेदीकरण का अर्थ, परिभाषा, विविधता के विभिन्न तत्व जैसे– जाति के आधार पर विविधता, संवैधानिक भ्रांतियों के कारण विविधता, नेतृत्व के अभाव के कारण विविधता इत्यादि तथा विविधता को दूर करने में शिक्षक की भूमिका और विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

इकाई– 13 : ज्ञान का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

इकाई की संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 इकाई के उद्देश्य

13.3 ज्ञान का सामाजिक परिप्रेक्ष्य

13.4 समाज का समाजशास्त्रीय अर्थ

13.5 परिभाषा

13.6 समाजशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषाएँ

13.7 समाजशास्त्र का अर्थ

13.8 शैक्षिक समाजशास्त्र

13.9 शैक्षिक समाज विज्ञान का अर्थ

13.10 शैक्षिक समाजशास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध

13.11 शैक्षिक समाजशास्त्र की सीमाएं

13.12 शैक्षिक समाजशास्त्र तथा शिक्षा का समाजशास्त्र

13.13 समाजिक दृष्टिकोण से शिक्षा का अर्थ

13.14 समाजिक दृष्टिकोण से शिक्षा के उद्देश्य

13.15 शिक्षा के कार्य

13.16 शैक्षिक समाजशास्त्र तथा पाठ्यक्रम

13.17 शैक्षिक समाजशास्त्र तथा शिक्षण–पद्धतियाँ

13.18 सारांश

13.19 अभ्यास के प्रश्न

13.20 चर्चा के बिन्दु

13.21 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.22 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.1 प्रस्तावना

अमरकोश में शिक्षा शब्द का प्रयोग षड्– वेदोगों में से एक वेदांग के लिए प्रयुक्त हुआ है। वैदिक काल में शिक्षा–शास्त्र का प्रयोजन वेदों की ऋचाओं का शुद्व उच्चारण सिखाना था धीरे–धीरे "शिक्षा" शब्द स्वर शास्त्र के लिए रूढ़ बन गया। व्युर्त्पान्त की दृष्टि से शिक्षा शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के "शिक्ष्" धातु से हुआ है जिसका अर्थ है सीखना और सीखना। विद्या तथा ज्ञान शब्द की व्युत्पति "विद्" धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है "जानना" पता लगाना " अथवा "सीखना"। धीरे– धीरे "विद्या" शब्द पाठ्यक्रम के रूप में रूढ़ हो गया।

भारतीय दर्शनों में 'ज्ञान' और 'शिक्षा' एक ही अर्थ रखते है तथा शिक्षा को तृतीय नेत्र की संज्ञा भी दी गई है जिस प्रकार शिक्षा का अर्थ मात्र सूचनाओं का संग्रह ही नहीं है उसी प्रकार'' ज्ञान का प्रयोग भी व्यापक रूप में किया जाता है। आज कल शिक्षा शब्द का प्रयोग अनेक रूपों में किया जाने लगा है– प्रथम औपचारिक शिक्षा, निश्चित, समय, निश्चित स्थान, निश्चित उद्देश्यों को ध्यान में रख कर दी जाने वाली शिक्षा है जिसे संकुचित शिक्षा भी कहा जाता है। द्वितीय अनौपचारिक शिक्षा, जिसका समय, स्थान निश्चित नहीं होता है यह अनवरत् रूप से चलने वाली शिक्षा है। अनौपचारिक शिक्षा को व्यापक शिक्षा भी कहा जाता है। तृतीय प्रकार की शिक्षा निरौपचारिक शिक्षा है जिसमें औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों के गुण शामिल रहते है। अनौपचारिक शिक्षा अथवा व्यापक शिक्षा के अंतर्गत शिक्षा का उद्देश्य, निर्धारित दिशाएँ, शिक्षा योजना, शिक्षा गुण आदि किसी भी विषय का पूर्व निर्धारण कठिन हो जाता है। इसलिए औपचारिक शिक्षा अथवा संस्थागत शिक्षा ऐसी प्रकिया है, जिसके अंतर्गत परिपक्व व्यक्ति द्वारा अपरिपक्व व्यक्ति एक निर्धारित दिशा की ओर अग्रसरित करने का संकल्प युक्त प्रयास किया जाता है। इस संदर्भ में ब्राउडी द्वारा दी गई व्याख्या द्रष्टव्य है–

''अतएवं व्यापक तथा सामान्य अर्थों में शिक्षा अधिगम के मार्ग दर्शन तथा नियंत्रण द्वारा अनुभव की पुनर्रचना करने का सुविचारित प्रयास है।'' प्रयोजनवादी दार्शनिक जॉन डिवी के अनुसार तो शिक्षा का अर्थ ही अनुभवों का निर्माण एवं पुननिर्माण है, इस दृष्टि से पाठशाला के बाहर जो भी अनुभव प्राप्त किए जाते है, वे सभी शिक्षा के अंग है।

शिक्षा अनवरत् चलने वाली प्रकिया है वर्तमान में शिक्षा का उद्देश्य अत्यन्त ही संकुचित हो गया है यह जीणिकोपार्जन का माध्यम मात्र बन गई है किन्तु वास्तविक शिक्षा ऐसी नहीं है। शिक्षा तो हमें अन्धकार से प्रकाश की तरफ ले जाती है। सा विद्या या विमुक्तये। शिक्षा वह है जो हमें सही और गलत में भेद करना सिखाये, अज्ञान से ज्ञान की तरफ ले जाए, शिक्षा वह है जिसके माध्यम से हम स्वंय को जान सके, जीवन के उद्देश्य को समझ सकें। सत्यम् शिवम और सुन्दरम् को समझना और उसकी प्राप्ति करना ही वास्तविक शिक्षा है।

13.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेगें कि–

1. शैक्षिक समाजशास्त्र का अर्थ की विवेचना कर सकेंगे।
2. शैक्षिक समाजशास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध को समझ सकेंगे।
3. शिक्षा के प्रमुख कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।

13.3 ज्ञान का सामाजिक परिप्रेक्ष्य

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जो समाज में रहकर ही अपना विकास कर सकता है। मानव के विकास में शिक्षा का स्थान सर्वोपरि माना जाता है इस प्रकार समाज का शिक्षा से धनिष्ठ सम्बन्ध है और समाज अपनी आवश्यकताओं, आकॉक्षाओं एवं आदर्शों के अनुकूल शिक्षा की प्रकिया को सुनियोजित करके अपने आदर्शों के अनुकूल शिक्षा की प्रकिया को सुनियोजित करके अपने आदर्शों की प्राप्ति की चेष्टा करता है साथ ही साथ समाज व्यक्ति को अपना उपयोगी एवं श्रेष्ठ सदस्य बनाने का प्रयत्न भी करता है। मनुष्य यह कार्य तभी कर सकेगा जब वह समाज के साथ अनुकूलन कर पाएगा तथा समाज की मान्यताओं एवं मूल्यों के अनुरूप अपने आचरण में परिवर्तन कर सकेगा। समाज अपनी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा की व्यवस्था करता है जिससे शिक्षा का स्वरूप समाज की आवश्यकताओं के अनुसार निर्मित होता है अथवा समाज ही शिक्षा का महत्वपूर्ण आधार है शिक्षा अथवा ज्ञान के सामाजिक परिप्रेक्ष्य को समझने से पूर्ण समाज का समाज शास्त्रीय अर्थ समझना आवश्यक है।

13.4 समाज का समाजशास्त्रीय अर्थ

समाजशास्त्र एक नया अनुशासन है। समाजशास्त्र में 'समाज' शब्द का प्रयोग सामाजिक सम्बंधो के ताने– बाने के लिए किया जाता है। इस दृष्टिकोण से 'समाज' एक मूर्व संगठन नहीं है, अपितु सामाजिक सम्बंधो की एक अमूर्त व्यवस्था मात्र है। सामाजिक सम्बन्ध कम से कम हो व्यक्तियों के बीच सीापित होते है तथा इसके साथ ही यह भी अनिवार्य है कि वे एक दूसरे के अस्तित्व के अस्तित्व के प्रति जागरूक हो तथा परस्पर अन्तः क्रिया भी कर रहे हो। यदि किसी स्थान पर हो या दो से अधिक व्यक्ति विद्यमान हो परन्तु उनमें किसी प्रकार के सम्बन्ध न हो और न ही वे एक दूसरे को किसी भी रूप में प्रभावित कर रहे हों तो उस स्थिति में व्यक्तियों क समूह को समाज नहीं कहा जा सकता है।

13.5 परिभाषा

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार, ''समाज रीतियों एवं कार्य–प्रणालियों, प्रभुत्व एवं पारस्परिक सहयोग, अनेक समूहों और उनके विभाजनों की मानव व्यवहार के नियंत्रणों एवं स्वाधीनताओं की एक व्यवस्था है''।

13.6 समाजशास्त्र का अर्थ एवं परिभाशाएँ

समाजशास्त्र एक नया अनुशासन है। अपने शाब्दिक अर्थ में समाजशास्त्र का अर्थ है– समाज का विज्ञान। इसके लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द सोसियोलॉजी लैटिन भाषा को सोसस (Socus) तथा ग्रीक भाषा के लोगस (Loges) दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ क्रमशः समाज तथा विज्ञान है। इस प्रकार सोसियोलॉजी शब्द का अर्थ भी समाज का विज्ञान होता है।

एक स्वंतत्र शास्त्र के रूप में समाजशास्त्र का विकास 19 वीं शताब्दी में प्रारंभ हुआ। फ्रांसीसी दार्शनिक कॉम्टे (1778–1857ई0) सबसे पहले व्यक्ति है जिन्होंने समाज के वैज्ञानिक अध्ययन का शुभारम्भ किया ।कॉम्टे के बाद इंग्लैण्ड के हरबर्ट स्पेन्सर ने इस क्षेत्र में कार्य किया। 1876 में उनकी प्रिन्सी पिल्स ऑफ सोसियोलाजी (Principles of Sociology) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इसमें समाजशास्त्र के स्वरूप एवं विषय क्षेत्र को निश्चित करने का प्रयत्न किया गया है। अनेकों समाजशस्त्रियों ने समाजशास्त्र को अपने– अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया किन्तु अभी तक समाजशास्त्र के सम्प्रत्यय के विषय में समाजशास्त्री एकमत नहीं है। यहाँ कुछ मुख्य समाजशस्त्रियों के विचार प्रस्तुत कर समाजशास्त्र के सम्प्रत्यय को समझने का प्रयत्न करेंगें–

कॉम्टे के अनुसार,'' समाजशास्त्र में समाज के विभिन्न अंगो का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।''

गिडिंग्स के अनुसार, '' समाजशास्त्र समग्र रूप से समाज का क्रमबद्व वर्णन और व्याख्या है।''

"Sociology is the Systematic description and explanation of society viwed as a whele' – Giddengs.

मैकाइवर एवं पेज, '' समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों का व्यवस्थित अध्ययन है,सामाजिक सम्बन्धों के जाल को हम समाज कहते है।''

"Sociology is the about social relationship, the network of relationship,we call society'- Maciver and page

गिलिन एवं गिलिन के अनुसार,'' अपने विस्तृत अर्थ में समाजशास्त्र जीवित प्राणियों के एक दूसरे के सम्पर्क में आने से उत्पन्न अन्तः क्रियाओं का अध्ययन है''

"Sociology is its broadest sense may be said to be the study of interactios arising from the association of living being.'- Gillen and Gillen

"Sociology include every kind and degree of relationship entered into by mean and any other social beings"- Maciver and page

गिडिंग्स के अनुसार, '' समाज स्वंय एक संघ है, यह एक संगठन तथा औपचारिक सम्बन्धों का योग है ,जिसमें सहयोग देने वाले व्यक्ति एक– दूसरे से सम्बन्धित होते है।''

"Sociology is the union itself or the organization, the sam total of forma relations in which associating individuals are bound to gether.' - Giddings

जिन्सवर्ग के अनुसार,'' समाज ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो कुछ सम्बन्धों या व्यवहार – विधियों द्वारा संगठित है तथा उन व्यक्तियों से भिन्न है, जो इन सम्बंधों में नहीं बंधे हुए है या जो व्यवहार में उनसे भिन्न है।''

"Society is the collection of individuals united by crtain relations or modes of behavior which mark them off from other , who do not enter in those relations or who differ from them in behavior'

उपयुक्त परिभाषाओं के आधार हम कह सकते हैं कि–

- केवल व्यक्तियों के समूह को समाज नहीं कहा जा सकता
- व्यक्ति सामाजिक प्राणी होने के नाते जिस संगठन को जन्म देता है वह समाज कहलाता है।
- समाज 'सामाजिक सम्बंधों की व्यवस्था को कहा जाता है। ये सम्बन्ध उन सभी व्यक्तियों के बीच पाए जाते है जो मानव समाज के सदस्य होते है।
- समाज अपने संगठन के सदस्यों के व्यवहारों तथा सम्बंधों को नियंत्रित और निर्देशित भी करता है।
- समाज में रहने वाले व्यक्ति परस्पर व्यवहार भी करते है जिससे उनमें परस्पर सामाजिक सम्बंधों की स्थापना होती है।

यदि उपरोक्त परिभाषाओं का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाये तो स्पष्ट होगा कि सभी दृष्टिकोण एक ही तथ्य को भिन्न रूप से प्रस्तुत करते है। कॉम्टे तथा मैकाइवर एवं पेज ने सामाजिक अंगो तथा सामाजिक सम्बंधों के अध्ययन पर बल दिया है। जो लगभग एक समान नहीं है गिड़िग ने समाज के क्रमबद्व अध्ययन पर जोर दिया है। गिलिन एवं गिलिन ने अन्तः क्रिया को महत्तवपूर्ण माना है तथा समाजशास्त्र के अध्ययन के लिए अन्तः क्रिया के अध्ययन पर बल दिया है परिभाषाओं के विश्लेषण के पश्चात् समाजशास्त्र को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है–

''समाजशास्त्र ज्ञान की वह शाखा है जिसमें समाज अथवा सामाजिक सम्बन्धों का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है और सामाजिक सम्बन्धों को समझने के लिए सामाजिक क्रियाओं, सामाजिक अन्तः क्रियाओं और इन सब क्रियाओं के परिणामों का अध्ययन किया जाता है।''

13.7 समाजशास्त्र का अर्थ

समाज– विज्ञान के विकास का इतिहास सन्1887 में फ्रेच दार्शनिक आगस्ट कॉमटे[2] के समय से स्पष्ट रूप से प्रारम्भ होता है उन्होनें सन् 1837ई0 में कई व्याख्यानों में 'सोशियोलॉजी, शब्द का प्रयोग किया। समाज–विज्ञान से उनका तात्पर्य वैज्ञानिक विधियों का उपयोग मानव तथा समाज के सम्बन्ध के अध्ययन में करना था। कॉमटे महोदय ने इस विषय को 'शुद्व ज्ञान की संज्ञा दी ,क्योंकि इसका अध्ययन अत्यन्त विधिपूर्ण अनुसंधानों द्वारा हो सकता है।

समाजशास्त्र के प्रमुख प्रवर्त्तकों में हर्बर्ट स्पेन्सर[3] फ्रेड्रिक लेप्ले[4] का नाम लिया जा सकता है। स्पेन्सर महोदय ने सन् 1876 ई0 में 'प्रिन्सिपल्स ऑफ सोशियोलॉजी नामक पुस्तक लिखी, जिसने समाज – विज्ञान के विकास में बहुत महत्वपूर्ण योग दिया। फ्रेड्रिक लेप्ले महोदय ने समाज विज्ञान के वैज्ञानिक तथा वस्तुनिष्ठ अध्ययन पर बल दिया। इसके अतिरिक्त डकन[6] मैकाइवर[7],बोगार्डस[8], मैरिल[9] और एलरिज[10] इत्यादि ने भी समाज– विज्ञान को एक स्वतंत्र विषय का रूप प्रदान करने में और उसका वैज्ञानिक अध्ययन करने में महत्वपूर्ण योग दिया।

अब हमारे सामने यह प्रश्न आता है कि समाज– विज्ञान किसे कहते है ? इस विज्ञान का उद्देश्य क्या है ? वस्तुत : समाज– विज्ञान सामाजिक प्रतिक्रिया से सम्बन्ध रखता है यह समूह का अध्ययन करता है। यह हर एक उस वस्तु का अध्ययन करता है जो मानव व्यवहार पर कुछ–न–कुछ प्रभाव डलाती है। यह सम्पूर्ण सांस्कृतिक दाय, रीति –रिवाज, परम्पराओं, लोक–कथाओं, लोक–ज्ञान, लोक–व्यवहार, लोक–हित ,धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं, जातियों का वर्गीकरण,आर्थिक समस्याओं, भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव, अपराध, मानव का उद्विकास और इसी प्रकार अनेक समस्याओं का अध्ययन करता है। संक्षेप में, हम कह सकते है कि समाज विज्ञान सम्पूर्ण मानव–संस्कृति का अध्ययन करता है इस सांस्कृतिक चेतना का –भौतिक हो अथवा अध्यात्मिक–जो ग्राहय है, व्यावहारिक और अनुकरणीय है तथा भाषा के द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित की जा सकती है, अध्ययन करना समाज–विज्ञान का कार्य है।

मूर और कोल महोदय के अनुसार– ''समाज – विज्ञान समाज के बहुमुखी व्यवहार का अध्ययन करता है।'' इस बहुमुखी व्यवहार का अर्थ व्यक्ति के उस

व्यवहार से है जो समाज के अन्य विभिन्न व्यक्तियों के प्रति होता है। इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि समाज– विज्ञान सामाजिक प्रतिक्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन करता है। सामाजिक प्रतिक्रिया का अध्ययन प्रत्येक उस प्रतिक्रिया से सम्बंधित है जो व्यक्ति और समाज के मध्य मे होता है। तात्पर्य यह कि समाज में हर प्रकार के मानव सम्बंधों का अध्ययन ही समाज विज्ञान के अध्ययन का विषय है।

इसमें कोई सन्देंह नहीं है कि मानव एक सामाजिक प्राणी है। उसका जन्म एक परिवार में होता है, जो उसके प्राथमिक समाज का रूप लेता है। इसके पश्चात् जैसे– जैसे वह बड़ा होता जाता है, दूसरे व्यक्ति उसके संपर्क में आते जाते है और उसके समाज का दायरा विस्तृत होता जाता है। कुछ व्यक्तियों से वह स्वंय मिलना चाहता है, कुछ उससे सम्पर्क बढ़ाना चाहते है। भविष्य – निर्माण के लिए दूसरों के सम्पर्क में आना उसके लिए अच्छा समझा जाता हैः जैसे– स्कूल में जाना, सामूहिक उत्सवों में सम्मिलित होना इत्यादि। सामाजिक सम्पर्क एवं सम्मेलन व्यक्ति के ऊपर प्रभाव डालते है और ये सामाजिक प्रभाव ही उसके व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होते है। ये प्रभाव किस प्रकार से कार्य करते है और व्यक्तिव की प्रतिक्रियाओं में परिवर्तन ला देते है? समाज–विज्ञान इन सबकी व्याख्या करने की चेष्टा करता है। समाज– विज्ञान सामाजिक संस्थाओं (जैसे– परिवार , राष्ट्र, धर्म, राज्य, इत्यादि) की प्रकृति की व्याख्या करता है। इन सामाजिक परिवर्तनों का जो सामूहिक जीवन में होते रहते है, उनका अध्ययन भी समाज– विज्ञान करता है।यह सामाजिक जीवन में प्रतियोगिता द्वन्द्व , सहयोग , सामाजिक स्थिति, सामाजिक नियंन्त्रण , सामाजिक परिवर्तन का भी विश्लेषण करता है, अतएव हम मोटे रूप से समाज– विज्ञान की परिभाषा दे सकते है कि ''समाज– विज्ञान वह विज्ञान है जो व्यक्ति और समाज के सम्पूर्ण सम्बन्धों (वैयक्तिक, पारस्परिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक) की व्याख्या करता है एवं उनकी आपसी सम्पर्क – जनित प्रतिक्रियाओं को अध्ययन एवं विश्लेषण करता है।

13.8 शैक्षिक समाजशास्त्र

शिक्षा–समाज– विज्ञान – यह समाज– विज्ञान का एक प्रभावशाली अंग है यह समाज– विज्ञान के उद्देदश्यों की शैक्षिक क्रिया द्वारा, जो व्यक्ति तथा समाज के मध्य होती है, प्राप्त करने की चेष्टा करता है। इस विषय का विकास भी आधुनिक काल में बड़ी शीघ्रता से हुआ है इसके विकास के सम्बन्ध में कुछ मुख्य शिक्षाशास्त्रियों के नाम उल्लेखनीय है – जॉर्ज पायन[2] जॉन डीवी[3], डेविड स्नेडेन[4], सी0सी0 पीटर्स[5], फ्रैडरिक ई0 बोल्टन[6] लायड एलैन कुक[7], विलार्ड वॉलर[8],जार्ज काउन्टस[9], एलसीन डेविस[10],हिल्डा टाबा[11], हैविंघर्स्ट[12], डोलार्ड[13], स्लोवसन[14], हेलेन जेनिंग्स[15] ,रॉस फिने[16], अमरीका केः दुर्खीम' फ्रांस के मेक्स वेबर[2] जर्मनी के, तथा सर फ्रेड कलार्क[3], ओटोवे[4], कार्ल मानेहम[5] इंग्लैण्ड के हैं। शिक्षा–समाज–विज्ञान की इस महान् प्रगति का सर्वाधिक श्रेय जॉन डी0वी0 तथा पेयन महोदय को है।

पेयन महादेय ने 1928 ई में 'दि प्रिन्सिपल्स ऑफ एजूकेशन सोसियोंलॉजी[6] नामक पुस्तक लिखी। इस प्रुस्तक में उन्होने सामूहिक जीवन पर शिक्षा का प्रभाव तथा शिक्षा पर सामूहिक प्रतिक्रिया के ज्ञान को शिक्षा द्वारा अध्ययन करना सामाजिक प्रगति का एक आवश्यक अंग माना। उन्होनें प्रतिपादित किया कि शिक्षा का मूल

उद्देश्य, व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास, तभी सफलतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है जब व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास सामाजिक वातावरण के प्रति व्यक्ति की प्रतिक्रिया पर ही आधारित हों।

जॉन डीवी महोदय ने भी सामाजिक प्रवृत्तियों का शिक्षा में बहुत महत्वपूर्ण स्थान माना। उन्होनें अपनी पुस्तकों–'दि स्कूल एण्ड सोसाइटी[7] तथा डेमोक्रेसी एण्ड ऐजूकेशन8 द्वारा शिक्षा में व्यक्ति की सामाजिकता के महत्व पर प्रकाश डाला। उन्होने कहा कि व्यक्ति द्वारा जाति की सामाजिक चेतनाओं में भाग लेने से शिक्षा का पूर्ण विकास होता है। तात्पर्य यह है कि शिक्षा की क्रिया एक सामाजिक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया पाठशाला द्वारा अपने गन्तव्य को पहुँचाती है। अतः पाठशाला एक सामाजिक संस्था है जो समाज को शुद्ध तथा प्रगतिशील बनाती है तथा व्यक्ति को समाजिकता से परिचित करती है।

भारत में शिक्षा का संगठन आरम्भ से ही सामाजिकता की भावना से पूर्ण रहा है। सामाजिक भावना का प्रभाव शिक्षा पर पड़ा और शिक्षा ने समाज की उन्नति के ध्येय को सामने रखा। शिक्षा के उद्देश्यों में व्यक्तिगत तथा सामाजिक उत्थान एक परम उद्देश्य माना गया है। कर्तव्य को महान् महत्ता प्रदान करके भार के ऋषियों ने समाज–सेवा की भावना को भारवासियों की नस–नस में भर दिया था। परन्तु ब्रिटिश–कालीन भारत में भारतीय समाज की पूर्ण अवहेलना की गयी। यहाँ के नागरिकों पर एक ऐसी शिक्षा प्रणाली थोपी गयी जिसका आधार पाश्चात्य सामाजिक जीवन था। फलस्वरूप, शिक्षा प्रणाली दोषों से परिपूर्ण हो गयी। स्वतंत्रता के पश्चात् अब इस बात की चेष्टाएँ की जा रही हैं कि शिक्षा प्रणाली में सुधार हो और यह सामाजिक सुधार की भावना से युक्त हो तथा सकी जड़े भारतीय समाज के सुन्दर आदर्श, नियम, परम्पराओं इत्यादि पर रखी हों। अतएव वर्तमान काल में समाज–विज्ञान का प्रभाव भारतीय शिक्षा पर शीघ्रता से बढ़ रहा है। इसी कारण एक भावी शिक्षक के लिए यह अत्यंत आवश्यक हे कि वह शिक्षा–समाज से पूर्णरूपेण अवगत हो।

13.9 शैक्षिक समाजशास्त्र विज्ञान का अर्थ

अब तक हमने शिक्षा–समाज–विज्ञान पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार किया। परन्तु इससे पहले कि हम उसके बारे में अधिक विवेचन करें हमें इसके अर्थ को समझ लेना चाहिए। समाज–विज्ञान की तरह शिक्षा–समाज–विज्ञान का मूल मंत्र भी सामाजिक प्रतिक्रिया का अध्ययन करना है। **ब्राउन महोदय** के अनुसार ''सब शिक्षा व्यक्ति की जाति की समाजिक चेतना में भाग लेने के द्वारा संचालित होती है।''ओटवे महोदय का कथन है कि ''शिक्षा समाज–विज्ञान का प्रारम्भ इस दृष्टिकोण को अपनाकर होता है कि शिक्षा एक क्रिया है जो समाज में हेाती है और उसके उद्देश्य और विधियाँ उस समाज की प्रकृति पर निर्भर होती है जिसमें कि वह क्रिया होती है। 2 शिक्षा–समाज–विज्ञान समाज के विभिन्न अंगों की व्यक्ति के साथ होने वाली प्रतिक्रिया का अध्ययन कर शिक्षा के माध्यम द्वारा प्राप्त करने पर बल देता है। शिक्षा, विद्यालय एवं शिक्षण की सीमाएँ विशेष रूप से समाज की समास्याओं के रूप में ही देखी जाती हैं, उदाहरण के लिए, किस प्रकार की शिक्षा बालकों को दीय जाये? उस शिक्षा का पाठ्यक्रम क्या हो? कौन–कौन सी पुस्तकं पढ़ायी जाये? इसके अतिरिक्त बालक कक्षा से भाग क्यों जाता है?, अथवा क्यों बाल–अपराधी बन जाता है? इन सब प्रश्नों के उत्तर समाज की प्रकृति तथा उसके रूवरूप के अध्ययन द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षा समाज विज्ञान इन समास्याओं का उपयुक्त हल ढूँढ़कर उनके उपयोग करने की विधि को भी प्रस्तुत करता है। यह विज्ञान जन–समूह एवं संस्थाओं आदि पर विचार एवं विश्लेषण प्रस्तुत करता है तथा उन सामाजिक क्रियाओं पर प्रकाश डालता है जो शिक्षण–क्रिया में महत्वपूर्ण है। सूक्ष्म रूप से हम कह सकते हैं कि यह विज्ञान सम्पूर्ण शैक्षिक प्रक्रिया का विश्लेषण तथा उपयोग करता है। जो व्यक्तित्व के विकास में योग प्रदान कर, व्यक्ति को श्रेष्ठ सामाजिक प्राणी बनाता है।

शैक्षिक समाजशास्त्र के अध्ययन का विस्तार (Scope of Educational Sociology)– शिक्षा–समाज–विज्ञान जैसा कि हम ऊपर वर्णन करे चुके है, शिक्षा पर सामाजिक प्रतिक्रिया का प्रभाव और सामाजिक प्रतिक्रिया पर शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन करता है। जो विशिष्ट समस्याएं इसके अध्ययन का महत्वपूर्ण अंग हैं, वे निम्न प्रकार हैं–

1. अध्ययन का समाज में क्या महत्व है? तथा किस प्रकार इसे अधिक व्यापक बनाया जा कसता है?

2. शिक्षक और विद्यार्थी के सम्बन्ध कैसे होने चाहिए? सामाजिक भावनाओं का इन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

"All education proceeds by the participation of the individual in the social consciousness of the race.'- Brown.

The education is an activity which goes on in a society, and its aims and methods depend on the nature of the society, in which it takes place'-
Ottaway

3. सामाजिक तत्व को छोटी–छोटी इकाईयों में विभाजित करना। पाठशाला, खेल –साथी इत्यादि और उनके परस्पर सम्बन्ध तथा पारस्परिक प्रभाव का अध्ययन करना।
4. स्थायी समाज की आवश्यकताओं और प्रेरणाओं का अध्ययन करना।
5. स्थानीय सामाजिक संस्थाओं और विद्यालयों में सम्बन्ध स्थापित करना।
6. सामाजिक जीवन का व्यक्ति तथा विद्यालय पर प्रभाव का अध्ययन करना।
7. आदर्श सामूहिक जीवन के द्वारा तथा विद्यालय में उच्च शिक्षा के द्वारा जनतंन्त्रीय भावना को प्रोत्साहित करना।
8. पाठ्यक्रम में ऐसे वांछनीय परिवर्तन करना जो समाज तथा व्यक्ति, दोनों की प्रगति में सहायक हों।
9. अन्वेषण तथा आलोचनात्मक चिन्तन को प्रोत्साहित करना तथा अन्वेषण द्वारा प्राप्त निष्कर्षो का समाज तथा व्यक्ति की प्रगति के लिए उपयोग करना।
10. सामाजिक प्रक्रिया में प्रेस, रेडियों और सिनेमा के महत्व का मूल्यांकन एवं अध्ययन करना।
11. शिक्षा द्वारा सामाजिक प्रगति तथा सामाजिक नियंत्रण कैसे संभव है उन उपायों को ढूढ़ निकालना।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिक्षा–समाज–विज्ञान के विषय–विस्तार में सब प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन आता है, जो समाजिक दृष्टि से एक विद्यार्थी के व्यक्तित्व पर किसी भी प्रकार का दबाव डालते हैं।

13.10 शैक्षिक समाज शास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध

शिक्षा–समाज–विज्ञान, समाज विज्ञान का ही एक अंग है। परन्तु इसका सम्बन्ध दूसरे विषयों से भी है। इन विषयों से यह स्वयं प्रभावित होता है और उनके उद्देश्यों को भी प्रभावित करता है।

1. इतिहास– शिक्षा–समाज–विज्ञान का इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इतिहास उन सामाजिक शक्तियों का अध्ययन पुरातन–काल से आज अर्वाचीन–काल तक करता है जो सामाजिक परिवर्तन में बहुत बड़ा येाग देती रही है। इतिहास का यह ज्ञान शिक्षा–समाज–विज्ञान को सामाजिक शक्तियों, उनकी प्रकृति एवं स्वरूप तथा उनकी कार्य प्रणालियों से सम्बन्ध में सूझ प्रदान करता है।
2. विज्ञान– शिक्षा–समाज–विज्ञान रसायनशास्त्र तथा भौतिक शास्त्र से उसी सीमा तक सम्बन्धित है, जहाँ तक कि उसका ज्ञान व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक हेाता है। परन्तु जीवनशास्त्र से इस विज्ञान का सम्बन्ध अधिक घनिष्ट है। जीवनशास्त्र के अध्ययन द्वारा मानव के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। यह ज्ञान शिक्षा–समाज–विज्ञान के लिए अत्यंत उपयोगी है। यह निःसन्देह है कि शिक्षा–समाज–विज्ञान जीवनशास्त्र के बहुत से तत्वों, से प्रभावित होता है। किन्तु कुछ ऐसे तथ्यों को जिन्हे जीवनशास्त्र प्रतिपादित करता है, शिक्षा–समाज–विज्ञान प्रकृति रूप में अस्वीकार करके उनका उचित समाजीकृत रूप हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जैसे व्यक्ति के व्यवहार के सम्बन्ध में जीवनशास्त्र वंशानुक्रम को सबसे अधिक महत्व देता है,परन्तु शिक्षा–समाज–विज्ञान व्यक्ति के व्यवहार के सम्बन्ध में सामाजिक प्रक्रिया पर अधिक बल देता है। फल यह होता है कि हम वंशानुक्रम को उचित स्थान देकर

अच्छे सामाजिक वातावरण द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में सुधार कर सकते हैं, क्योंकि व्यक्तित्व के निर्माण में वंशानुक्रम और सामाजिक वातावरण, दोनों का महत्वपूर्ण योग होता रहता है।

3. मनोविज्ञान– मनोविज्ञान और समाज–विज्ञान का गहन सम्बन्ध है। मनोविज्ञान मानव–विज्ञान तथा व्यवहार का अध्ययन करता है। वंशानुक्रम तथा वातावरण का प्राणी के जीवन पर जो प्रभाव पड़ता है , मनोविज्ञान उसका विवेचन तथा विश्लेषण करता है। यह मूलप्रवृतियों, सामान्य स्वाभाविक प्रवृतियों, वंशानुक्रम के नियम, सवेंग इत्यादि के सम्बन्ध में अध्ययन करता है। इसके अतिरिक्त अद्धचेतन, अचेतन मन तथा इसका व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है।, इसके सम्बन्ध में जानने का प्रयत्न करता है। इस सम्पूर्ण जानकारी के द्वारा सीखने की क्रिया को सुगम एवं स्वस्थ बनाना ही शिक्षा–मनोविज्ञान का विषय हो जाता है। शिक्षा–मनोविज्ञान इस बात की व्याख्या करता है कि शिक्षा तथा शिक्षण किन–किन दशाओं में उत्तम रूप से प्रदान किया जा सकता है।

शिक्षा–समाज–विज्ञान द्वारा सीखने की क्रिया सामाजिक तत्वों के स्थान एवं ग्रहण का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार दोनों ही विषयों का महत्व शिक्षा एवं शिक्षण में बहुत अधिक है। दोनों ही विषय बालक के व्यक्तित्व के विकास पर प्रकाश डालते हैं। मनोविज्ञान का दृष्टिकोण व्यक्ति के चेतन तथा अचेतन मन के विकास पर बल देकर व्यक्तित्व को समझना होता है, जबकि समाज–विज्ञान सामाजिक दृष्टिकोण से व्यक्तित्व के विकास पर बल डालता है। वास्तव में यदि व्यापक दृष्टि से देखा जाए तो मनोविज्ञान तथा शिक्षा –समाज–विज्ञान के दृष्टिकोण में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई पड़ेगा, क्योंकि दोनों ही विषयों के अध्ययन का विषय मानव है। आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान, सामाजिक वातावरण जो परिवार, विद्यालय और समाज में पाया जाता है का अध्ययन करता है। सामाजिक वातावरण का मानव के व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है? अचेतन मन और व्यक्ति की मूल प्रेरणाएं एवं संवेग उसे कहाँ तक प्रभावित करते है? इसका अध्ययन भी उसी के अन्तर्गत आता है। यह आदत, सीखना, झुकाव, रूझान, चरित्र, प्रेरणाओं इत्यादि पर भी प्रकाश डालता है। शिक्षा–समाज–विज्ञान को इस ज्ञान से बहुत सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त मनोविश्लेषणवादियों ने अचेतन मन पर कितना प्रकाश डालकर यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्तित्व के निर्माण में अचेतन मन का कितना महत्वपूर्ण योग होता है। समाज की प्रगति और उसके स्वरूप को समझना तथा समाज पर नियत्रंण रखना तब तक संभव नहीं , जब तक कि समाज को बनाने वाले व्यक्तियों के मन की गहराईयों का अध्ययन न कर लिया जाये। अचेतन का अध्ययन कना शिक्षा–समाज–विज्ञान का विषय नहीं है, परन्तु मनोविज्ञान का एक मुख्य अंग है। अतः शिक्षा–समाज–विज्ञान अचेतन मन एवं तत्सम्बन्धी कार्यों के ज्ञान की उपलब्धि के लिए मनोविज्ञान से सहायता लेता है। इस कारण ये एक दूसरे के अत्यधिक निकट है।

समाज –मनाविज्ञान मनोवैज्ञानिक विधियों से समाज की प्रकृति और समाज एवं व्यक्ति की प्रक्रिया का अध्ययन करता है यही विषय शिक्षा–समाज–विज्ञान के अध्ययन का महत्वपूर्ण अंग है। अतएव इसमें कोई सन्देह नही कि इन दोनों विषयों का अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध है।

13.11 शैक्षिक समाजशास्त्र की सीमाएँ

शिक्षा–सामज विज्ञान ने शिक्षा की महान प्रगति में अत्यंत सहायता पहुँचायी हे। विज्ञान की इस शिक्षा ने हमें इस बात से अवगत करा दिया है कि शिक्षा तक सामाजिक प्रक्रिया है और यह तब तक उचित रूप से नहीं दी जा सकती, जब तक कि यह सामाजिक वातावरण और उसके मानव व्यक्तित्व पर प्रभाव का अध्ययन न करें। परन्तु सामाजिक दृष्टिकोण को ही यदि हम शिक्षा में सबसे प्रमुख मान लें तो शिक्षा की प्रगति बहुत अधिक नहीं हो सकती। हमें शिक्षा के उद्देश्य, विधियाँ, पाठ्यक्रम, अनुशासन की समास्या इत्यादि का निर्धारण शिक्षा–दर्शन के ज्ञान के आधार पर ही करना होगा, क्योंकि यही हमें इन समास्याओं के समाधान के लिए उचित दृष्टिकोण प्रदान करता है। शिक्षा–समाज–विज्ञान ही शिक्षा के सामाजिक स्वरूप एवं समाज और शिक्षा के सम्बन्ध को अन्योन्याश्रित बनाता है। किन्तु यह बताने में असफल है कि समाज कैसा होना चाहिए, इसके उद्देश्य क्या होने चाहिए, इसके कौन से आदर्श और मूल्य होने चाहिए, जीवन के दर्शन या उद्देश्य क्या होने चाहिए? इन सबका उत्तर केवल दर्शनशास्त्र ही दे सकता है। अतएव हम कह सकते हैं कि

शिक्षा–समाज–विज्ञान सीमित है। यह शिक्षा के सबसे महत्वपूर्ण अंगों को निर्धारित नहीं करता है। अतः इसे शिक्षा–दर्शन की परम आवश्यकता है ताकि शिक्षा का रूप सुंदर ढंग से निर्धारित हो सके।

13.12 शैक्षिक समाजशास्त्र तथा शिक्षा का समाजशास्त्र

अधिकतर समाजशास्त्री यह मानते है कि ऐमाइल दुर्खीम (Emile Durkheim) पहला चिन्तक था जिसने स्पष्ट रूप से शिक्षा के अध्ययन में समाजशास्त्रीय उपगमन पहला चिन्तक था जिसने स्पष्ट रूप से शिक्षा के अध्ययन में समाजशास्त्रीय उपगमन की आवश्यकता पर बल दिया। किन्तु दुर्खीम के स्पष्ट चिन्तन के बावजूद अनेक वर्षो। के पश्चात ही समाजशास्त्रियों ने इस दिशा में अपने अध्ययन प्रारम्भ किये। लेस्टर एफ0वार्ड (Lester F. Ward) के अध्ययनों के पश्चात ही जिन्होनें शिक्षा को एक सुधारने वाली एजेन्सी माना जिसका मुख्य कृत्य समाज का सुधार है समाजशास्त्री समाजशास्त्र को एक ऐसा क्षेत्र मानने लगे जो कि सामाजिक प्रगति तथा सामाजिक दोषों का हल प्रदान करता है।

फीनों, सेनेडेन, क्लीमेन्टस, एवं (Finney Shedden, Peters Clements and Kinneman) इत्यादि ने समाजशास्त्र की अवधारणा शिक्षा के उद्देश्यों के विश्लेषण के रूप में दी है। उनका प्रयास शिक्षा के सामाजिक दर्शन, समाज के विश्लेषण तथा मानव आवश्यकताओं के आधार पर विकसित करना की ओर था।

स्मिथ, ज़ोरबोग कुल्प (Smith, Zorbaugh, Kulp) तथा अनेक अन्य समाजशास्त्रियों ने शैक्षिक समाजशास्त्र को समाजशास्त्र का प्रयोग शैक्षिक समास्याओं के हल के लिए माना। इस दृष्टिकोण के अनुसार शैक्षिक समाजशास्त्र एक तकनीकी ही है विज्ञान कतई नहीं। फ्रान्सिस ब्राउन (Francis Brown) के अनुसार ''एक शैक्षिक समाजशास्त्री उन सबका उपयोग करता है जो उसने दोनों क्षेत्रों में सीखा है, किन्तु उनकों एक नवीन विज्ञान में शिक्षा की समस्त प्रक्रिया के सामाजिक सिद्धांतों का प्रयोग करके संयुक्त कर देता है।'' इस भाँति शैक्षिक समाजशास्त्र वह ज्ञान की शाखा वर्णन की जा सकती है जो कि समाजशास्त्र के सामान्य नियमों एवं खोजों को शिक्षा की प्रक्रिया में प्रयोग करता है जो कि शैक्षिक योजनाओं का पथ प्रदर्शन करते हैं। समाजशास्त्रीय अनुसंधानों के परिणामों को शैक्षिक कार्यक्रमों एवं क्रियाओं की योजना बनाने में उपयोग किया जाता है। शैक्षिक समाजशास्त्र ऐसे आदर्श स्थापित करता है जो कि शैक्षिक योजनाओं का पथ प्रदर्शन करते हैं। समाजशास्त्रीय अनुसंधान शिक्षा के निदेश देते हैं। उस दशा में जिसमें समाजशास्त्रियों द्वारा एकत्रित ज्ञान शैक्षिक कार्यक्रमों के लिए अपर्याप्त होता है शैक्षिक समाजशास्त्री अपने अनुसंधानों द्वारा उस ज्ञान की पूर्ति करता है। पूर्व काल में अनेक दिशाओं में शैक्षिक समाजशास्त्रियों ने अनुसंधान किये हैं। शिक्षा का समुदाय में क्या स्थान है इसका विश्लेषण किया गया है। अनेकों प्रयास विद्यालयों में सामाजिक अन्तः क्रिया को समझने के लिए तथा उनमें सामाजिक भूमिकाओं की प्रकृति के लिए किये गये हैं।

जैसे–जैसे अनुसंधानों की संख्या में वृद्धि होती गयी एवं उन दिशाओं में जिनमें यह अनुसंधान होते गये बढ़ोतरी हुई तो इस सम्बन्ध में भ्रम बढ़ते गये कि शैक्षिक समाजशास्त्र की उचित विभायें क्या होगी। विभेद इस बात में उत्पन्न हो गये कि किस प्रकार के अनुसंधानों के शैक्षिक समाजशास्त्र के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इस विभेद के कारण ही इस प्रकार का चिन्तन उभरा कि ज्ञान की एक अन्य अलग शाखा है जिसे हम शिक्षा का समाजशास्त्र कह सकते हैं (Sociolgogy of Education) इसके पश्चात् शीघ्रता से शैक्षिक समाजशास्त्र एक ऐतिहासिक घटना बनकर रह गया है। सन् 1963 में जनरल ऑफ ऐजूकेशनल सोशियोलॉजी (Journal of Educational Sociology) का नामकरण जनरल ऑफ सोशियोलॉजी ऑफ ऐजूशन (Journal of Sociology of Education) हो गया।

सन् 1928 में ऐनजेल (Angell) ने यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि शैक्षिक समाजशास्त्र केवल समाजशास्त्र के शुद्ध विज्ञान की एक शाखा है। उसने उस ज्ञान के क्षेत्र को जो विद्यालय स्थित अनुसंधानों के आधार पर विकसित हुआ है शिक्षा का समाजशास्त्र कहना अधिक पसन्द किया। इस प्रकार उसने यह इंगित किया है कि विद्यालय का एक प्रदत्त सामग्री के स्त्रोत के रूप में विश्लेषण किया जा सकता है। बाद में रूयटर (Reuter) ने इसी प्रकार का इस क्षेत्र का वर्णन किया है। उसने भी इस बात पर बल दिया कि अध्ययन का

एक क्षेत्र विकसित किया जाना चाहिए जिसे शिक्षा का समाजशास्त्र कहा जाना चाहिए। यह केवल समाजशास्त्र के शिक्षा में प्रयोग से ही सीमित नहीं होगा जिसे कि अब तक हम शैक्षिक समाजशास्त्र कहते रहे हैं।

शिक्षा के समाजशास्त्र की परिभाषा हम सामाजिक प्रक्रियाओं और सामाजिक प्रतिमानों का जो कि शैक्षिक व्यवस्था में शामिल है वैज्ञानकि विश्लेषण कह सकते हैं। ब्रुकओवर एवं गोटलिब (Brookover and Gottlied) के विचार में ''यह मान लिया जाता है कि शिक्षा सामाजिक कार्यों का एक संयुक्त रूप है तथा समाजशास्त्र मानव अन्तःक्रिया का विश्लेषण है।'' शैक्षिक प्रक्रिया दोनों औपचारिक एवं अनौपचारिक स्थितियों में चलती रहती है। शिक्षा में मानव अन्तः क्रिया का समाजशास्त्रीय विश्लेषण इन दोनों स्थितियों में सम्मिलित किया करता है। ब्रूकओवर तथा गोटलिब के विचार में इस प्रकार के विश्लेषण के सम्बन्ध में यह माना जा सकता है कि यह शैक्षिक व्यवस्था में मानवीय सम्बन्धों के बारे में वैज्ञानिक सामान्यीकरण को विकसित करता है। उनका यह भी कहना है कि किसी भी पर्याप्त शिक्षा का समाजशास्त्र को मानव सम्बन्धों के बारें में अनुभवों को प्रस्तुत करना चाहिए जो कि ऐसे सिद्धांतों को संकलन को अनुसंधान द्वारा परीक्षण के लिए सामने लायें।

हम दैनिक समाजशास्त्र तथा शिक्षा के समाजशास्त्र में विभेद का वर्णन जेननीसकी (Znaniecki)[2] के अनुसार इस प्रकार कर सकते हैं '' शैक्षिक समाजशास्त्र शैक्षिक मनोविज्ञान की भांति एवं विधा विशेष की तरह विकसित हुआ है जो कि शिक्षा–शास्त्रियों को उनके भावी कार्यों के लिए ही तैयार करने के लिए रूपाकिंत हुआ। यह सामाजिक अनुसंधान के परिणामों का उपयोग शैक्षिक क्रियाओं की योजना बनाने में तथा इन योजनाओं को क्रियान्वित करने की प्रभावशाली विधियों को विकसित करने के लिए करता है।'' दूसरी ओर हम शिक्षा के समाजशास्त्र का वर्णन ज्ञान की उस शाखा के रूप में कर सकते हैं जो कि शिक्षा के एक सामाजिक सिद्धांत को प्रस्तुत करता हे। यह सिद्धांत विभिन्न विश्लेषणात्मक अध्ययनों द्वारा जो कि व्यक्तियों के बीच में आपसी अन्तःक्रिया औपचारिक विद्यालय जैसी शैक्षिक स्थितियों या अन्य बहु अनौपचारिक शैक्षिक स्थितियों में करने के द्वारा विकसित किया जाता है।

जो विश्लेषणात्मक अध्ययन शिक्षा के समाजशास्त्र के विस्तार क्षेत्र में आते हैं उनमें से कुछ का वर्णन हम कर रहे हैं।

शिक्षा का समाजशास्त्र सम्बन्धों का विश्लेषणात्मक अध्ययन शैक्षिक व्यवस्था का अन्य समाज के संगठनों के साथ, करता है। यह विश्लेषण अनेक उप–विभागों में किया जाता है जिसमें सम्मिलित है–(i) संस्कृति में शिक्षा के कृत्य, (ii) शैक्षिक व्यवस्था का सम्बन्ध सामाजिक नियंत्रण एवं सत्ता व्यवस्था के साथ, (iii) शैक्षिक व्यवस्था के कार्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रिया में या वही स्थित बनाये रखने में। (iv) शिक्षा का सामाजिक वर्ग या स्तर व्यवस्था से सम्बन्ध इत्यादि।

एक दूसरा जो विश्लेषणात्मक अध्ययनों का ब्रुकओवर एवं गोटलिब द्वारा प्रस्तुत किया गया वह है विद्यालय का विश्लेषण एवं सामाजिक व्यवस्था की भाँति। इस

1- Willbur B.Brookover, David Gottieb : A Sociology of Education, N.Y., American Book Co., 1964, p6.

2- Florian Znaniecki : "The Scientific Function of the Sociology of Education Educational Theroy, 1,2,195

क्षेत्र में दो सामान्य प्रकार के सामाजिक विश्लेषण का वर्णन किया जा सकता है– (i) विद्यालय संस्कृति की प्रकृति, विशेष करके ज बवह विद्यालय से बाहर की संस्कृति से विभिन्न है तथा (ii) विद्यालय समाज की संरचना या सामाजिक अन्तःक्रिया के प्रतिमान।

हम एक ऐसी व्यवस्था को जिसमें आपस में मिश्रित एक व्यक्ति तथा अनेंकों अन्य व्यक्तियों के बीच में सम्बन्ध होते हैं सामाजिक भूमिका (Social Role) कहते हैं। एक शिक्षक की सामाजिक भूमिका एक विद्यार्थी से भिन्न होती है। सामाजिक भूमिका या भूमिकाओं का विश्लेषण भी शिक्षा के समाजशास्त्र के अन्तर्गत आता है।

उपरोक्त तीनों क्षेत्रों के अतिरिक्त भी अनेकों अन्य क्षेत्र भी शिक्षा के सन्दर्भ में सामाजिक विश्लेषण के अन्तर्गत आते हैं और इनका विस्तार होता ही जा रहा है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. समाजशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा बताइए।

.....

.....

2. शैक्षिक समाजशास्त्र का अर्थ बताइए।

.....

.....

3. शैक्षिक समाजशास्त्र तथा शिक्षा का समाजशास्त्र से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

13.13 सामाजिक दृष्टिकोण से शिक्षा का अर्थ

समाज–विज्ञान के दृष्टिकोण सेन शिक्षा एक क्रिया है जो जीवन–भर चलती रहती है। शिक्षा से तात्पर्य केवल विद्यालय–शिक्षण से नहीं वरन् शिक्षा की क्रिया का प्रारम्भ मानव के जन्म लेने के समय ही हो जाता है और उसके मृत्यु–पर्यन्त चलता रहता है।

ब्राउन महोदय के अनुसार, ''शिक्षा एक चेतनाभूत नियन्त्रित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाये जाते हैं और व्यक्ति के द्वारा समूह में। यह चेतनाभूत नियत्रिंत प्रक्रिया से तात्पर्य है –बाह्म नियंत्रण। तात्पर्य यह है कि शिक्षा की प्रक्रिया से व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आन्तरिक न होकर बाहरी शक्तियों द्वारा होते हैं, जो वातावरण में निहित होती है। जब बालक कोई कार्य करना सीखता है (जैसे– अपने वस्त्र पहनना, अपने हाथ से भोजन करना) तो इस प्रकार के सीखने को हम शिक्षा की प्रक्रिया समझते हैं। परन्तु हर प्रकार के व्यवहार सम्बन्धी परिवर्तन शिक्षा के कारण नहीं होते है, जैसे– शिशु के मुँह से ध्वनि का निकलना, जो स्वतः होने वाली प्रक्रिया है और शरीर की बनावट के कारण हर शिशु के मुँह से निकलती है। परन्तु इसी ध्वनि को जब माता–पिता या समाज एक भाषा के रूप में संगठित कर देते हैं, तो यह शिक्षा की प्रक्रिया हो जाती है।

शिक्षा की प्रक्रिया भी विशेष रूप से एक सामाजिक प्रक्रिया ही है। इसके अनुसार, विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप बालक के व्यवहार में परिवर्तन लाया जाता हे बालक की मूल शक्तियों को सामाजिक वातावरण द्वाराप प्रेरणा मिलती है और वह सीखने लगता है तथा उसके व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है। यही शिक्षा है।

सामाजिक प्रतिक्रिया के बहुत–से रूप होते है जो कशलतापूर्वक एवं अधिक प्रभावशाली ढंग से सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी या किसी दूसरे उचित सामाजिक मूल्य सम्बन्धी हो –वही शिक्षा है। 2 इस प्रकार शिक्षा एक प्रक्रिया है जो सामाजिक प्रतिक्रिया द्वारा तथा सामाजिक प्रेरणा द्वारा स्वयं होती है। यह प्रक्रिया समाज की प्रगति में सहायक होती है और उचित सामाजिक संस्थाओं को प्रोत्साहित करती है। अन्त में, हम यह कह सकते हैं कि शिक्षा का उद्देश्य शिक्षा–समाज–विज्ञान के दृष्टिकोण में सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करना है। वास्तव में, सामाजिक प्रतिक्रिया का व्यक्ति पर जो प्रभाव पड़ता है उसी को शिक्षा कहते हैं।

1- Education is the consciously controlled process whereby changes in behavior are produced in the person and through the person within the group'

-Brown: Educational Sociology

2- That which makes for more effective participation in the total process of social interaction whether in terms of social, ecomomic, health, or any other socially desirable value is education

13.14 सामाजिक दृष्टिकोण से शिक्षा के उद्देश्य

यद्यपि शिक्षा के उद्देश्य शिक्षा–दर्शन द्वारा प्रतिपादित किये जाते है। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि शिक्षा–समाज–विज्ञान शिक्षा के ध्येय अथवा उद्देश्यों की ओर से उदासीन है। मानव का विकास, व्यक्तिगत तथा सामाजिक, दोनों ही दृष्टियों से होना आवश्यक है। शिक्षा–समाज–विज्ञान सामाजिक उद्देश्य को बहुत महत्व प्रदान करता है। इस सम्बन्ध में हम शिक्षा के उद्देश्य नामक अध्याय में बहुत कुछ चर्चा कर चुके हैं। यहां हम पुनः यह दोहरा देना समीचीन समझते हैं कि शिक्षा का ध्येय न केवल व्यक्तित्व का विकास है और न केवल ज्ञान का अर्जन, वरन् व्यक्ति में ऐसे गुणों का प्रादुर्भाव करना हे कि वह सामाजिक उत्तरदायित्व को समझ लें और समाज से अपना व्यवस्थापन करके उसकी प्रगति की चेष्टा करें। एक जनतन्त्र में शिक्षा–विज्ञान–समाज इस बात पर देता है कि **शिक्षा द्वारा व्यक्तियों को जनतन्त्रीय जीवनयापन के लिए तैयार करना चाहिए। अतएव श्रेष्ठ नागरिकता की शिक्षा देना ही शिक्षा ध्येय होना चाहिए। इसके अतिरिक्त व्यक्ति को जीवकोपार्जन हेतु तैयार करना भी शिक्षा का ध्येय होना चाहिए। अवकाश का उपयोग एक औद्योगिक समाज में उचित रूप में होना आवश्यक है, अतएव शिक्षा का ध्येय अवकाश का उपयोग भी होना चाहिए।**

13.15 शिक्षा क कार्य

शिक्षा के क्या–क्या कार्य हैं? यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस प्रश्न का उत्तर शिक्षा–समाज–विज्ञान बहुत ही सुंदर ढंग से देता है। पायन महोदय का कथन है कि शिक्षा–समाज–विज्ञान के दृष्टिोण से शिक्षा के प्रमुख तीन कार्य हैं–

(1) परम्पराओं का समायोजन, (2) नये सामाजिक ढाँचे का विकास, और (3) सृजनात्मक तथा रचनात्मक कार्य। यहाँ हम इन तीनों प्रमुख कार्यों की विवेचना करेंगें।

(1) परामपराओं का समायोजन (Assimilation of Tradition)– शिक्षा ाक जैविक4 प्रारूप वंशानुक्रम है और इसका सामाजिक रूप है– सामाजिक क्रिया। सामाजिक क्रिया से तात्पर्य उन क्रियाओं से है जिनके द्वारा लोक जीवन को प्रभावित करने वाली परम्पराएं, सामजिक संगठन और संस्थाओं को साथ हर नई पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जाता है। समाज के बहुत सारे साधन शिक्षा के इस ध्येय में सहायता पहुँचातें है कि परामपराओं का समायोजन किस प्रकार हो। परम्पराओं का समायोजन परिवार से ही आरम्भ हो जाता है और विद्यालय तथा चर्च के साधनों द्वारा और समाज तथा राज्य के प्राविधिक साधनों द्वारा बराबर होता रहता है।

यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि यदि शिक्षा का उद्देश्य नागरिकों को मात्र संस्कृति का ग्रहण करना हो, तो इस संकुचित एवं सीमित दायरे के फलस्वरूप शिक्षा अधिनायकत्व को जन्म देती है, क्योंकि इस रूप में शिक्षा के सब साधन, सांस्कृतिक परम्पराओं और रीति–रिवाजों का ग्रहण करना ही अपना मुख्य ध्येय समझते हैं और व्यक्तिगत भावनाओं एवं वैयक्तिक स्वंतन्त्रता को दमन करते हैं। इसका संकेत हमने शिक्षा में सांस्कृतिक उद्देश्यों के दोष का वर्णन करते समय अध्याय 15 में भी किया था। एक पुरानी संस्कृति का कट्टर पुजारी वर्तमान को भूल जाता है और वह समय के प्रवाह, विचारों, मतों एवं विश्वासों और युग की माँग को हेय समझता है। इस प्रकार वह ऐसी विचारधारा को प्रतिपादित करना अपना ध्येय समझता है, जो प्रत्येक व्यक्ति को एक ही प्रकार से व्यवहार करने, विचार करने और यहाँ तक कि एक ही प्रकार की औरूषेय इकाई बन जाता है जिसके निर्देश के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्य रूप से कार्य करना पड़ता है।

यह संस्कृति का ग्रहण के साथ चेतन रूप में न किया जाये, तो समाज में अव्यवस्था तथा उपद्रव की दशा हो जाती है। सारे समाज की परामपराएँ नष्ट हो जाती हैं और समाज स्वयं नष्ट–भ्रष्ट हो जाता है। ऐसी दशा अत्यंत शोचनीय होती है, जब जीवन–मूल्य सत्य, न्याय,आदर्श सब छिन्न–भिन्न हो जाते हैं और मनुष्य एक जंगली–मानव का रूप धारण कर लेता है। जो सभ्यता से कोसों दूर हो जाता है।

इन सबसे हम इस निष्कर्ष पर आते है कि परम्पराओं को संक्रमित करना शिक्षा का एक आवश्यक कार्य है। परन्तु संस्कृति का संक्रमण किसके द्वारा हो तथा प्रकार हो, इसका निर्णय समाज की भलाई की दृष्टि से बहुत महत्व रखता है। यदि एक राष्ट्र, देश या समाज की संस्कृति दूसरी संस्कृतियों से विलग है, तो शिक्षा का कार्य सरल हो जायेगा, क्योंकि तब परम्पराओं पर विदेशी परम्पराओं का प्रभाव नहीं पड़ेगा और उनका एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में बहुत कुछ उसी रूप में संक्रमण होता रहेगा। परन्तु आज के संसार में आवागमन के नये–नये साधनों द्वारा एक देश अथवा एक राष्ट्र दूसरे के बहुत निकट आ गया है। अतः संस्कृति की पूर्ण विलगता सम्भव नहीं। एक संस्कृति का दूसरी संस्कृति पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता और इस प्रकार नई विचारधारा का जन्म हो जाता है जो संस्कृति में अनेक परिवर्तन उत्पन्न कर देता है, अतएव शिक्षा का कार्य अत्यंत गौण हो जाता है। विशेषकर जनतंत्र में जहां विचारों की स्वतंत्रता पर कोई प्रतिबंध नही लगाया जाता, शिक्षा का कार्य संस्कृत के संक्रमण में अत्यंत जटिल हो जाता है। समाज के स्थाायित्व तथा सुरक्षा के लिए नितान्त आवश्यक है कि शिक्षा के साधनों पर कड़ी नज़र रखी जाये, जिससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के वेश में संम्पूर्ण संस्कृति का विलय न हो जाये।

(2) नये सामाजिक ढाँचे का विकास (Development of New Social Patterns)– केवल संस्कृति का संक्रमण ही शिक्षा का कार्य नहीं है नये सामाजिक ढाँचों का विकास भी शिक्षा का अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है। शिक्षा का यह कार्य आज हमारे देश में विशेष रूप से आवश्यक है। स्वतंन्त्रता के पश्चात् देश के सामाजिक जीवन में अनेक परिवर्तन आ गये हैं। सामाजिक जीवन में स्वतन्त्रता नागरिक के निर्माण की गन्ध घुल–मिल रही है। ये नये प्रकार का सामाजिक जीवन दोषों से बचा रहे तथा उचित सामाजिक प्रारूपों को अपनाये, यही देश की शिक्षा का परम कार्य है। यदि देश का सामाजिक जीवन पुरानी रूढियों को ही पीटता रहे और इसमें नये जीवन का संचार न हो सके तो देश का पतन हो जायेगा। इसके अतिरिक्त देश उस समय भी पतन के गर्त में चला जाता है, जब नया जीवन दूषित हो। अतएव शिक्षा को इन दोनों घातक अतिवादों से सावधान रहकर अपना कार्य करना चाहिए।

(3) रचनात्मक तथा सृजनात्मक कार्य (Constructive and Creative Role)– शिक्षा का कार्य यह भी है कि वह रचनात्मक तथा सृजनात्मक प्रवृतियों को प्रोत्साहित करें। इस कार्य में शिक्षा द्वारा व्यकित में विचर–स्वातन्त्रय, समयक् दर्शन और सत्य के ग्रहरण के प्रति आग्रह उत्पन्न करना चाहिए। संसार गतिशील है, इसमें परिवर्तन होते ही रहते हैं। जो व्यक्ति इन परिवर्तनों पर स्वतंन्त्र रूप से विचार करते हुए और प्रगतिशील तत्वों को ग्रहण करते हैं, वे अनुकूलन प्राप्त कर लेते हैं। परन्तु जो संकीर्ण विचारों वाले होते हैं और पुरानी लकीर के फकीर बने रहना गर्व की बात समझते हैं, उनका अनुकूलन सम्भव नहीं होता।

यह भी कहा जा सकता है कि शिक्षा के ये तीनों कार्य एक–दूसरे से अलग है। परम्पराओं का समायोजन, सृजनात्मक तथा रचनात्मक कार्य या नवीन सामाजिक ढाँचे का निर्माण, एक–दूसरे से अलग प्रतीत हेाता है। यदि परम्पराओं के समायोजन को अधिक महत्व दिया जाये तो सृजनात्मक कार्यों पर बल दिया जाये तो परमपराओं का समायोजन उचित रूप से नहीं होगा। परन्तु यदि शिक्षा को ठीक प्रकार से संगठित किया जाये तो इन तीनों में समन्वय स्थापित किया जा सकता है। वस्तुतः शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य यह है कि इन प्रमुख कार्यों में एकरूपता स्थापित करें।

13.16 शैक्षिक समाजशास्त्र तथा पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम का निर्धारण शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के दृष्टिकोण से ठीक समझा जाता है। पाठ्यक्रम पर ही बहुत कुछ सामाजिक प्रगति निर्भर रहती है। यही कारण है कि शिक्षा–समाज–विज्ञानशास्त्री पाठ्यक्रम का उचित निर्धारण आवश्क समझते हैं। उनके विचार में पाठ्यक्रम का चुनाव दो बातों को ध्यान में

रखकर करना चाहिए– (1) पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो शिक्षा के सामाजिक ध्येय को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करें और (2) पाठ्यक्रम का संगठन ऐसा हो कि शिक्षण–विधियों से इसका समन्वय इस प्रकार से हो कि वह समाज पर नियंत्रण रखने का प्रभावशाली साधन बन जाये। पाठ्यक्रम के चुनाव में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि समय–समय पर जो परिवर्तन होते रहते हैं पाठ्यक्रम में उनका समावेश हो। अतः पाठ्यक्रम समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति को ध्यान में रखकर बनाया जाये। गतिशील समाज में लचीले तथा प्रगतिशील पाठ्यक्रम की आवश्यकता है। पाठ्यक्रम वैयक्तिक तथा सामाजिक प्रगति, दोनों को ध्यान में रखकर निर्धारित करना चाहिए।

यहाँ संक्षेप में हम पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में जो नियम समाज विज्ञान प्रतिपादित करता है उनका वर्णन करेंगें।

1. पाठ्यक्रम द्वारा सांस्कृतिक मूल्यों का प्रकाशन होना चाहिए तथा इसके द्वारा समाज के उच्च आदर्श नयी पीढ़ी को पद्रान किये जाने चाहिए।
2. पाठ्यक्रम का चुनाव समाज की समस्याओं तथा आवश्यकताओं पर निर्भर होना चाहिए। परन्तु इसमें विद्यार्थियों की वास्तविक समस्याओं या रूचियों को भी ध्यान में रखना चाहिए।
3. विद्यार्थियों के लिए ऐसी शैक्षिक क्रियाओं का आयोजन होना चाहिए जो उन्हे सामाजिक जीवन में सफलतापूर्वक भाग लेने योग्य बना दें।
4. पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो समाज के जीवकोपाज्रन के प्रत्येक साधन को आद की दृष्टि से देखने की भावना बालकों में उत्पन्न करें।
5. पाठ्यक्रम द्वारा बालकों में समस्या को समझने तथा उसके हल करने की शक्ति का विकास होना चाहिए। उनमें नागरिकता के उत्तरदायित्व तथा मानवता के कल्याण की भावना जाग्रत करने के लिए पाठ्यक्रम का चुनाव होना चाहिए।
6. आज के संसार में विश्व–कल्याण के लिए शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। यह कहा जाता है कि यदि शिक्षा समाजोत्थान के लिए दी जाय तो समाज को संकीर्ण दायरे में न बाँधकर, विश्व–समाज के रूप में समझना चाहिए। अतएव पाठ्यक्रम ऐसा होना चिाहए जो विश्व–समाज के जीवन के लिए लिए बालक को तैयार करें।
7. पाठ्यक्रम को परिवर्तनशील तथा प्रगतिशील होना चाहिए। समाज में परिर्तन होने से पाठ्यक्रम में भी परिवर्तन आ जाना चाहिए।

13.17 शैक्षिक समाजशास्त्र तथा शिक्षण–पद्धतियाँ

शिक्षा–सामज–विज्ञान के दृष्टिकोण से वे ही शिक्षण–विधियाँ अच्छी हैं जो विद्यार्थियों को इस प्रकार का ज्ञान दें जो उनकों विभिनन सामाजिक परिस्थितियों में व्यवस्था करने में सहायता प्रदान करें। जो शिक्षण–विधियाँ सामाजिक व्यवहार और सामाजिक मूल्यों को महत्व देंगी, वे सामूहिक योजनाओं, सामूहिक प्रतिक्रियाओं इत्योदि को समझने तथा जनतन्त्रीय विचारधाराओं का विकास करती हैं। ऐसी शिक्षण–विधियों के उदाहरण हैं– प्रोजेक्ट प्रणाली, सामूहिक वाद–विवाद, सेमीनार इत्यादि।

पायन[1] महोदय के अनुसार किसी भी शिक्षण–पद्धति का महत्व सामाजिकता के दृष्टिकोण से निम्न तीन सिद्धांतों के आधार पर निश्चित किया जाना चाहिए–

1. कोई भी शिक्षण पद्धति उस सीमा तक प्रभावशाली है जिस सीमा तक ज्ञान तथा कला जो कक्षा में सीखे जाते हैं, व्यक्ति का व्यवस्थापन सामाजिक स्थितियों में प्राप्त करने में सहायता प्रदान करें।[2]

1- Payne.

2-The method of teaching is effective only in so far as the skills and knowledge acquired in the class-room are actually made use of by the individual in his adjustment to social situations.

2. शिक्षण–पद्धति प्राथमिक रूप से कक्षा से बाहर के सामाजिक व्यवहार पर बल दें।[1]

3. शिक्षा–पद्धति उन सामाजिक शक्तियों का जो सामाजिक जीवन मे सक्रिय है, उपयोग करें, ताकि व्यक्ति के सामाजिक व्यवस्थापन की योग्यता का विकास हो।[2]

सामाजिक आधार के अनुसार, शिक्षा से तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है जो ऐसे व्यक्तित्व का विकास करें, जिसमें संवेगात्मक व्यवस्थापन हो और जो सामाजिकता की भावना से पूर्ण हों। शिक्षा का पाठ्यक्रम, शिक्षण–विधियाँ एवं शिक्षा के कार्य इसी उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु निर्मित किये जाने चाहिए। व्यक्ति में जो विधियाँ इस प्रकार के भावों का विकास करती है कि व्यक्ति अकेला ही कुछ नहीं, समाज में उसका महत्व है और समाज की प्रगति ही उसका जीवन लक्ष्य है, वे ही अच्छी विधियाँ समझी जाती हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

4. शिक्षा के प्रमुख कार्यों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

5. शैक्षिक समाजशास्त्र की शिक्षण पद्धतियों के नाम लिखिए।

.....

.....

13.18 सारांश

उपर्युक्त विस्तृत विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय दर्शनों में 'ज्ञान' और 'शिक्षा' एक ही अर्थ रखते हैं तथा शिक्षा को तृतीय नेत्र की संज्ञा भी दी गयी है। आजकल शिक्षा का शब्द का प्रयोग अनेक रूपों में किया जाने लगा है– औपचारिक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, तथा निरौपचारिक शिक्षा। प्रस्तुत पाठ में समाज का समाजशास्त्रीय अर्थ का वर्णन परिभाषा के साथ किया गया है। शैक्षिक समाजशास्त्र तथा शैक्षिक समाज विज्ञान, शिक्षा के उद्देश्यों की शैक्षिक क्रिया द्वारा , जो व्यक्ति तथा समाज के मध्य होती है, प्राप्त करने की चेष्टा करता है। शैक्षिक समाजशास्त्र समाज विज्ञान का ही एक अंग है। परन्तु इसका सम्बन्ध दूसरे विषयों से भी है इन विषयों से यह स्वयं प्रभावित होता है और उनके उद्देश्यों को भी प्रभावित करता है। समाजिक दृष्टिकोण से शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो जीवन भर चलती है। शिक्षा से तात्पर्य केवल विद्यालय शिक्षण से नहीं वरन् शिक्षा की क्रिया का प्रारम्भ मानव के जन्म लेने के समय ही हो जाता है और उसके मृत्यु पर्यन्त चलता रहता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य–व्यक्तियों को जनतन्त्रीय जीवनयापन के लिए तैयार करना तथा अवकाश के सद्उपयोग हेतु शिक्षित करना है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से शिक्षा के कार्य, पाठ्यक्रम इत्यादि का वर्णन किया गया है।

13.19 अभ्यास के प्रश्न

1. शैक्षिक समाजशास्त्र का अन्य विषयों से सम्बन्ध की विवेचना कीजिए।
2. शैक्षिक समाजशास्त्र के पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों का वर्णन कीजिए।
3. शैक्षिक समाजशास्त्र की सीमाएं बताए।
4. समाजशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा को लिखिए।

13.20 चर्चा के बिन्दु

1. ज्ञान के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा कीजिए।

13.21 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. शाब्दिक अर्थ में समाजशास्त्र का अर्थ है – समाज का विज्ञान। Sociology दो शब्दों Socus, Logus से मिलकर बना है जिसका अर्थ है समाज का विज्ञान।
2. शैक्षिक समाजशास्त्र समाज के विभिन्न अंगों की व्यक्ति के साथ होने वाली प्रतिक्रिया का अध्ययन कर शिक्षा के माध्यम से प्राप्त करने पर बल देता है।
3. शैक्षिक समाजशास्त्र– इसका प्रयोग शैक्षिक समास्याओं के हल के लिए किया जाता है।

   शिक्षा का समाजशास्त्र– यह सम्बन्धों का विश्लेषणात्मक अध्ययन शैक्षिक व्यवस्था का अन्य समाज के संगठनों के साथ करता है।
4. शिक्षा के प्रमुख कार्य – परम्पराओं का समायोजन, नए सामाजिक ढाँचें का विकास, सृजनात्मक तथा रचनात्मक कार्य।
5. शैक्षिक समाजशास्त्र की पद्धत्तियाँ– प्रोजेक्ट प्रणाली, सामूहिक वाद–विवाद, सवांद, सेमिनार इत्यादि।

13.22 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. गुप्ता रत्ना, मौर्या गीतान्जलि (प्रथम नवीनतम संस्करण), पाठ्यचर्या के सैद्धांतिक आधार, लखनऊ : शैक्षिक पुस्तक प्रकाशन।
2. एन0सी0एफ0 (2005), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिसर।
3. माथुर, एस0एस0 (2010–2011), शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन।
4. गुप्त, लक्ष्मी नारायन (2008–2009), शिक्षा एवं दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, इलाहाबाद : न्यू कैलाश प्रकाशन।
5. पाण्डेय, के0पी0 (2005), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजिक आधार, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
6. शुक्ला रमा, सिंह मधुरिमा, (तृतीय नवीनतम संस्करण), शिक्षा के दार्शनिक आधार, लखनऊ : आलोक प्रकाशन।
7. मालवीय राजीव, विजिलिंग फैकेल्टी (2012), शिक्षा के मूल सिद्धांत, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन।
8. सारस्वत मालती, गौतम एस0एल0 (नवीनतम संस्करण), भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्याएं, लखनऊ : आलोक प्रकाशन।

इकाई– 14 : पाठ्यक्रम में विभिन्न सामाजिक समूहों के ज्ञान का समावेशन एवं वहिष्करण

इकाई की संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 इकाई के उद्देश्य

14.3 विविध वर्गीकरण

- 14.3.1 प्राथमिक समूह
- 14.3.2 द्वितीयक समूह

14.4 पाठ्यक्रम का अर्थ एवं परिभाषा

14.5 पाठ्यक्रम निर्माण के आधारभूत सिद्धांत

- 14.5.1 पराम्पराओं को सुरक्षित रखने का सिद्धांत
- 14.5.2 प्रगतिशील अथवा अग्रदर्शी सिद्धांत
- 14.5.3 रचनात्मकता का सिद्धांत
- 14.5.4 क्रियाशीलता का सिद्धांत
- 14.5.5 जीवन की तैयारी का सिद्धांत
- 14.5.6 बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम का सिद्धांत
- 14.5.7 परिपक्वता का सिद्धांत
- 14.5.8 व्यक्तिगत विभिन्नता का सिद्धांत
- 14.5.9 पाठ्यक्रम का लम्बरूप तथा सामान्तर दृष्टि से समन्वय
- 14.5.10 जीवन से सम्बद्ध करने का सिद्धांत
- 14.5.11 विस्तृतता तथा संतुलन का सिद्धांत
- 14.5.12 निष्ठा का सिद्धांत
- 14.5.13 नमनीयता का सिद्धांत
- 14.5.14 कोर या सामान्य विषय का सिद्धांत
- 14.5.15 खाली समय के उचित उपयोग का सिद्धांत
- 14.5.16 सर्वांगीण विकास का सिद्धांत

14.6 पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में विभिन्न दार्शनिक विचार

- 14.6.1 प्रकृतिवाद तथा पाठ्यक्रम
- 14.6.2 आदर्शवाद तथा पाठ्यक्रम
- 14.6.3 प्रयोजनवाद तथा पाठ्यक्रम

14.7. पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण

14.8 विषय केन्द्रित एवं विषयागत पाठ्यक्रम तथा अनुभवगत एवं क्रियाकेन्द्रित पाठ्यक्रम

14.9 अनुभवगत पाठ्यक्रम की त्रुटियाँ

14.10 पाठ्यक्रम का क्रियान्वयन
14.11 परम्परागत तथा प्रगतिशील पाठ्यक्रम
14.12 पाठ्यचर्या के स्तर को ऊँचा करने तथा पुनः निर्माण के लिए उपाय
14.13 राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रस्तावित पाठ्यक्रम
14.14 पाठ्यक्रम के विभिन्न स्तरों के उद्देश्य
14.15 सांराश
14.16 अभ्यास के प्रश्न
14.17 चर्चा के बिन्दु
14.18 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.19 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.1 प्रस्तावना

सामाजिक समूह किसी भी दो या दो से अधिक व्यक्तियों के ऐसे समूह को कहते है जो एक दूसरे से सम्पर्क व लेन–देन रखे, जिनमें एक दूसरे से कुछ समानताएं हो और जो आपस में एकता की भावना रखें। कुछ समाजशास्त्रियों के अनुसार किसी गुट का सामाजिक समुदाय कहलाने से पहले यह जरूरी है कि उसके सदस्य अपने आप को उस समुदाय का भाग समझे, जबकि अन्य के हिसाब से अगर उसमें समानता है और वे एक दूसरे से परस्पर सम्बन्ध रखते हैं तो वे एक सामाजिक समुदाय हैं चाहे वे स्वयं यह पहचाने या नहीं।

14.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि –

1. समाजिक समूहों का अर्थ समझ सकेगें।
2. पाठ्यक्रम निर्माण के आधारभूत सिद्धांतों की व्याख्या कर सकेंगे।
3. परम्परागत एवं प्रगतिशील पाठ्यक्रम में अन्तर कर सकेंगे।
4. पाठ्यचर्या के स्तर को ऊँचा करने के उपयों को समझ सकेगें।
5. विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम के उद्देश्य को जान सकेगें।

14.3 विविध वर्गीकरण

सामाजिक समूहों को अनेक प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है। कुछ लेखकों ने साधारण वर्गीकरण किया है तो अन्य लेखकों ने व्यापक वर्गीकरण किया है।

जर्मन समाजशास्त्री सिमेल (Simmel) ने आकार (size) को समूह वर्गीकरण का आधार माना है। चूँकि समाजीकृत व्यक्ति समाजशास्त्र की मूलभूत इकाई है, इसलिए उसने ''एकाक'' (Monad) एकल व्यक्ति को समूह सम्बन्धोंका केन्द्र मानकर आरम्भ किया तथा अपने वर्गीकरण में द्वेत (Dyad), त्रैत (Triad) तथा अन्य छोटे समूहों एवं विशाल–स्तरीय समूहों को सम्मिलित किया।

ड्वाइट सैडरसन (Dwight Sanderson) ने संरचना के आधार पर समूहों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है। उसने समूहों को अनैच्छिक (Involluntary), ऐच्छिक (Voluntary) एवं प्रतिनिधिक (Delegate) में विभाजित किया है अनैच्छिक समूह नातेदारी (Kinship) पर आधारित होता है यथा परिवार मनुष्य अपनी इच्छा से अपने परिवारका चयन नहीं करता। उसका तो इसमें जन्म हेाता है। ऐच्छिक समूह वह होता है जिसमें मनुष्य अपनी

इच्छा से शामिल होता है वह अपनी इच्छा से सदस्य बनता है तथा जब उसकी इच्छा हो, वह इससे अलग भी हो सकता है। प्रतिनिधि समूह में मनुष्य कुछ लोगों के प्रतिनिधि के रूप में, भले ही लोगों के प्रतिनिधि के रूप में, भले ही लोगों ने स्वयं निर्वाचित किया हो अथवा उसका किसी सत्ता द्वारा नामाकंन हुआ हो, शामिल होता है। संसद एक प्रतिनिधि समूह है।

टानीज (Tonnies) ने समूहों को समुदायों (Communities) एवं समितियों (Associattions) में वर्गीकृत किया है।

कूले (Cooley) ने संपर्क के प्रकार के आधार पर समूहों को प्राथमिक (Primary) एवं गौण (Secondary) में विभक्त किया है। प्राथमिक समूह में आमने–सामने के तथा घनिष्ठ संबंध होते है,यथा परिवार। गौण समूह, यथा राज्य अथवा राजनीतिक दल में संबंध परोक्ष, गौण अथवा अवैयक्तिक होते हैं।

एफ0एच0 गिडिंग्स (E.H. Giddings) ने समूहों को जननिक (Genetic) एवं इकट्ठे (Congregate) में वर्गीकृत किया गया है। जननिक समूह परिवार है जिसमें मनुष्य का अनैच्छिक जन्म होता है। इकट्ठा समूह ऐच्छिक है जिसमें मनुष्य स्वेच्छा से शामिल होता है। सामाजिक समूह 'वियोजक' टानीज (Distinctive) अथवा 'सम्मिश्रित'(Oeverlaping) भी हो सकते हैं। वियोजक समूह अपने सदस्यों को एक ही समय अन्य समूहों का सदस्य बनने की अनुमति नहीं देता। उदाहरणया, एक महाविद्यालय अथवा राष्ट्र क्रमशः अपने विद्यार्थियों अथवा नागरिकों को अन्य महाविद्यालियों या राष्ट्रों के सदस्य बनने की अनुमति नहीं देता। सम्मिश्रित समूह के सदस्य एक से अधिक समूहों के सदस्य होते है, यथा भारतीय राजनीति विज्ञान समिति।

जार्ज हासन (George Hasen) ने समूहों का वर्गीकरण दूसरे समूहों के साथ उनके संबंधों के आधार पर किया है। इस प्रकार उसने असामाजिक (Unsocial), आभासी– समाज (Pseudo-social), सामज–विरोधी (Anti-social) अथवा समाज–पक्षीय (Pro-social) समूहों का उल्लेख किया है। असामाजिक समूह वह समूह है जो अधिकतर अपने लिए ही जीवित रहता है तथा उस विशाल समाज जिसका वह भाग है, के कार्यों में कोई रूचि नहीं लेता। यह अन्य समूहों के साथ कोई सम्पर्क नहीं रखता तथा उनसे अलग रहता है। एक आभासी–सामाजिक समूह विशालतर सामाजिक जीवन में भाग लेता है, परन्तु केवल अपने हित के लिए, सामाजिक हित के लिए नहीं। समाज के हितों के विरूद्ध कार्य करता है। विद्यार्थियों का जो समूह जो सार्वजनिक सम्पत्ति को आग लगाता है, समाज–विरोधी समूह है। इसी प्रकार, मजदूर–संघ जो राष्ट्रीय हड़ताल का नारा देता है, समाज –विरोधी समूह है। राजनीतिक दल जो लोकप्रिय सरकार का तख्ता उलटने की योजना बनाता है, समाज–विरोधी समूह है। समाज–पक्षीय समूह समाज–विरोधी समूह का विपरीत रूप हैं यह समाज के हितों के लिए कार्य करता है। वह निर्माणकारी कार्य करता है तथा लोगों के कल्याण के बारे में चिंतित रहता है।

मिलर (Miller) ने सामाजिक समूहों को क्षैतिज (Horizontal) एवं उदग्र (Vertical) भागों में विभक्त किया हे। पहले प्रकार के समूह विशाल एवं अन्तर्मुखी समूह होते हैं, यथा–राष्ट्र, धार्मिक संगठन एवं राजनीतिक दल। दूसरे प्रकार के समूह छोटे उपविभाग होते हैं, यथा आर्थिक वर्ग। चूँकि उदग्र समूह क्षैतिज समूहों का भाग है, अतएव व्यक्ति दोनों का ही सदस्य होता है।

चार्ल्स ए0एलवुड ने समूहों को (1) ऐच्छिक एवं अनैच्छिक, (2) संस्थागत एवं असंस्थागत तथा (3) अस्थायी एवं स्थायी समूहों में विभेदित किया है।

ल्योपाल्ड (Leopold) ने समूहों को (1) भीड़ (Crowds), (2) समूहों (Groups) तथा (3) अमूर्त संग्रहों (Abstract Collectivities) में बाँटा गया है।

पार्क एवं बर्गेस (Park and Burgess) में समूहों को (1) प्रादेशिक एवं (2) गैर–प्रादेशिक समूहों में विभेदित किया है।

गिलिन एवं गिलिन (Gillin and Gillin) ने (1) खून का रिश्ता, (2) शारीरिक विशेषताएं, (3) भौतिक सामीप्य, एवं (4) सांस्कृतिक रूप से व्युत्पन्न हितों के आधार पर समूहों का वर्गीकरण किया है।

समनर (Summer) ने समूहों को (1) अन्तः समूह (In-group) एवं (2) बाह्य समूह (Out group) में अन्तरित किया है। वे समूह जिनके साथ व्यक्ति तादात्म्य स्थापित कर लेता है, उनके अन्तः समूह होते हैं। उसका परिवार या कबीला या लिंग अथवा कॉलेज अथवा व्यवसाय धर्म आदि ऐसे समूह हैं जिनके बारे में वह

समानता की जागरूकता अथवा एक ही प्रकार की चेतना से सजग होता है। अन्तः समूह अपने अस्तित्व की चेतना से सजग होता है। अन्तःसमूह अपने अपने अस्तित्व की चेतना इस तथ्य से ग्रहण करता है कि कुछ व्यक्ति तो उस समूह से अलग हैं तथा अन्य उसके सदस्य हैं। इसमें 'हम' की भावना होती है। अन्तः समूह के दृष्टिकोणों से समूह के दूसरे सदस्य के प्रति सहानुभूति का तत्व एवं संलग्नता की भावना होती है। बाह्य समूह की परिभाषा अन्तः समूह के सम्बन्ध को ध्यान में रखकर की जाती है। सामान्यतः, इसे 'हम' और 'वे' के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। प्रत्येक समूह को यह ज्ञात होता है कि 'वे' हमारे साथ नहीं है। हम लोकतंत्रीय हैं, वे साम्यवादी हैं, हम हिन्दू हैं, वे मुसलमान हैं, हम ब्राह्मण हैं, वे हरिजन है। ऐसे दृष्टिकोण कि 'ये मेरे आदमी है, एवं 'वे मेरे आदमी नहीं है' अन्तः समूह के सदस्यों के प्रति संलग्नता के भाव को जन्म देते हैं, जबकि बाह्य समूह के सदस्यों के प्रति विमुखता एवं शत्रुता की भावना उत्पन्न करते हैं।

इस प्रकार समाजशास्त्रियों ने समूहों का वर्गीकरण अपने दृष्टिकोंण के अनुसार अलग–अलग ढंग से किया है। उन्होने उनका वर्गीकरण आकार, हितों के स्वरूप, संगठन की मात्रा, स्थायित्व की सीमा, सम्पर्क के प्रकार या इनमें से किसी के मिश्रण के आधार पर किया है। इस सम्बन्ध में क्यूबर (Cuber) ने लिखा है, 'समाजशास्त्रियों ने समूहों का वर्गीकरण करने में काफी समय एवं प्रयत्न लगाया है। यद्यपि आरम्भ में तो ऐसा करना सुगम प्रतीत होगा, परन्तु आगे सोचने पर इसमें बहुत–सी कठिनाईयाँ महसूस होगी। वास्तव में कठिनाईयाँ इतनी अधिक है कि अभी तक हमारे पास समूहों का कोई क्रमबद्ध वर्गीकरण नहीं है। जो सभी समाजशस्त्रियों को पूर्णतया मान्य हो।

14.3.1 प्राथमिक समूह

प्राथमिक समूह की अवधारणा का जिक्र सर्वप्रथम सी एच कूली (Charles Cooley) ने अपनी पुस्तक 'सोशल ऑर्गनाइजेशन (1809) में किया।

कूली के अनुसार प्राथमिक समूहों से हमारा तात्पर्य उन समूहों से हैं, जिनमें सदस्यों के बीच आमने सामने घनिष्ठ संबंध होते हैं। साथ ही पारस्परिक सहयोग इसकी अनिवार्य विशिष्टता होती है। ऐसे समूह अनेक अर्थों में प्राथमिक होते हैं, विशेष रूप से इस अर्थ में कि ये व्यक्ति के सामाजिक स्वभाव और विचार के निर्माण में बुनियादी यानी प्राथमिक योगदान देते हैं।

इस अवधारणा को प्रस्तुत करने के पीछे कूली का मुख्य उद्देश्य यह प्रदर्शित करना था कि मानव व्यक्तित्व के विकास में कुछ ऐसे समूह होते हैं, जिनकी महत्वपूर्ण या प्राथमिक भूमिका होती है।

कूली की परिभाषा से स्पष्ट है कि प्राथमिक समूह में शारीरिक निकटता, घनिष्ठ सम्बन्ध एवं पारस्परिक संम्बन्ध का होना आवश्यक है कूली ने परिवार, पड़ोस और क्रीड़ा समूह को एक अच्छा उदाहरण माना है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि प्राथमिक समूह की सबसे बड़ी विशेषताओं में वयं भावना (wefeeling) बहुत महत्वपूर्ण है। प्राथमिक समूह अपने आप में बहुत मजबूती से बंधा हुआ समूह है, जिसमें आमने–सामने के संबंधों के अलावा एकता की भावना प्रबल रूप से पायी जाती है। सदस्यों में एक सामान्य सामाजिक मूल्यों के प्रति कटिबद्धता पाई जाती है।

कूली ने अपनी परिभाषा में जिस आमने सामने का संबंध का उल्लेख किया है वह समाजशास्त्रियों के बीच काफी विवाद का विषय बन गया है। के डेविस ने कहा कि आमने सामने का संबंध प्राथमिक समूह का आधार नहीं हो सकता, क्योंकि कभी–कभी आमने सामने का संबंध रखते हुए भी दो व्यक्तियों के बीच घनिष्ठ संबंध पनप सकता है।

उदाहरण के लिए लंबे समय तक एक दूसरे के आमने–सामने होते हुए भी कार्यालय के कर्मचारियों में जरूरी नहीं कि घनिष्ठता बन पाए, जबकि पिता–पुत्र में हजारों किलोमीटर की दूरी और लम्बे समये से दूर रहने के बावजूद घनिष्ठता बनी रहती है।

ई– फरिस ने भी कहा है कि आमने–सामने के संबंध के अभाव में सामाजिक निकटता पायी जा सकती है। नातेदारी समूह इस बात का एक अच्छा उदाहरण है जहां लोग एक दूसरे के आमने सामने नहीं होते हैं, इसके बावजूद उसके बीच आपसी निकटता की भावना पायी जाती है।

दूसरी आरे के बीयरस्टेट ने कूली के विचारों को अप्रत्यक्ष रूप से समर्थन प्रदान करते हुए यह कहा है कि कूली के द्वारा उल्लिखित आमने–सामने शब्दों को शाब्दिक रूप में लेना ठीक नहीं है। बल्कि प्रतीकात्मक रूप में लेना है। इस शब्द के द्वारा कूली मात्र संबंधों की घनिष्ठता का बोध करना चाहते हैं।

प्राथमिक समूह की विशेषताएँ

प्राथमिक समूह की विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

- लघु आकार
- आमने–सामने का सम्बन्ध
- स्वतः विकसित समूह
- व्यक्तिगत एवं घनिष्ठ संबंधों की प्रधानता
- अनौपचारिक सम्बन्ध
- लक्ष्यों की समानता
- तुलनात्मक विकास
- सर्वव्यापकता
- समाजीकरण का एक अभिकरण (एजेन्ट)

14.3.2 द्वितीयक समूह

कूली द्वारा प्रतिपादित प्राथमिक समूह जब काफी लोकप्रिय हो गया तो कुछ विद्वानों ने इसके प्रतिकूल सामाजिक व्यवस्थ की भी बात कही, जो द्वितीयक समूह (secondary group) के रूप में प्रचलित हुआ।

इस तरह के समूह में आमने सामने का सम्बन्ध काफी कमजोर होता है। समूह के सदस्यों के बीच घनिष्ठता की कमी होती है। जैसे दुकानदार–ग्राहक का संबंध, डॉक्टर रोगी का संबंध, नेता और अनुयायी का संबंध, ऑफिसर एवं किरानी का संबंध। ऐसे संबंधों को लोग योजनाबद्ध रूप में या जानबूझकर निर्मित करते हैं।

द्वितीयक समूह के संबंधों में स्थायित्व की कमी एवं संबंधों का छिछलेपन का होना स्वाभाविक है क्योंकि साधारणतया इसका आकार प्राथमिक समूह की तुलना में काफी बडा होता है। सदस्यों के बीच हमेशा आमने–सामने का संबंध नहीं हो पाता है। लोग ऐसे समूहों का निर्माण स्वार्थवश करते हैं। अतः सदस्यों के बीच में स्वाभाविक रूप से संवेगात्मक–भावात्मक लगाव की कमी होती है।

द्वितीयक समूह की परिभाषाएँ

स्टीफन समूह की परिभाषाएँ

स्टीफन कोल के अनुसार द्वितीयक समूह वे होते हैं, जो अपेक्षाकृत काफी बड़े होते हैं और उनमें पाए जाने वाले संबंध काफी अवैयक्तिक होते हैं।

कोल के विचारों से स्पष्ट है कि द्वितीयक समूह सदस्यों के बीच संबंधों में आत्मनीयता की कमी होती है। प्राथमिक समूह की तुलना में इसके सदस्यों के बीच अन्तः क्रियाएं भी काफी कम मात्रा में पायी जाती हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि आकार में बड़ा होने के कारण इसके सदस्यों में दूरी बहुत होती है।

एन्थोनी गिडेंस के अनुसार द्वितीयक समूह व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जिसके अन्तर्गत लोग मिलते तो हैं, लेकिन उनके संबंध मुख्य रूप से अवैयक्तिक होते हैं। व्यक्तियों के बीच संबंध गाढ़े नहीं होते। लोग समान्यतया तभी एक दूसरे के निकट आते हैं जब उनके सामने कोई निश्चित व्यावहारिक उद्देश्य होता है।

द्वितीयक समूह की विशेषताएँ

द्वितीयक समूह की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

- बड़ा आकार
- अप्रत्यक्ष एवं अवैयक्तिक संबंध
- औपचारिक संगठन
- ऐच्छिक सदस्यता
- क्म स्थायी
- सीमित स्वार्थों की पूर्ति
- योजनाबद्ध व्यवस्था
- अल्पकालिक सदस्यता
- 'मै' या 'वे' की भावना

समाजविज्ञान में सामाजिक समूहों को अलग–अलग तरह से वर्गीकृत किया जाता है ताकि उन्हे अच्छी तरह समझा–समझाया जा सके। समूहों को एक–दूसरे से कई तरह से भेद किया जा सकता है। उदाहरण के लिए प्राथमिक समूह (primary group) छोटे आकार का वह समूह है जिसके सदस्य आपस मे निकट, वैयक्तिक, चिरस्थायी सम्बन्ध रखते हैं।(जैसे–परिवार, बचपन के मित्र)। इसके विपरीत द्वितीयक समूह (secondary group) वे समूह हैं जिनके सदस्यों के बीच अन्तः क्रियाएँ अधिक अवैयक्तिक होती हैं और वे साझे पर आधारित होते हैं।

14.4 पाठ्यक्रम का अर्थ एवं परिभाषा

1. पाठ्यक्रम की सबसे लोकप्रिय परिभाषा कनिंघम (Cunnigham) द्वारा दी गई मानी जाती है। इसके अनुसार– ''पाठ्यक्रम अध्यापक रूपी कलाकार (Artist) के हाथ में वह साधन (Tool) है जिसके माध्यम से वह अपने पदार्थ रूपी छात्र (Material) को अपने कलागृह रूपी स्कूल (Studio) में अपने उद्देश्य के अनुसार विकसित अथवा रूप (Mould) प्रदान करता है।'' इसमें कोई सन्देह नहीं कि कलाकार को अपने पदार्थ को अपने आदर्शों के अनुरूप ढालने की बहुत स्वतंत्रता है, क्योंकि कलाकार का पदार्थ निर्जीव है। परन्तु स्कूल में अध्यापक का पदार्थ अर्थात छात्र सजीव है। पुराने समय में जबकि आवश्यकताएँ सीमित थी, साधन सीमित थे, अध्यापक को अपने पदार्थ यानि कि छात्र को नया रूप देने में पूरी स्वतंत्रता थी। परन्तु अब बदलती हुई परिस्थितियों में अध्यापक की यह महत्ता घट गई है। फिर भी निश्चय ही अध्यापक के हाथ में पाठ्यक्रम बहुत ही महत्वपूर्ण साधन है।
2. कैसवेल (Casvel) के अनुसार ''बालकों एवं उनके माता–पिता तथा शिक्षकों के जीवन में आने वाली समस्त क्रियाओं को पाठ्यक्रम का निर्माण होता है। वस्तुतः पाठ्यक्रम को गतियुक्त (Dynamic) वातावरण कहा गया है।''
3. रडयार्ड तथा हेनरी (Rudyar and Henry) के अनुसार '' विस्तृत अर्थ में पाठ्यक्रम के अन्तर्गत समस्त विद्यालय का वातावरण आता है जिसमें विद्यालय में प्राप्त सभी प्रकार के सम्पर्क, पठन, क्रियाएँ एवं विषय सम्मिलित है।''
4. बैंट तथा कोनबर्ग (Bent and Kroneberg) के विचार में ''पाठ्यक्रम के अन्तर्गत छात्रों के लिए प्रस्तुत की गई विद्यालयीय वातावरण की वह समस्त सामग्री आती है जिसमें सारी वस्तुएं, क्रियाएँ, समस्त अध्ययन एवं सम्पर्क आदि संलग्न है।''
5. के. जी. सैयदन (K.G. Saiyidain) के शब्दों में ''पाठ्यक्रम वह सहायक सामग्री है जिसके द्वारा बच्चा अपने आपकों उस वातावरण के अनुकूल ढालता है, जिसमें वह अपना दैनिक कार्य व्यवहार करता है तथा जिसमें उसके भविष्य की योजनाएं और क्रियाशीलता निहित है।''
6. ब्रवेकर (Brubacher) लिखते हैं, ''पाठ्यक्रम एक ऐसा क्रम है जो किसी व्यक्ति को गन्तव्य स्थान पर पहुँचाने के लिए तय करना पड़ता है।''
7. माध्यमिक शिक्षा आयोग (Secondary Education Commission 1952-53) के अनुसार '' पाठ्यक्रम का अर्थ केवल उन विषयों से नहीं, जो विद्यालय में परम्परागत रू‍प से पढ़ाये जाते हैं वरन् इसमें वे सारे अनुभव

शामिल हैं, जिनकों छात्र विद्यालय , कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला वर्कशाप और खेल के मैदान तथा शिक्षकों और छात्रों के अगणित अनौपचारिक सम्पर्कों से प्राप्त करता है। इस प्रकार विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन पाठ्यक्रम हो जाता है, जो छात्रा के जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित कर सकता है और उनके सन्तुलित व्यक्तित्व के विकास में सहायता देता है।''

8. ड्यूवी (Dewey) के अनुसार '' पाठ्यक्रम केवल अध्ययन की योजना या विषय– सूची ही नहीं बल्कि कार्य और अनुभव की सम्पूर्ण श्रृंखला है। पाठ्यक्रम समाज में कलात्मक ढंग से परस्पर रहने के लिए बच्चों के प्रशिक्षण का शिक्षकों के पास एक साधन है।''

संक्षेप में पाठ्यक्रम सुनिश्चित जीवन का दर्पण है जो विद्यालय में प्रस्तुत किया जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. पाठ्यक्रम से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

14.5 पाठ्यक्रम निर्माण के आधारभूत सिद्धांत

पाठ्यक्रम निश्चित करते समय निम्नलिखित सिद्धांतों का ध्यान रखना चाहिए–

14.5.1 परम्पराओं को सुरक्षित रखने का सिद्धांत

यह कहा गया है कि राष्ट्रों का वर्तमान अतीत पर निर्भर होता है और वे भविष्य के लिए जीवित रहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि समाज के अतीत, वर्तमान तथा भविष्य पर विचार किया जाना आवश्यक है। अतीत वर्तमान के लिए महान पथ–पद्रर्शक है, क्योंकि इसके अध्ययन से यह पता चलता है कि हमारे पूर्वजों के लिए क्या उपयोगी तथा लाभदायक था और आज के युग के लिए क्या लाभदायक होगा, इसीलिए हर पीढ़ी अपनी आने वाली पीढ़ी को विभिन्न विषयों तथा कार्यों की जानकारी करवाती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार स्कूल का यह कर्तव्य है कि वह पराम्पराओं, उनके ज्ञान तथा उनके व्यावहारिक मानदण्ड का संरक्षण करें और उन्हे आने वाली पीढ़ी को सौंप दें, क्योंकि इन्ही पर हमारी सभ्यता टिकी है।

यह सिद्धांत तभी हमारी सहायता करेगा जबकि हम अतीत को उन बातों में से ध्यानपूर्वक चुनाव कर लें जो कि हमें वर्तमान समय में लाभ पहुचायेगी। हो सकता है कि भूत की सारी बातें हमें लाभान्वित न करें। अतः यह आवश्यक है कि हम उन्ही विषयों तथा कार्यक्रमों को चुने जो कि हमें वर्तमान में लाभ पहुँचाए।

इस सिद्धांत का कुछ शिक्षाशास्त्रियों ने इस आधार पर खण्डन किया हे कि यह सिद्धांत विषयों को महत्व तो देता है पर विद्यार्थियों को नहीं। विपक्षी यह भी कहते है कि शिक्षा, स्कूल तथा पाठ्यक्रम विद्यार्थियों पर केन्द्रित होना चाहिए। इन आलोचकों को यह उत्तर दिया जा सकता है कि अतीत को हर चीजक की उपेक्षा करना कोई अच्छी नीति नहीं है और विशेषकर ऐसे देश के अतीत, जो कि अत्यंत गौरवशाली रहा हो और जिसने कि अन्य देशों को ज्ञान का मार्ग दिखाया हो। दूसरा तर्क यह है कि खड़े होने के लिए कोई न कोई आधार तो होना ही चाहिए और यदि वह आधार पुष्ट तथा दृण है, तो उसे अवश्य अपना लेना चाहिए। तीसरे यह कहना भी ठीक नहीं है कि अतीत काल में बच्चे की पर्णतया उपेक्षा की जाती थी। फिर भी अतीत के

आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण करते हुए हमें 'चयन सम्बन्धी सिद्धांत (Principle of Selectivity) को अपनाना चाहिए।

14.5.2 प्रगतिशील अथवा अग्रदर्शी सिद्धांत

पहले सिद्धांत पर विचार करते हुए यह कहा गया है कि समाज की वर्तमान तथा भविष्य सम्बन्धी आवश्यकताओं का पूर्ण ध्यान रखा जाना चाहिए। आज के बच्चे कल के आदर्श नागरिक है अतः उनका शिक्षण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वे प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति बन सके। शिक्षा उन्हे इस प्रकार के विचार, ज्ञान तथा दृण, इच्छा शक्ति प्रदान करें, जिसके द्वारा वे अपने वातावरण को अपने अनुकूल बना लें तथा वातावरण से तालमेल स्थापित कर लें।

14.5.3 रचनात्मकता का सिद्धांत

पाठ्यक्रम में इस प्रकार के कार्यक्रमों को स्थान दिया जाना चाहिए जिससे बच्चे की रचनात्मक तथा सृजनात्मक शक्ति का विकास हो सके। शिक्षा का उद्देश्य है बच्चे की रूचियों तथा विशिष्ट योग्यताओं की खोज करके उनका विकास करना। Reymont ने कहा है कि '' यदि बच्चे को आरम्भ में ही सुविधाएँ न जुटाई जायेंगी, तो हो सकता है उसकी बौद्धिक रूचियाँ सदा के लिए विलुप्त हो जायें।'' बच्चे की जन्मजात योग्यताओं में से कोई भी ऐसी न हो जिसे हमारा संरक्षण न मिले, नहं तो वे विलोप हो जायेगी। ऐसा पाठ्यक्रम जो कि वर्तमान तथा भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।, अवश्य ही निश्चित सृजनात्मक कार्यक्रमों की पूर्ति करता है, अवश्य ही निश्चित सृजनात्मक कार्यक्रमों पर आधारित हेाता है।

14.5.4 क्रियाशीलता का सिद्धांत

पाठ्यक्रम का चयन क्रियाओं तथा अनुभवों के आधार पर होना चाहिए। पाठ्यक्रम शारीरिक तथा मानसिक क्रियाशीलता के अवसर प्रदान करे। क्रियाशीलता पाठ्यक्रम का केन्द्र बिन्दु होनी चाहिए।

14.5.5 जीवन की तैयारी का सिद्धांत

पाठ्यक्रम के निर्माण में यह सिद्धांत बहुत महत्वपूर्ण है। शिक्षा का उद्देश्य है बच्चों को जीवन के लिए जुटाना। अतः पाठ्यक्रम में वे सभी कार्यक्रम समाविष्ट होने चाहिए, जो कि बच्चों को इस योग्य बना दें कि वह बड़ा होने पर सामाजिक कार्यों में प्रभावपूर्ण ढंग से भाग ले सके। हमें बालक को इस योग्य बनाना है कि भविष्य की जटिल तथा गंभीर समास्याओं का सफलतापूर्वक सामना कर सके।

14.5.6 बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम का सिद्धांत

यह सत्य है कि बच्चे को जीवन के लिए तैयार होना है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं हैं कि इसकी वर्तमान आवश्यकताओं का अनिश्चित भविष्य के लिए बलिदान कर दिया जाये। जैसा कि रायबर्न (Ryburn) ने कहा है कि वह किस उपक्रम में भी हो उसमें अधिक से अधिक परिपूर्ण तथा सम्पन्न जीवन निर्वाह करने के योग्य हो सके। बच्चा जिस उपक्रम में भी होता है, वह अगले उपक्रम में अच्छा जीवन व्यतीत करने के लिए खुद–ब–खुद प्रयत्न करता है।''

14.5.7 परिपक्वता का सिद्धांत

पाठ्यक्रम बच्चों के मानसिक स्तर तथा उनके उपक्रम के अनसार होना चाहिए। प्रारम्भिक शैशव काल में विस्मय तथा कल्पना की प्रधानता होती है। अतः इस अवस्था में बच्चों को जो विषय पढ़ाये जाते जाये, उनमें भी विस्मय तथा कल्पना की मात्रा होनी चाहिए। इससे अगली अवस्था में वे रचनात्मक कार्य में अधिक रूचि रखते हैं। अतः उनका पाठ्यक्रम रचनात्मक समस्याओं से समन्वित होना चाहिए। माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक अवस्था, साहस, खोज तथा नवीन तथ्यों को जानने की अवस्था है, तदनुसार, पाठ्यक्रम में भी खोज सम्बन्धी

विषय होने चाहिए तथा जो कुछ भी पढ़ाया जाये वह उनके बौद्धिक स्तर और ग्राह्य बुद्धि से परे की चीज न हो।

14.5.8 व्यक्तिगत विभिन्नता का सिद्धांत

व्यक्ति में अनुभव रूचि, जन्मजात योग्यता तथा यौन सम्बन्धी कई विभिन्नताएं हेाती हैं। इसलिए पाठ्यक्रम भी व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार होना चाहिए।

14.5.9 पाठ्यक्रम का लम्बरूप तथा सामान्तर दृष्टि से समन्वय

एक और तो पाठ्यक्रम का आधार पिछले कुछ वर्ष का किया गया काम चाहिए तथा दूसरी ओर वह आने वाले वर्ष के कार्य के लिए आधार बन सकने के योग्य होना चाहिए। इसलिए यह नितान्त अनिवार्य है कि समस्त पाठ्यक्रम का समन्वय किया जायें।

14.5.10 जीवन से सम्बद्ध करने का सिद्धांत

पाठ्यक्र का निर्माण करते हुए समाज की आवश्यकताओं पर विचार कर लेना चाहिए।

14.5.11 विस्तृतता तथा संतुलन का सिद्धांत

पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार करना चाहिए कि जीवन का हर पहलू– आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, व्यावसायिक, इत्यादि–एक समान महत्व प्राप्त कर सकें।

14.5.12 निष्ठा का सिद्धांत

पाठ्यक्रम ऐसा हो कि बच्चे के हृदय में परिवार, स्कूल, नगर, प्रान्त, देश तथा संसार के प्रति सच्ची निष्ठा उत्पन्न हो। बच्चे को यह जानने में समर्थ बनाये कि संसार को असमानता में भी कही न कहीं समानता है।

14.5.13 नमनीयता का सिद्धांत

पाठ्यक्रम बच्चों की विशिष्ट आवश्यकताओं तथा उसके विभिन्न वातावरणों को अवश्य महत्व प्रदान करे। लड़कों का पाठ्यक्रम लड़कियों का पाठ्यक्रम से आवश्यकतानुसार भिन्न हो सकता है। सामान्यता गाँवों तथा शहरों का पाठ्यक्रम तो एक ही समान हेाता है, परन्तु स्थानीय आवश्यकताओं की दृष्टि से उनमें विभिन्नताएँ भी हो सकती हैं।

14.5.14 कोर या सामान्य विषय का सिद्धांत

ज्ञान के कई निश्चित विकसित रूप हैं जिनका थोड़ा बहुत ज्ञान हर विद्यार्थी को होना ही चाहिए। उच्चतम माध्यमि शिक्षा में जहाँ कि विभिन्न पाठ्यक्रम जुटाए जाते हैं, तो इस शिक्षा को और भी अधिक आवश्यकता हो जाती है। यह विषय हर विद्यार्थी के लिए चाहे वह किसी वर्ग का हो, अनिवार्य होने चाहिए तथा इन्हे सामान्य विषयों के रूप में समझना चाहिए।

14.5.15 खाली समय के उचित उपयोग का सिद्धांत

पाठ्यक्रम बच्चों को खाली समय के सदुपयोग की भी शिक्षा देने वाला हो। हरबर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने साहित्य, संगीत तथा कला की शिक्षा पर बल दिया है।

14.5.16 सर्वांगीण विकास का सिद्धांत

विद्यार्थियों के लिए हर प्रकार का ज्ञान जुटाने की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि वे अपना शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक , नैतिक, संवेगात्मक तथा आध्यात्मिक विकास कर सकें।

14.6 पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में विभिन्न दार्शनिक विचार

रस्क (Rusk) महोदय ने कहा है, ''पाठ्यक्रम का संगठन जितना दर्शन पर आधारित होता है, उतना शिक्षा का कोई अन्य पहलू नहीं है। शिक्षा सम्बन्धी मुख्य तीनों दर्शन– प्रकृतिवाद, आदर्शवाद तथा प्रयोजनवाद इस विचार पर सहमत हैं कि बच्चों को अपेक्षित अनुभवों के साधन जुटाये जाने चाहिए। परन्तु तीनों विचारधाराएं इस पर एकमत नहीं है कि बच्चों को किस प्रकार का अनुभव करवाया जाए तथा किस प्रकार से''।

14.6.1 प्रकृतिवाद तथा पाठ्यक्रम

शिक्षा क्षेत्र में इस प्रवृत्ति के मुख्य प्रर्वतक रूसो (Rousseau) हैं। प्रकृतिवाद के अनुसार पाठ्यक्रम एक प्राकृतिक दृश्य है जो बच्चों के सम्मुख प्राकृतिक क्रम से उपस्थित किया जाता है। पाठ्यक्रम का कार्य यह है कि वह प्राकृतिक आवश्यकताओं के अनुसार बच्चें को प्राकृतिक शक्तियों का विकास करें। अतः ऐसे कार्यक्रमों को महत्व दिया जाता है जो कि बच्चे की रूचियों तथा स्वभाव के अनुकूल हों। कार्यक्रम स्वाभाविक तथा बच्चे के जीवन से सम्बन्धित हो।

प्रकृतिवादी आत्मशिक्षा के सिद्धांत में विश्वास रखते हैं। रूसो ने कहा है कि मुझे लम्बी–लम्बी व्याख्याओं से घृणा है। छोटे बच्चे न तो उनकी ओर आकर्षित ही होते हैं और न उनमें से कुछ ग्रहण ही करते हैं। बच्चे स्वयं शिक्षा प्राप्त करें। कहना न होगा कि हम शब्दाडम्बर में अधिक विश्वास करते हैं और (With our chattering education we make nothing but chatterers) अपनी बकवादी शिक्षा द्वारा हम बच्चों को बकवादियों के सिवा कुछ नहीं बना पाते। आगे लिखते हैं कि (I hate books,they are a curse to children they teach us to talk ony which we do not know) मुझे पुस्तकों से घृणा है क्योंकि ये बच्चों के लिए अभिशाप है। जो कोई भी उन्हे पढ़ाता है वह चिन्तन नहीं कर सकता। बच्चों को ऐस पाठ्यक्रम से छुटकारा दिलवाकर मैं समझता हूँ कि मैंने उन्हे एक बहुत बड़ी बला और विपदा से छुटकारा दिलवा दिया है।

14.6.2 आदर्शवाद तथा पाठ्यक्रम– आदर्शवाद के मुख्य प्रतिनिधि हैं, Socrates, Plato, Fitchc, Hegel, Hume, Kant, T.P. Nunn तथा Ross.

आदर्शवादी पाठ्यक्रम की समस्या का समाधान आदर्शवादी विचारों के अनुसार ही करते हैं। नन (Nunn) ने स्कूल में ऐसे कार्यक्रमों को रखने का समर्थन किया है जो अत्यधिक महत्वपूर्ण तथा स्थायी हैं और संसार में मानव आत्माओं की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति हैं। अब प्रश्न यह है कि महानतम महत्व के कार्यक्रम कौन–कौन से हैं। इनका वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है–

1. ऐसे कार्यक्रम जो सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन के स्तर को बनाये रखने के लिए अनिवार्य हैं, जैसे कि स्वास्थ्य–रक्षा, शिष्टचार, धर्म, सामाजिक संगठन इत्यादि।
2. ऐसे कार्यक्रम जो कि सभ्यता का प्रतिनिधित्व करें, जैसे कि साहित्य, विज्ञान, गणित, भूगोल, इतिहास तथा कला इत्यादि।

प्लेटो (Plato) का मत था कि उच्चतम अच्छाई अर्थात ईश्वर की प्राप्ति ही मानव जीवन का महान उद्देश्य हो सकता है और इसकी प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम का लक्ष्य सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्–इन तीन आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति होना चाहिए। ये तीन प्रकार के कार्यक्रमों के प्रतीक हैं। कविता तथा कला– कलात्मक क्रियाओं के प्रतिनिधि स्वरूप हैं तथा धर्म, आचार–शास्त्र तथा अध्यात्म नैतिक क्रिया के विषय हैं।

रॉस (Ross) ने पाठ्यक्रम में दो प्रकार की क्रियाओं का उल्लेख किया है–

(1) शारीरिक और (2) आध्यात्मिक।

इन क्रियाओं के अनुसार पाठ्यक्रम का स्वरूप इस प्रकार होना चाहिए–

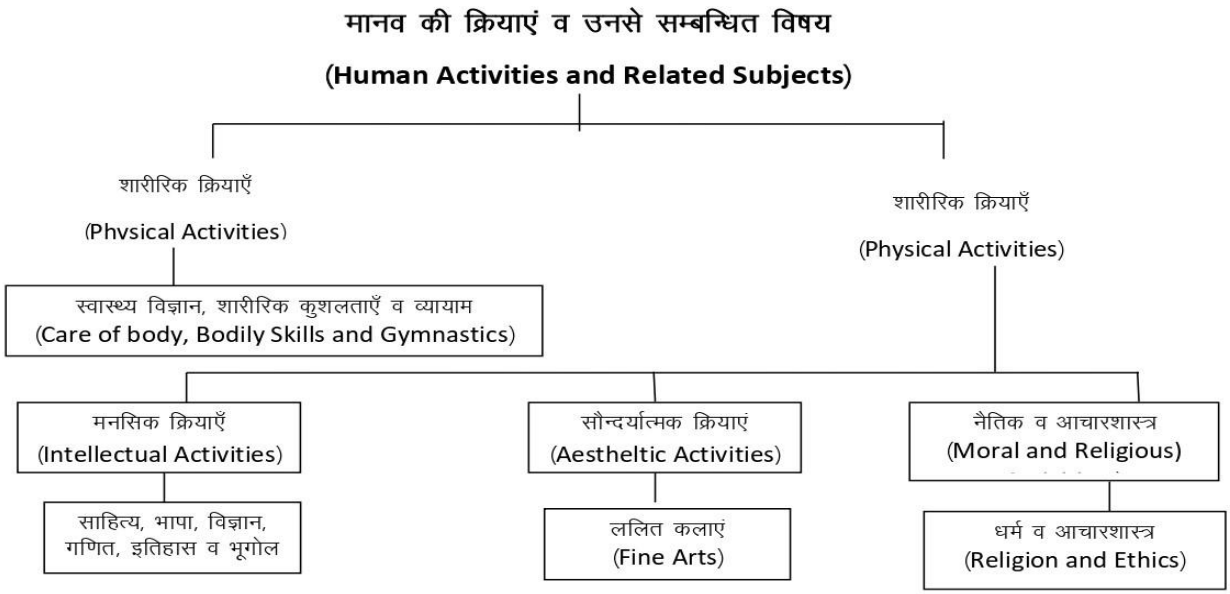

14.6.3 प्रयोजनवाद तथा पाठ्यक्रम– इस पद्धति के मुख्य समर्थक जॉन ड्यबी (Johan Dewey) हैं। इस विचारधारा के अनुसार वहीं सत्य है, जिससे अपना प्रयोजन सिद्ध होता है तथा जो जीवन का निर्माण करता है। यह विचारधारा असीम प्लेटो (Absolute Values) अलौकिक, ईश्वरीय मूल्यों को स्वीकार नहीं करती।

योजना पद्धति शिक्षा के क्षेत्रों में निर्देशन पद्धति का बहिष्कार करती है। ड्यूवी ने बच्चे की रूचियों को चार भागों में विभाजित किया है–

1. आदान–प्रदान की रूचि
2. जिज्ञासा अर्थात खोज में रूचि
3. सृजनात्मक रूचि।
4. कला की अभिव्यक्ति में रूचि।

वास्तविक जीवन की विभिन्न क्रियाएँ पाठ्यक्रम के विषयों का निर्माण करती हैं। इस पद्धति के अनुसार निर्मित पाठ्यक्रम चार बातों पर आधारित है–

1. पाठ्यक्रम का निर्धारण करते हुए उपयोगिता पर पहले विचार किया जाता है। बच्चों को ऐसे कार्यक्रम जुटाये जाते हैं जो उपयोगी हों। पाठ्यक्रम ऐसे विषयों को स्थान देता है, जो बच्चों को इस प्रकार शिक्षित करें तथा उन्हें निपुण बनाये कि वे अपने वर्तमान तथा भावी जीवन में सफल हो सकें।
2. पाठ्यक्रम के विषय बच्चों की रूचियों तथा उनके उत्तरोत्तर विकास के अनुकूल हो।
3. बच्चों का अपना अनुभव, उनका कार्य तथा उनकी क्रियाशीलता ही पाठ्यक्रम का आधार बने।
4. पाठ्यक्रम समन्वय (Integration) के सिद्धांतों पर निर्मित किया जाए, यह स्वतन्त्र विषयों में विभाजित हो।

उपसंहार– एक अच्छा पाठ्यक्रम इन तीनों दर्शनों को ध्यान में रखकर बनाया जाना चाहिए। दर्शन के केवल एक पक्ष पर जोर देने से छात्र का सर्वांगीण विकास नहीं हो सकता।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

2. पाठ्यक्रम निर्माण से सम्बन्धित दार्शनिक परिभाषा को लिखिए।

.....

.....

14.7 पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण

स्वतंत्रत–प्राप्ति के पश्चात् देश में शिक्षा की स्थिति को सुधारने के लिए यह अनुभव किया गया कि माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में परिवर्तन लाया जाए, जिससे देश का सामाजिक, राजनैतिक, औद्योगिक एवं चारित्रिक विकास हो सके और भावी नागरिक माध्यमिक स्तर की शिक्षा की समाप्ति पर देश की प्रगति में अपना योग प्रदान कर सके। ऐसा करने के लिए आवश्यक था कि छात्रों की अभिरूचियों और योग्यताओं के अनुसार शिक्षा प्रदान की जाए। इसके परिणाम स्वरूप ही पाठ्यक्रम की विभिन्नीकरण की विचारधारा प्रवाहित हुई। माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार हमारी माध्यमिक शालाएँ एकमार्गीय नहीं होनी चाहिए बल्कि उनके अन्दर शैक्षिक कार्यों की भिन्नता होनी चाहिए। अतः एक ओर तो पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण इा कारण करना चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी एक–दूसरे से शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक विकासों के कारण भिन्न होता है और दूसरी ओर राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक चरण–कला, विज्ञान, उद्योग और वाणिज्य आदि के लिए नेता तथा अनुयायी चाहिए।

14.8 विषय केन्द्रित एवं विषयागत पाठ्यक्रम तथा अनुभवगत एवं क्रिया केन्द्रित पाठ्यक्रम

हरबर्ट रीड ने अपनी पुस्तक 'Education Throughout' में पाठ्यक्रम की परिभाषा इस प्रकार दी हैः ''पाठ्यक्रम विषयों का समूह रूप नहीं है। माध्यमिक तथा प्राथमिक स्तर पर यह सृजनात्मक कार्यक्रम का एक क्षेत्र है। इन सृजनात्मक कार्यक्रमों के लिए निर्देशन भी किया जाता है। शैशवावस्था में इन कार्यों का खेल होता है और प्राथमिक स्तर पर प्रोजेक्ट तथा माध्यमिक अवस्था में यह कार्यक्रम रचनात्मक क्रियाओं मे परिवर्तित हो जाते हैं।''

विषयगत पाठ्यक्रम और अनुभवगत पाठ्यक्रम में निम्नलिखित अन्तर है–

विषयगत पाठ्यक्रम	**अनुभवगत पाठ्यक्रम**
विषयगत अथवा विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम	अनुभव अथवा कार्य अथवा क्रिया– केन्द्रित पाठ्यक्रम
इसमें विषयों की प्रधानता होती है।	यह अनुभव–प्रधान पाठ्यक्रम है।
यह विषयों पर केन्द्रित हैं	यह विद्यार्थियों पर केन्द्रित है।
पढ़ाने से पहले पाठ्य–विषय निर्वाचित अैर संगठित होता है।	सारे विद्यार्थी अध्ययन के सम में सहयोगपूर्ण ढंग से विषय सामग्री क निर्वाचन और संगठन करते हैं।

यह तत्वों के अध्ययन और सम्भावित भविष्य के लिए सूचना देने पर बल देता है।	यह जीवन के व्यवहारिक रूप पर बल देता है।
यह जीवन से पृथक है।	यह जीवन के समन्वय पर बल देता है।
विषयों का इसमें कोई समन्वय नहीं है।	यह सम्बद्ध तथा व्यवहारिक ज्ञान पर बल देता है।
यह प्रायः अपरिवर्तनशील है। इसमें जड़ता आ जाती है।	यह परिवर्तनशील है और व्यक्तिगत जीवन की आवश्यकताओं की व्यवस्था में सक्षम है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

3. पाठ्यक्रम के विभिन्नीकरण से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

14.9 अनुभवगत पाठ्यक्रम की त्रुटियाँ

1. मानवीय अनुभवो से सम्बन्धित विषयों के विभिन्न पहलुओं को तार्किक रूप में विभाजित करना बहुत कठिन है।
2. विषयों की सम्बद्धता केवल आकस्मिक तथा अस्थायी है और इस प्रकार शिक्षण मानव अनुभव की पूर्णतः के लिए संतोषजनक नहीं हो सकता है।
3. यह भी संभव है कि समन्वय पर बहुत अधिक बल देने पर इसका वास्तविक मानवीय अनुभवों से कोई सम्बन्ध न रहे।
4. समन्वय का प्रयत्न अधिकतर शिक्षकों की ओर ही होता है।
5. इसकी एक सीमा है जिसके आगे समस्त अनुभवों को प्राप्त करना संभव नहीं है।

बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम (Child Centred Curriculum) बालक के स्वाभाविक विकास का अध्ययन करने के पश्चात उसकी आवश्यकताओं, योग्यताओं, अभिरूचियों तथा रूचियों के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण करना बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम है। इस प्रकार के पाठयक्रम से बालक की बुद्धि, संवेग (Emotions), शरीर और समाजिकता के इष्टतम विकास की सम्भवना रहती है। दर्शन के रूप में इस प्रकार के पाठ्यक्रम की संस्तुति रूसो (Rousseau) ने की। बाद में इस पर पेस्तालॉजी (Pestalozzi), फ्रोबेल (Froebel), ड्यूवी (Dewey) एवं मान्टेसरी ने भी बल दिया। भारत में गाँधी जी तथा टैगोर ने बाल–केन्द्रित पाठ्यक्रम को क्रियात्मक रूप देने का प्रयत्न किया।

बाल केनिद्रत पाठ्यक्रम बनाने के आधार (Beses for Preparing Child Centred Curriculum) गाँधीजी ने बाल–केन्द्रित पाठ्यक्रम निर्माण के लिए बालक के तीन प्रकार के वातावरण पर बल दिया है और आग्रह किया कि बालक की सारी शिक्षा निम्नलिखित वातावरण पर आधारित हो–

1. बालक के भौतिक वातावरण पर आधारित पाठ्यक्रम (Curriculum Based on Child's Physical Environment)
2. बालक के सामाजिक वातावरण पर आधारित पाठ्यक्रम (Curriculum Based on Child]s Social Environment)
3. क्राफ्ट पर आधारित पाठ्यक्रम (Craft Based Curriculum)

विदेशों में मुख्यतः तीन प्रकार के बाल–केन्द्रित पाठ्यक्रम अनेक स्कूलों में चलाये जा रहे हैं।

डाल्टन प्रणाली– इस प्राणाली के अनुसार स्कूल को घर जैसा रूप दे दिया जाता है। और कक्षाएँ प्रयोगशालाओं का रूप धारण कर लेती हैं। सीखने वालो को कुछ कार्य दे दिये जाते हैं। जो उन्हें एक निश्चित समय में पूरे करने होते हैं। उन्हे इस समय में पूरी छूट होती है। कि वे किसी भी विषय के अध्ययन में जितना समय चाहे, लगाये। इस प्रकार प्रत्येक बालक को अवसर मिल जाता है – अपनी स्वयं कीगति से सीखने का और अपनी योग्यतानुसार सीखने का।

विनेटका प्रणाली– कारलेटन वाशबर्न ने इस प्रणाली का अविष्कार किया। इस प्रणाली में जो प्रमुख सिद्धांत है, वह यह है कि सीखने वाले को स्वयं आपने सीखने की गति के अनुसार सीखने का अवसर प्रदान करना चाहिए। यह प्रणाली डाल्टन प्रणाली से इस बात में भिन्न है कि इसमें हर सीखने वाले को विभिन्न विषयों में विभिन्न गति पर रहना पड़ता है। पाठ्य सामग्री इकाई कार्य या उद्देश्य के रूप में संगठित की जाती है। और बालक स्वयं अपने सीखने का परीक्षण कर सकता है। इसके पश्चात ही वह अपने आपको शिक्षक द्वारा दिये जाने वाले परीक्षण के लिए प्रस्तुत करता है। इस प्रकार इस प्रणाली में असफल होने का प्रश्न नहीं उठता।

प्रोजेक्ट प्रणाली– इस प्रणाली में बालकों को प्रोजेक्ट दिये जाते हैं जो बहुधा चार प्रकार होते हैं– 1. उत्पादक प्रोजेक्ट, 2. उपभोक्ता प्रोजेक्ट, 3 समास्यात्मक प्रोजेक्ट और 4. अभ्यास प्रोजेक्ट। कई बालक मिलकर एक प्रोजेक्ट पर कार्य करते है और इस प्रकार सीखना व्यक्तिगत योग्यता तथा रूचि पर निर्भर करता है।

प्रोजेक्ट पद्धति में पाठ्यक्रम एक प्रकार से जीवन क्रियाएँ बन जाता है। छात्र समस्याओं का प्रयोगात्मक हल ढूँढ़ना सीखते हैं। सामूहिक परियोजनाओं को पूरी कक्षा करती है। पाठ्यक्रम कई परियोजना का समूह बन जाता है। ये परियोजनाएं छात्र स्वयं चुनते हैं। अध्यापक एक मार्गदर्शक तथा परामर्शदाता का रूप लेता है। परियोजनाओं में पाठ्य विषयों का सार्थक स्वाभाविक सह–सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम से प्रेरणा, प्रयत्नशीलता, रचनात्मक सक्रियता, उत्तरदायित्व, सहकारिता तथा सहिष्णुता आदि गुणों का विकास हेाता है।

परियोजनाओं के उदाहरण है– स्कूल में सहकारी भण्डार खोलना, स्कूल बैंक, ग्राम र्सवेक्षण, जन्मदिवस मनाना, स्कूल की सफाई, स्कूल फर्नीचर की मरम्मत, गली–मुहल्ले की सफाई, स्कूल गार्डेन , शैक्षणिक भ्रमण आदि।

परियोजना पाठ्यक्रम बनाने के चरण इस प्रकार हैं– 1. स्थिति के अनुसार चुनाव, 2 परियोजना बनाना, 3 योजना को कार्य रूप में बदलना।, 4 मूल्यांकन, 5. रिकार्ड रखना।

निष्कर्ष– बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में तथा इसके पहले अर्ध भाग में कई प्रकार के बाल–केन्द्रित पाठ्यक्रमों को प्रतिपादित किया गया। परन्तु सामन्य परिस्थितियों में और विशेषकर भारत जैस विकासशील देश, जिसमें स्कूलों में अनेक सुविधाओं का अभाव है, बाल–केन्द्रित पाठ्यक्रमों का आयोजन अत्यंत कठिन है। परन्तु प्रयास किया जाना चाहिए कि बाल केन्द्रित शिक्षा के सिद्धांतों को जहा तक संभव हो, व्याहारिक रूप दिया जाए।

एक और तो हम कक्षा से कक्षा दस तक एक जैस विषयों को पढ़ाने की बात करते है और दूसरी ओर बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम। इन दोनों बातों में बहुत कम तालमेल की सम्भावना है।

सामान्यतः स्कूलों में बच्चों की रूचियों के अनुसार सहपाठीय क्रियाओं का प्रावधान करना एक बहुत कठिन काम है। स्कूलों तथा कक्षाओं में इतनी भीड़ है कि व्यक्तिगत रूचियों के विकास के बहुत कम अवसर मिल पातें हैं।

14.10 पाठ्यक्रम का क्रियान्वयन

पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन में तो प्रत्येक अध्यापक का हाथ हेाता है। अध्यापक पाठ्यक्रम से दिशा–निर्देश प्राप्त करता है, परन्तु यह उस पर निर्भर है कि वह पाठ्यक्रम के प्रभावी क्रियान्वयन में कितना उत्साह दिखाता है, पाठ्यक्रम में दिये गये कार्य को करने की कई विधियाँ हो सकती हैं। अध्यापक को अपनी सूझबूझ से यह निर्णय लेना होता है कि किस विधि से पाठ्यक्रम में दी गई विषय–वस्तु क्रियाओं का प्रभावपूर्ण ढंग से क्रियान्वयन किया जा सकता है। उसे यह सोच–विचार करना होता है कि किस प्रकार के प्रश्न छात्रों से पूछे जाये जिनसे वे नयी पाठ्य–वस्तु का दैनिक जीवन या पहले पढ़ी गई पाठ्य–वस्तु के साथ तारत्म्य स्थापित कर सकें। किस प्रकार के उदाहरण हो सकते हैं। किस प्रकार की दृश्य सामग्री का प्रयोग किया जा सकता है? इस प्रकार अध्यापक को पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन में पर्याप्त स्वतंत्रता होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

4. पाठ्यक्रम का क्रियान्वयन किस प्रकार किया जाता है?

.....

.....

14.11 परामपरागत तथा प्रगतिशील पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम का सीधा सम्बन्ध शिक्षा के उद्देश्यों से होता है। पहले शिक्षा का उद्देश्य केवल 3Rs अर्थात Writing and Artihmetic आदि का ज्ञान देना ही था। अतः पाठ्यक्रम बहुत संकुचित था। यह केवल कुछ ही विषयों तक सीमित था। परन्तु जैसे–जैसे सामज में परिवर्तन आते गये, शिक्षा के उद्देश्यों में भी परिवर्तन आया और परिणाम स्वरूप पाठ्यक्रम भी बदलता गया। एक समय था जबकि पाठ्यक्रम में केवल शास्त्रीय विषयों (Classical Subjects) की प्रधानता था। ये विषय थे संस्कृत, अरबी, रोमन, ग्रीक, भाषाएं आदि। समय में परिवर्तन के अनुसार इन विषयों की महत्ता कुछ कम हुई।

भारत वर्ष में अंग्रेजी काल में शिक्षा का उद्देश्य बहुत सीमित था। शासन चलाने के लिए विभिन्न वर्गों की आवश्यकता थी। अतः कार्यालयों का काम सँभालने वाली शिक्षा का महत्व था और इसी के अनुसार पाठ्यक्रम भी था। यही पाठ्यक्रम स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी चलता रहा यद्यपि इमें कुछ सुधार भी लाये गये।

बदलती परिस्थिति में एक नये पाठ्यक्रम की आवश्यकता अनुभव की गई। नये पाठ्यक्रम को संगठित करने की वर्तमान प्रवृत्ति भिन्न है। यह इसे समास्याओं, सृजनात्मक क्रियाओं, निश्चित उद्देश्यों, उपयोगी अनुभवों द्वारा संगठित करती है। पाठ्यक्रम के संतुलन का अर्थ यह है कि बच्चे का विकास उसकी रूचियों तथा परिवर्तनशील वातावरण के अनुकूल हो। विषयों का विभाजन सर्वथा भिन्न न हो और वे इस ढंग से पढ़ायें जाएँ

जिससे कि बच्चे तथा उसके वातावरण में व्यावहारिक समानता आय जाय। प्रोजेक्ट पद्धति तथा बुनयादी शिक्षा पद्धति पाठ्यक्रम को इसी रूप में प्रस्तुत करते हैं।

नये पाठ्यक्रम में उन विषयों तथा गतिविधियों पर बल दिया जा रहा है जो श्रम की महत्ता प्रदर्शित करें, उत्पादन में सहायक हों, व्यवसायों के लिए छात्रों को तैयार करें।

पुराना पाठ्यक्रम विषय प्रधान था तथा नया क्रिया एवं बाल–केन्द्रित। पाठ्यक्रम के बारे में निम्नलिखित बातों का जानना बहुत आवश्यक है–

1. एक नवीन पाठ्यक्रम जो स्वयं चाहे कितनी भी अच्छाई या सावधानी से क्यों न निर्मित हो, वह सम्पूर्ण शिक्षण –क्रम को परिवर्तित नहीं कर सकता है। बहुत –सी बातें पाठ्यक्रम के विस्तार और इसके अपनाने के ढंग पर निर्भर करती हैं।
2. एक पाठ्यक्रम हमेशा के लिए निश्चित नहीं समझाा जा सकता है।
3. हमारे देश में पाठ्यक्रम के अनुसंधान की अत्यधिक आवश्यकता है।
4. प्रत्येक विषय में बहु–सी सामग्री भर देने के लिए अधिक प्रश्न नहीं होने चाहिए।

पराम्परागत पाठ्यक्रम में दोष–

1. पाठ्यक्रम पुस्तकीय ज्ञान पर बल देता है।
2. पाठ्यक्रम विषय केन्द्रित है।
3. पाठ्यक्रम छात्र–केन्द्रित नहीं है।
4. पाठ्यक्रम राष्ट्रीय सरोकारों के अनुरूप नहीं है।
5. पाठ्यक्रम बहुत बोझदार है।
6. पाठ्यक्रम छात्रों की व्यक्तिगत भिन्नताओं की अवहेलना करता है।
7. पाठ्यक्रम में पुराने ढंग की विषय सामग्री है।
8. पाठ्यक्रम नये प्रकरण जैसे भूमण्डलीकरण, नई तकनीकों आदि की अवहेलना करता है।
9. पाठ्यक्रम में मूल्य शिक्षा पर बहुत कम सामग्री है।
10. पाठ्यक्रम में नई खोजों का समावेश बहुत कम है।
11. पाठ्यक्रम अध्यापक की स्वतंत्रता तथा पहल–शक्ति पर बहुत अंकुश लगाता है।

14.12 पाठ्यचर्या के स्तर को ऊँचा करने तथा पुनः निर्माण के लिए उपाय

पाठ्यचर्या शिक्षा का एक गतिशील साधन है। शीघ्रता से परिवर्तित संसार में यह आवश्यक हो जाता है कि शैक्षिक संस्थाएं भी पाठ्य–वस्तु को नवीन आवश्यकताओं तथा तकनीकों के सन्दर्भ में बदले। इस दिशा में निम्नलिखित सुझाव दिये जा रहे हैं–

1. **पाठ्यचर्या में अनुसंधान**– व्यवस्थित रूप से पाठ्चर्या के सम्बन्ध में अनुसंधान किया जाए, विशेषज्ञों की खोजों के सुधार पर समन्वित सुधार कार्यक्रम के रूप में संशोधन किया जाए। ऐसे अनुसंधान की सुविधाएँ विश्वविद्यालयों, माध्यमिक शिक्षण कॉलेजों, राज्य की शिक्षा संस्थाओं और राज्य के स्कूल शिक्षा बोर्डों में उपलब्ध होनी चाहिए। यदि राज्य के स्कूल शिक्षा बोर्ड में पाठ्यचर्या के विशेषज्ञ हो, जो राज्य मूल्यांकन संगठन और राज्य शिक्षा संस्थानों के निकट सहयोग में काम कर सके, तो और भी अच्छा हो।
2. **पाठ्य–पुस्तके और शिक्षण साधन तैयार करना**– पाठ्यचर्या में सुधार के किसी भी प्रयत्न की सफलता का आधार उचित पाठ्य–पुस्तके, पाठ्य–गाइडे, और पढ़ाने और सीखने की अन्य सामग्रियाँ है। ये

चीजें स्कूल के हित को ध्यान में रखकर नये कार्यक्रमों की विषय–वस्तु और उनके उद्देश्य निर्धारित करती हैं और छात्र के वास्तविक साधन होने के कारण प्रस्तावित परिवर्तनों को सारवान बनाती है।

3. **शिक्षकों की अन्तः सेवा शिक्षा**– इसके अतिरिक्त शिक्षक को नये पाठ्यक्रम की मुख्य विशेषताएं समझना भी आवश्यक हैं ताकि शिक्षक की क्षमता विकसित की जा सके, शिक्षण कौशल में उन्नति लायी जा सके और आज की परिवर्तित परिस्थिति से सम्बन्धित पढ़ाने और सीखने की प्रक्रिया को अधिक सूक्ष्मता से समझा जा सके। इसलिए शिक्षकों को संशोधित पाठ्यचर्या में अनुस्थापित (ओरियन्टेड) करने के लिए अन्तः सेवा शिक्षा का एक विस्तृत कार्यक्रम बनाया जाए, जिनमें सेमिनार और पुनश्चर्या–पाठ्यक्रम का भी आयोजन हो।

4. **उपलब्ध सुविधाओं से पाठ्यक्रम का सम्बन्ध बैठाना तथा प्रायोगिक पाठ्यक्रम अपनाने के बारे में स्कूल को स्वतंत्रता**– पाठ्यक्रम का शिक्षकों की कोटि, स्कूल में उपलब्ध सुविधाओं और छात्रों की सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि के अनुकूल उनकी आवश्यकताओं से सम्बन्ध बैठाना चाहिए। इन विषयों की दृष्टि से हर संस्था में बड़ा अन्तर होता है। परिणामतः औसत स्कूल की आवश्यकता की पूर्ति के लिए बनाया गया राज्य सरकार का एकमात्र पाठ्यक्रम राष्ट्र की विभिन्न संस्थाओं के लिए बेकार सिद्ध हो जाता है। एक ओर वह कमजोर संस्थाओं की पहुँच के बाहर सिद्ध होता है, तो दूसरी ओर अच्छी संस्थाओं के लिए उसका स्तर नीचा सिद्ध होता है। समास्या का समाधान इसमें हैं कि स्कूलों को अपनी ही आवश्यकता के अनुसार पाठ्यक्रम बनाकर प्रयोग में लाने और उन्हे उन्नत बनाने के लिए एक–दूसरे से होड़ करने दिया जाए।

5. **उच्च पाठ्यचर्याओं को क्रमिक रूप से लागू करना**– इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि राज्य स्कूल शिक्षा बोर्ड, उच्च पाठ्यक्रम बनाकर क्रमिक कार्यक्रम के रूप में अनेक वर्षों में उन्हे सभी स्कूल और विषयों में लागू करें। इस प्रयोजन के लिए बोर्ड को उच्च और साधारण दो पाठ्यक्रम बनाने चाहिए। सामान्य पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए, जिसे इस समय केवल अच्छे स्कूल ही अपना सकें। लेकिन वह कुछ समय बाद सम्भवतः साधारण पाठ्यक्रम बन जाए।

6. **उच्च पाठ्यक्रम चालू करने की शर्तें**– राज्य स्कूल शिक्षा बोर्डों को शिक्षकों की योग्यता और क्षमता तथा आवश्यक सुविधाओं का ध्यान में रखते हुए किसी विषय में उच्च पाठ्यक्रम लागू करने की शर्तें निर्धारित कर देनी चाहिए। जो स्कूल इन शर्तों को पूरा करें, उन्हे उच्च पाठ्यक्रम चालू करने की अनुमति दी जानी चाहिए। दूसरे स्कूल तो केवल साधारण ही पाठ्यक्रम चलाएँ। उच्च पाठ्यक्रम लागू करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाने पड़ेगे–

   i. यह जरूरी नहीं कि कि स्कूल सभी विषयों में उच्च पाठ्यक्रम अपनाएँ। शुरू–शुरू में एक या दो विषय लिये जा सकते हैं और फिर धीरे–धीरे सुविधा के अनुसार सुनियोजित कार्यक्रम के रूप में और अधिक विषय या सारा पाठ्यक्रम समेटा जा सकता है।

   ii. जिस स्कूल में उच्च पाठ्यक्रम नहीं अपनाया गया हो, वहाँ अगर छात्र चाहें तो उन्हे निजी रूप से उच्च पाठ्यक्रम के लिए तैयार करने की छूट होनी चाहिए।

   iii. स्कूल शिक्षा बोर्ड को बाहरी परीक्षाओं में उच्च और साधारण दोनों ही पाठ्यक्रमों में छात्रों की परीक्षा लेने की व्यवस्था करनी चाहिए।

   iv. प्रारम्भ में जो स्कूल उच्च पाठ्यक्रम अपनाने को तैयार हों (या सहायता देने पर थोड़े ही समय में तैयार हों) उनमें विज्ञान, गणित, भाषा जैसे कम से कम, कुछ विषयों में उच्च पाठ्यक्रम लागू किये जा सकते हैं।

   v. कालान्तर में योग्य शिक्षक उपलब्ध कराकर और आवश्यक सुविधाएँ देकर अधिकाधिक स्कूलों को उच्च पाठ्यक्रम अपनाने में सहायता दी जानी चाहिए। प्रतिवर्ष इस प्रकार के– आकांक्षी'स्कूल खोज निकालने चाहिए और उन्हे 'उच्च' पाठ्यचर्या के निर्माण के लिए आवश्यक सहायता दी जानी चाहिए। इस सहायता का एक आवश्यक अंग नये पाठ्यक्रमों के अनुसार शिक्षण देने में समर्थ शिक्षक तैयार करना चाहिए।

7. विषय–अध्यापक संगठन– राज्य सरकारें विभिन्न स्कूल–विषयों के लिए विषय अध्यापक संस्थाएं बनाने के कार्य को प्रोत्साहन दें। इससे पहल–शक्ति को और प्रयोग करने की पृवत्ति को बढ़ावा मिलेगा और अधिक अच्छी शिक्षण सामग्रियों और शिक्षण तथा मूल्याकंन की सुधरी तकनीकों के प्रयोग के द्वारा पाठ्यचर्या को संशोधित और उन्नत बनाने में सहायता मिलेगी। राज्य स्कूल शिक्षा बोर्डों के माध्यम से काम करने वाले राज्य शिक्षा विभागों की यह जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वे विषय–अध्यापक संस्था की सहायता करें ताकि विषय अध्यापक संस्थाएं नियतकालिक सेमिनार और सभाएँ चलाया करें और अपनी ही पत्रिकाएं निकालें, जिनमें से अधिकतर स्वभावतः प्रान्तीय भाषाओं में होगी। राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद को चाहिए कि राज्य सतर की प्रत्येक संस्था के बीच समन्वय स्थापित करें अखिल भारतीय विषय अध्यापक संस्थाएं बनाने में और भारत में सब जगह अध्यापकों के उपयोग के लिए हिन्दी और अग्रेजी में राष्ट्रीय स्तर पर पत्रिकाएँ निकालने में सहायता दें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 तथा 1992 एवं पाठ्यक्रम (National Policy of Education, 1986 and 1992 and Curriculum)– शिक्षा को बदलती हुई परिस्थितियों के संन्दर्भ में सक्षम बनाने के लिए पाठ्यक्रम का विशेष स्थान है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने पाठ्यक्रम सम्बन्धी निम्नलिखित दिशा–निर्देशों का उल्लेख किया गया है–

1. पाठ्यक्रम संविधान में दर्शाये गये मूल्यों पर आधारित हैं
2. पाठ्यक्रम समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता तथा प्रजातन्त्र को बढ़ावा देने वाला हो।
3. पाठ्यक्रम देश की सांस्कृतिक परम्पराओं तथा आधुनिक टेक्नालॉजी की खाई को पाटने वाला हो।
4. पाठ्यक्रम में मूल्यों की शिक्षा का प्रावधान हो।
5. 1986 की भाषा नीति को अपनाया जाए।
6. पाठ्यक्रम में पर्यावरण शिक्षा की व्यवस्था हो।
7. पाठ्यक्रम में कार्य–अनुभव, गणित शिक्षण एवं विज्ञान शिक्षण को दृढ़ किया जाए।
8. पाठ्यक्रम में सकीर्ण विचारों की कोई भी बात नहीं होनी चाहिए।
9. खेल और शारीरिक शिक्षा को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया जाए।
10. पाठ्यक्रम में व्यावसायिक विषयों पर विशेष बल दिया जाए।
11. एक कोर पाठ्यक्रम (Core Curriculum) हो जो सभी छात्रों के लिए अनिवार्य हो।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

5. पाठ्यचर्या के स्तर को ऊँचा करने तथा पुनः निर्माण के लिए किये जाने वाले उपायों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

14.13 राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रस्तावित पाठ्यक्रम

- टैक्नोलॉजी तथा सांस्कृतिक खाई को पाटना (Bridging the Gulf between Technology and Cultural Traditions) औपचारिक शिक्षा पद्धति और देश की समद्ध तथा विविधतापूर्ण सांस्कृतिक पराम्पराओं के बीच विद्यमान खाई को पाटना होगा। आधुनिक टैक्नालॉजी के नशे में नई पीढ़ी की जड़े भारत के इतिहास और संस्कृति से कट नहीं जानी चाहिए। हर कीमत पर संस्कृति–वहीनता, मानव गुण–विहीनता और अलगाव से बचना होगा। शिक्षा को परिवर्तन उन्मुख प्रौद्योगिकियों और देश की सांस्कृतिक परम्पराओं के सातत्य (Continuity) के बीच संश्लेषण (Synthesis) का कार्य करना होगा और शिक्षा इसे बखूबी कर सकती है।

  शिक्षा की पाठ्यचर्या तथा प्रक्रियाओं को विविध प्रकार से सांस्कृतिक विषय–वस्तु के जरिए समद्ध बनाया जायेगा। बच्चों में सौन्दर्य समन्वय और परिमार्जन की भावना विकसित की जायेगी। समाज के साधन सम्पन्न व्यक्तियों को, उनकी औपचारिक शैक्षिक योग्यता पर ध्यान दिये बिना, शिक्षा की सांस्कृतिक समृद्धि में योगदान देने के लिए आमंत्रित किया जायेगा। जिसमें अभिव्यक्ति की साहित्यिक और मौखिक पराम्पराएँ शामिल होंगी। सांस्कृतिक परम्पराओं को कायम रखने तथा उन्हे आगे ले जाने के लिए परम्परागत तरीकों से पढ़ाने वाले शिक्षकों की भूमिका को सुदृण किया जायेगा तथा इस कार्य को मान्यता दी जायेगी।

- मूल्य शिक्षा का विकास (Promotion of Values) सारभूत मूल्यों के गिरते हुए स्तर के प्रति बढ़ती हुई चिन्ता और समाज में बढ़ती हुई कटुता से यह जरूरी हो गया है कि पाठ्यचर्या में पुनर्ससमायोजन लाया जाए ताकि शिक्षा को सामाजिक, नीतिपरक और नैतिक मूल्य पैदा करने के लिए एक सशक्त साधन बनाया जा सके।

- सार्वभौमिक भावना का निर्माण (Inculcation of Eternal Values)– हमारे सांस्कृतिक और विराट समाज में शिक्षा के जरिये विकसित किये जाने वाले मूल्यों में सार्वभौमिक भावनाहोनी चाहिए और इनसे हमारे लोगों में एकता और एकीकरण की भावना विकसित होनी चाहिए। इस प्रकार की मूल्य शिक्षा रूढ़िवाद, धार्मिक कट्टरता, हिंसा, अन्धविश्वास और भाग्यवाद को समाप्त करेगी।

  इस निर्णायक भूमिका के अतिरिक्त, मूल्य शिक्षा को एक गहन और ठोस विषय–वस्तु हमारी विरासत, राष्ट्रीय और सार्वभौमिक उद्देश्य और विचारों पर आधारित हो। इसमें इस पहलू पर मुख्य रूप से जोर दिया जाना चाहिए।

- भाषाए (Languages)– 1968 की शिक्षा नीति में भाषाओं के विकास पर विस्तृत रूप से चिार किया गया था। इसके अनिवार्य उपलब्धों पर अब विचार करने की जरूरत नही है और ये आज भी पहले की तरह आवश्यक है, तथापि 1968 की नीति के इस भाग का कार्यान्वयन अनियमित रहा है। इस नीति को और अधिक तेजी और सार्थकता से कार्यान्वित किया जायेगा।

- मीडिया तथा शैक्षिक प्रोद्योगिकी का प्रयोग (Use of Media and Educational Technology)– शैक्षिक प्रौद्योगिकी को औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही क्षेत्रों में लाभदायक सूचना और शिक्षकों के प्रशिक्षण तथा पुनः प्रशिक्षण के प्रसार के लिए लाया जायेगा ताकि गुणवत्ता को सुधारा जा सके, कला और संस्कृति की जागरूकता को प्रखर किया जा सके और अपनाये जाने योग्य मूल्य पैदा किये जा सकें। उपलब्ध व्यवस्थापन का अधिक से अधिक लाभ उठाया जायेगा। जिन गाँवों में विद्युत नहीं पहुँची वहाँ बैटरी अथवा सौर ऊर्जा व्यवस्था से कार्यक्रम चलाये जायेगें।

  सांस्कृतिक रूप से संगत शैक्षिक कार्यक्रमों का निर्माण शैक्षिक प्रौद्योगिकी का एक महत्वपूर्ण भाग होगा और देश में उपलब्ध सभी संसाधनों का इस कार्य के लिए उपयोग किया जायेगा।

  माध्यम का बच्चों तथा प्रौढ़ों के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। कहीं–कहीं तो इसने हिंसा आदि को बढ़ावा दिया है और इस प्रकार इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। उत्कृष्ट शैक्षिक उद्देश्यों को

निरूत्साहित करने वाले रेडियों और दूरदर्शन कार्यक्रमों को रोका जायेगा। फिल्मों और अन्य माध्यमों में भी इस प्रकार की प्रवृतियों को रोकने के लिए कदम उठाये जायेगें। बच्चों हेतु अच्छी फिल्मों के निर्माण को बढ़ावा देने के लिए एक सक्रिय अभियान चलाया जायेगा।

- कार्य–अनुभव (Work Experience)– कार्य अनुभव जो सार्थक शारीरिक श्रम पर आधारित हो और अध्ययन प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग हो और समाज के लिए लाभदायक सामग्री अथवा सेवाओं का विकास करने वाला हो, शिक्षा के सभी पर एक अनिवार्य भाग समझा जाता है और यह सुंगठित तथा अच्छे कार्यक्रमों द्वारा उपलब्ध कराया जायेगा।

- शिक्षा और पर्यावरण (Educational and Enviroment)– पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करने की बहुत जरूरत है। इसमें बच्चे से लेकर सभी आयु वर्गों तथा समाज के सभी क्षेत्रों के लोग शामिल होने चाहिए। स्कूलों और कॉलेजों में पर्यावरणात्मक जागरूकता की शिक्षा दी जानी चाहिए। इससे पूरी शैक्षिक प्रक्रिया में शामिल किया जायेगा।

- गणित शिक्षण (Teaching of Mathematics)– गणित को एक ऐसा साधन समझा जाना चाहिए जो बच्चों को सोचने–समझने के लिए विश्लेषण करने के लिए और तर्कसंगत विचार करने के लिए प्रशिक्षित कर सके। एक विशिष्ट विषय होने के अतिरिक्त यह किसी भी ऐसे विषय के प्रति सम्बद्ध होना चाहिए जिसमें विश्लेषण तथा तर्क बुद्धि की जरूरत हो।

- कम्प्यूटर शिक्षा (Computer Literacy)– स्कूलों में कम्प्यूटर आरम्भ करने के साथ–साथ शैक्षिक संगणना और कारण तथा प्रभाव के सम्बन्धों को समझ के जरिए अध्ययन का आविर्भाव और प्रवर्तनों के पारस्परिक प्रभाव से गणित शिक्षण को उपयुक्त रूप से पुनर्गठित किया जायेगा। इसे आधुनिक प्रौद्योगिकी की योजनाओं के साथ जोड़ने के लिए सही ढंग से पुनः तैयार किया जायेगा।

- विज्ञान शिक्षा (Science Education)– विज्ञान शिक्षा को सुदृढ़ किया जायेगा ताकि बच्चों में जिज्ञासा की भावना, सृजनात्मकता, उद्देश्यपरकता, प्रश्न पूछने का साहस और सौन्दर्य–भाव जैसी योग्यताएँ और मूल्य विकसित किये जा सकें।

  विज्ञान शिक्षा कार्यक्रमों को इस तरह तैयार किया जायेगा ताकि छात्र समास्या का समाधान खोजने और निर्णय लने की कुशलता लेने की कुशलता प्राप्त कर सके और स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, तथा दैनिक जीवन की अन्य बातों के साथ विज्ञान का सम्बन्ध खोज सके। विज्ञान शिक्षा को औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र से बाहर के लोगों तक पहुँचाने का भरसक प्रयत्न किया जायेगा।

- खेल और शारीरिक शिक्षा (Sports and Physical Education)– खेल ओर शारीरकि शिक्षा अध्ययन प्रक्रिया का एक अभिन्न भाग है और इसे कार्य के मूल्यांकन में शामिल किया जायेगा। शारीरिक शिक्षा खेलों के लिए एक राष्ट्रीय स्तरक की अवस्थापना (Infrastructure) शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में तैयार की जायेगी।

- पाठ्यक्र का व्यवसायीकरण (Vocationalisation of Curriculum) प्रस्तावित पाठ्यक्रम में सुनियोजित (Planned) और व्यापक रूप में व्यापारकि शिक्षाकी शुरूआत करना महत्वपूर्ण है।

- नई शिक्षा नीति द्वारा प्रस्तावित कोर अथवा मर्म पाठ्यक्रम (Core Curriculum as Recommended by National Policy on Education)– नई शिक्षा नीति, 1986 में अन्य विषयों के साथ–साथ एक मर्म पाठ्यक्रम की सिफारिश की गई है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित दस प्रकार के तथ्य होगें। ये तथ्य किसी भी विषय का हिस्सा हो सकते हैं और इनका जानना सभी छात्रों के लिए अनिवार्य है–

  - भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (History of India'sFreedom Movement)
  - संवैधानिक दायित्व (Constitutional Obligations)
  - राष्ट्रीय एकता विकास हेतु आवश्यक विषय वस्तु (Content Essential for National Integration)
  - भारत की सांझी सांस्कृतिक विरासत (India's Common Cultural Heritage)

- समता, लोकतन्त्र एवं धर्मनिपेक्षता सम्बन्धी विषय–वस्तु (Subject Matter Relating to Egalitariansim,Democracy and Secularism)
- लैंगिक समता (Equality of Sexes)
- पर्यावरण रक्षा (Protection of Environment)
- सामाजिक बाधा उल्मूलन (Removal of Social Barriers)
- छोटा परिवार आदर्श अनुपालन (Observance of Small Family Norms)
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास (Inculcation of Scientific Temper)

21वीं शताब्दी के अनुरूप पाठ्यक्रम का निर्माण (Curriculum for the Twenty First Century)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद ने राष्ट्रव्यापी चर्चा के पश्चात् राष्ट्रीय सरोकारों (National Concerns) को ध्यान में रखते हुए स्कूली शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम(2000–2001) के निम्नलिखित उद्देश्य तथा कार्य बताए हैं–

- सामाजिक जीवने तथा भावी अधिगम के लिए आवश्यक भाषा सम्बन्धी योग्यताएं (सुनना, बोलना, पढ़ना, व लिखना) निर्मित करना।
- दिन–प्रतिदिन के कार्यकलापों में प्रभावशाली प्रतिभागिता के लिए सम्प्रेषण कौशल का निर्माण करना (मौखिक तथा दृश्यात्मक)।
- तार्किक बुद्धि के विकास के लिए गणितीय योग्यताओं का विकास करना ताकि शिक्षार्थी साधारण गणितीय कार्यों और दैनिक जीवन में उनके अनुप्रयोगों से कुछ सीख सके।
- रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास तथा भाग्यवाद को समाप्त करने के लिए प्रश्न पूछने का साहस करने तथा जानने की इच्छा शक्ति के विकास के उद्देश्य से वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सोच विकसित करना।
- जाँच–पड़ताल की वैज्ञानिक प्रविधियों का ज्ञान तथा समास्याओं के समाधान में इसका अनुप्रयोग करना।
- पर्यावरण को उसकी सम्पूर्णता में जानना (प्राकृतिक और सामाजिक तथा उसकी अनुक्रियात्मक प्रक्रिया), पर्यावरण की समास्याएँ और पर्यावरण की रक्षा के उपाय जानना।
- विभिन्न विषयों और समास्याओं को स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और विश्व स्तर पर जाँचने –परखने की योग्यता तथा स्वतंत्र रूप से स्वयं मूल्यांकन करने की क्षमता का विकास करना।
- भारत के स्वधीनता संग्राम में स्वतंत्रता सेनानियों और सामाजिक उत्थान के सामाजिक कार्यकर्ताओं के योगदान तथा उनके बलिदान का महत्व पहचानना तथा उनके आदर्शों पर तत्परता से अमल करना।
- ऐसे गुणों को बढ़ावा देना जिनसे मनुष्य में मानवता का विकास हो तथा वे सामाजिक दृष्टि से प्रभावी सिद्ध हो सकें और उन्हे जीवन की सार्थकता और दिशा मिले। ये मूल्य सामाजिक/आर्थिक और वैयक्ति/अध्यात्मिक मूल्यों से बँधे होने चाहिए।
- देश के विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों तथा देश के विभिन्न भागों में व्याप्त विविधता को समझना तथा देश की सामाजिक सांस्कृतिक विरासत को समझना।
- परिवर्तन सापेक्ष प्रौद्योगिकी और देश की परम्परा तथा विरासत की निरन्तरता के बीच सन्तुलित संश्लेषण की आवश्यकता को महत्व देना।
- राष्ट्रीय प्रतीकों के प्रति सम्मान और राष्ट्र की एकता और पहचान के आदर्श को अक्षुण्ण रखने वाले आदर्शों और अकांक्षाओं का ज्ञान कराना।
- अपने देश के विशिष्ट सन्दर्भ में भूमंडलीयकरण, उदारीकरण तथा स्थानीयकरण की प्रक्रियाओं के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों को समझना।
- सामान्य विकास के प्रतिमान के आधार पर शारीरिक मानसिक रूप से पूर्णतः स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक ज्ञान, मनोवृति, जीवनचर्या और आदतों का विकास करना।
- मानवीय मूल्यों और सामाजिक न्यायके प्रति दृढ़ प्रतिबद्धता के साथ विश्वव्यापी भाईचारें के लिए आवश्यक समानता के प्रति तत्परता का बोध कराना।

- समाजवाद पंथनिरपेक्षता, स्वस्थ लोकतंत्र तथा अंहिसा के राष्ट्रीय उद्देश्यों को जीवन में अपनाने के महत्व और इसके प्रति तत्परता का बोध कराना।
- सुशिक्षित समाज के निर्माण के लिए स्व–अधिगम, स्वतः निर्देशित अधिगम तथा जीवनपर्यन्त अधिगम के लिए आवश्यक गुणवत्ता और चारित्रिक विशिष्टताएं उत्पन्न करना।
- उत्पादकता वृद्धि आजीविका वृत्ति सन्तुष्टि और अर्थोपाज्रनकारी कार्य प्रणालियों के लिए अपेक्षित शारीरिक कार्य की गरिमा और महत्व को समझना।
- जीवन की विभिन्न परिस्थियों में सौन्दर्य की खोज तथा उसके महत्व को जानने की योग्यता तथा इसे अपने व्यक्तित्व में उतारने की आवश्यकता को समझना।
- वास्तविक सूचना को ग्रहण करने के अतिरिक्त उसे समझने ,परिलक्षित करने तथा आत्मसात् करने और अपनी अन्तर्दृष्टि को विकसित करने को क्षमता क निर्माण करना।
- विभिन्न विषयों/विचारधाराओं की विविधता और अन्तरालों को स्वीकार करने और उनके महत्व को समझने की योग्यता और मूल्य व्यवस्थाओं के विकल्पों के चयन कीक्षमता बढ़ाना।
- बड़े परिवारों के विभिन्न प्रभावों और परिणामों को समझना तथा जनसंख्या अतिवृद्धि और जनसंख्या वृद्धि को रोकने की जरूरत को समझना।
- स्वस्थ लैंगिक सम्बन्धों के प्रति समुचित दृष्टिकोण और मनोवृत्ति का विकास तथा विपरीत लिंग के सदस्यों के प्रति आदरपूर्ण व स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास करना।

14.14 पाठ्यक्रम के विभिन्न स्तरों के उद्देश्य

किसी विशिष्ट आयु वर्ग के शिक्षार्थियों के शारीरिक,मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक, और सामान्य विकास की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किसी स्तर/कक्षा विशेष में संप्राप्ति योग्य शिक्षा के उद्देश्यों के सावधानीपूर्वक निर्धारण के लिए 'शिक्षार्थी–केन्द्रित अधिगम' पर बल देना आवश्यक है। किसी कक्षा स्तर विशेष के लिए प्रत्येक उद्देश्य से सम्बद्ध प्रत्याशित भावी अधिगम प्रतिफलों का पूर्वानुमान किया जाना चाहिए।

ऊपर दिये गये उद्देश्यों में से अधिकतर उद्देश्य विभिन्न कक्षाओं में निरन्तर जारी रखे जाने चाहिए। फिर भी, एक कक्षा से दूसरी कक्षा में किसी विशिष्ट उद्देश्य के सन्दर्भ में संप्राप्ति के स्तर में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहेगी। जहाँ तक किसी विशिष्ट उद्देश्य की संप्राप्ति के लक्ष्य का प्रश्न है, वहाँ एक प्रकार का अधिगम सांतत्यक होगा तथा यह किसी विशिष्ट कक्षा स्तर पर अन्तिम बिन्दु तक पहुँचेगा जो कि सम्बन्धित उददेश्य के स्वरूप पर निर्भर होगा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

6. विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम के क्या उद्देश्य हैं?

.....

.....

14.15 सरांश

सामाजिक समूह किसी भी दो या दो से अधिक व्यक्तियों के ऐसे समूह को कहते है जो एक दूसरे से सम्पर्क व लेन–देन रखे, जिनमें एक दूसरे से कुछ समानताएं हो जो आपस में एकता की भावना रखे। उपर्युक्त

पाठ के विवेचन के अन्तर्गत सामाजिक समूहों का दो प्रकार से वर्गीकरण किया गया है– प्राथमिक समूह एवं द्वितीयक समूह। कनिंघम ने पाठ्यक्रम की लोकप्रिय परिभाषा दी है जिसके अनुसार 'पाठ्यक्रम अध्यापक रूपी कलाकार (Artist) के हाथ में वह साधन (Tool) है। जिसके माध्यम से वह अपने पदार्थ (Material) रूपी छात्र को अपने कला गृह रूपी स्कूल (Studio) में अपने उद्देश्य के अनुसार विकसित अथवा रूप (Mould) प्रदान करता है।'' पाठ्यक्रम निर्माण के निम्नलिखित आधारभूत सिद्धांतों–परम्पराओं को सुरक्षित रखने का सिद्धांत, जीवन की तैयारी का सिद्धांत इत्यादि का वर्णन किया गया है। पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का वर्णन किया गया है। विभिन्न समूहों के अपवर्जन को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए तथा पाठ्यक्रम के विभिन्नीकरण को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए। मुख्य रूप से दो प्रकार के पाठ्यक्रम का प्रयोग किया जाता है– विषय– केन्द्रित पाठ्यक्रम तथा अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम।

14.16 अभ्यास के प्रश्न

1. पाठ्यक्रम निर्माण के आधारभूत सिद्धांतों का वर्णन कीजिए।
2. अनुभवगत पाठ्यक्रम के त्रुटियों की विवेचना कीजिए।
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अनुसार प्रस्तावित पाठ्यक्रम की चर्चा कीजिए।
4. पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में विभिन्न दार्शनिकों के विचारों की व्याख्या कीजिए।
5. विषयगत पाठ्यक्रम एवं अनुभविगत पाठ्यक्रमों में विभेद कीजिए।

14.17 चर्चा के बिन्दु

1. पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांत, दार्शनिक विचार, पाठ्यक्रम का क्रियान्वयन, राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रस्तावित पाठ्यक्रम आदि महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर चर्चा कीजिए।

14.18 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ''पाठ्यक्रम अध्यापक रूपी कलाकार (Artist) के हाथ में वह साधन (Tool) है जिसके माध्यम से वह अपने पदार्थ रूपी छात्र (Material) को अपने कलागृह रूपी स्कूल (Studio) में अपने उद्देश्य के अनुसार विकसित अथवा रूप (Mould) प्रदान करता है।'' इसमें कोई सन्देह नहीं कि कलाकार को अपने पदार्थ को अपने आदर्शों के अनुरूप ढालने की बहुत स्वतंत्रता है, क्योंकि कलाकार का पदार्थ निर्जीव है। परन्तु स्कूल में अध्यापक का पदार्थ अर्थात छात्र सजीव है। पुराने समय में जबकि आवश्यकताएँ सीमित थी, साधन सीमित थे, अध्यापक को अपने पदार्थ यानि कि छात्र को नया रूप देने में पूरी स्वतंत्रता थी। परन्तु अब बदलती हुई परिस्थितियों में अध्यापक की यह महत्ता घट गई है। फिर भी निश्चय ही अध्यापक के हाथ में पाठ्यक्रम बहुत ही महत्वपूर्ण साधन है।
2. रस्क (Rusk) महोदय ने कहा है, ''पाठ्यक्रम का संगठन जितना दर्शन पर आधारित होता है, उतना शिक्षा का कोई अन्य पहलू नहीं है। शिक्षा सम्बन्धी मुख्य तीनों दर्शन– प्रकृतिवाद, आदर्शवाद तथा प्रयोजनवाद इस विचार पर सहमत हैं कि बच्चों को अपेक्षित अनुभवों के साधन जुटाये जाने चाहिए। परन्तु तीनों विचारधाराएं इस पर एकमत नहीं है कि बच्चों को किस प्रकार का अनुभव करवाया जाए तथा किस प्रकार से।"
3. माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार माध्यमिक शालाएं एक मार्गीय नहीं होनी चाहिए बल्कि उनके अन्दर शैक्षिक कार्यों में भिन्नता होनी चाहिए। प्रत्येक विद्यार्थी एक–दूसरे से भिन्न होता है अतः इसको ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्धारण करना चाहिए।

4. पाठ्यक्रम का क्रियान्वयन अध्यापक अपने सूझ–बूझ के आधार पर करता है। अध्यापक को यह सोच विचार करना होता है कि किस विधि से पाठ्यक्रम में दी गयी विषयवस्तु का क्रियान्वयन किया जाये।
5. पाठ्यचर्या के स्तर को ऊँचा करने के उपाय– अनुसंधान को बढ़ावा, पाठ्यपुस्तके एवं शिक्षण साधन तैयार करना, प्रयोगिक पाठ्यक्रम पर बल, उच्च पाठ्यचर्याओं को क्रमिक रूप से लागू करना।
6. किसी विशिष्ट आयु वर्ग के शिक्षार्थियों के शारीरिक,मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक, और सामान्य विकास की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किसी स्तर/कक्षा विशेष में संप्राप्ति योग्य शिक्षा के उद्देश्यों के सावधानीपूर्वक निर्धारण के लिए 'शिक्षार्थी–केन्द्रित अधिगम' पर बल देना आवश्यक है। किसी कक्षा स्तर विशेष के लिए प्रत्येक उद्देश्य से सम्बद्ध प्रत्याशित भावी अधिगम प्रतिफलों का पूर्वानुमान किया जाना चाहिए।

14.18 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. गुप्ता रत्ना, मौर्या गीतान्जलि (प्रथम नवीनतम संस्करण), पाठ्यचर्या के सैद्धांतिक आधार, लखनऊ : शैक्षिक पुस्तक प्रकाशन।
2. एन0सी0एफ0 (2005), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिसर।
3. माथुर, एस0एस0 (2010–2011), शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन।
4. गुप्त, लक्ष्मी नारायन (2008–2009), शिक्षा एवं दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, इलाहाबाद : न्यू कैलाश प्रकाशन।
5. पाण्डेय, के0पी0 (2005), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजिक आधार, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
6. शुक्ला रमा, सिंह मधुरिमा, (तृतीय नवीनतम संस्करण), शिक्षा के दार्शनिक आधार, लखनऊ : आलोक प्रकाशन।
7. मालवीय रोजीव, विजिलिंग फैकेल्टी (2012), शिक्षा के मूल सिद्धांत, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन।
8. सारस्वत मालती, गौतम एस0एल0 (नवीनतम संस्करण), भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्याएं, लखनऊ : आलोक प्रकाशन।

इकाई– 15 : विविधताएं दूर करने में शिक्षा की भूमिका

इकाई की संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 इकाई के उद्देश्य

15.3 विभेदीकरण का अर्थ

15.4 विविधता अथवा विभेदीकरण की परिभाषा

15.5 विविधता के तत्व

- 15.5.1 जाति के आधार पर विविधता
- 15.5.2 धर्म के आधार पर विविधता
- 15.5.3 भाषा के आधार पर विभिन्नता
- 15.5.4 प्रान्त के आधार पर विभिन्नता
- 15.5.5 राजनीतिक दल के कारण विविधता
- 15.5.6 संवैधानिक भ्रान्तियों के कारण विविधता
- 15.5.7 नेतृत्व के अभाव के कारण विविधता

15.6 विविधता को दूर करने में शिक्षा की भूमिका

- 15.6.1 शिक्षा के उद्देश्य
- 15.6.2 शिक्षा का पाठ्यक्रम
- 15.6.3 शिक्षण विधि
- 15.6.4 शिक्षक की भूमिका

15.7 विविधता को दूर करने हेतु शैक्षिक कार्यक्रम

15.8. सारांश

15.9 अभ्यास के प्रश्न

15.10 चर्चा के बिन्दु

15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.1 प्रस्तावना

किसी राष्ट्र की सुरक्षा, समृद्धि, विकास में उस राष्ट्र के निवासियों में परस्तपर स्नेह–भाव, सहयोग, मित्रता,भाईचारा, सह अस्तित्व एवं रागात्मकता का विशेष महत्व होता है इससे राष्ट्र आन्तरिक कलह से मुक्ति पाता है और विकास की दिशा में आगे ही बढ़ता जाता है। किन्तु यदि किसी राष्ट्र के निवासी विविध आधारों, प्रसंगों पर अलग–अलग दृष्टिकोण रखने वाले, अंहवादी, व्यक्तिवादी होते है तो उस राष्ट्र में आंतरिक कलह, कटुता, मनोमालिन्य, द्वेष, झगड़ा आदि बुराईयाँ आ जाती है। इससे राष्ट्र का विकास अवरूद्ध हो जाता है तथा

समाज में विभेदकता परिलक्षित होने लगती है। आपसी फूट का लाभ उठाकर अन्य राष्ट्रों के आक्रमण का खतरा उत्पन्न हो जाता है अतः प्रत्येक राष्ट्र विभेदकता की समाप्ति तथा लोगों में राष्ट्र के प्रति प्रेम का संचार करने के लिए 'शिक्षा का सहारा लेते हैं। शिक्षा लोगों में राष्ट्रप्रेम, एकता, भाईचारा तथा सहिष्णुता का बीजा रोपण करती है। इस प्रकार विविधता को दूर करने के लिए शिक्षा एक अमोष अस्त्र है शिक्षा ही वह माध्यम है जिससे समाज में फैली हुई विविधता को दूर किया जा सकता है। प्रस्तुत अध्याय में विविधता का वर्णन भारतीय समाज के सन्दर्भ में किया जायेगा।

15.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेगें कि–

1. विभेदीकरण का अर्थ समझ सकेंगें।
2. विविधता के प्रमुख तत्वों के बारे में जान सकेगें।
3. विविधता को दूर करने में शिक्षक की भूमिका का वर्णन कर सकेगें।
4. विविधिता को दूर करने हेतु प्रस्तावित शैक्षिक कार्यक्रमों के बारें में जान सकेंगे।

15.3 विभेदीकरण का अर्थ

विभेदीकरण अंग्रेजी भाषा के शब्द Differntiation का हिन्दी अनुवाद है। जिसका अर्थ होता है– To distingusish by difference- अर्थात् भिन्नता के आधार पर अलग करना। प्राचीन समाज में भिन्नता का आधार आयु तथा लिंग को माना गया,लेकिन जैसे–जैसे समाज का विकास होता गया व्यवसाय, जाति, प्रजाति धर्म, राजनीति आदि को भिन्नता का आधार माना गया। आज के मनोवैज्ञानिक युग में व्यक्तियों की भिन्नताओं को उनकी बौद्धिक क्षमताओं, रूचियों और अभिक्षमताओं के अनुसार ही देखा गया है। अतः उनके कार्य भी भिन्न–भिन्न होगे, चाहे आधार जाति, प्रजाति, धर्म हो, अथवा योग्यताएं व रूचियां हो। कार्यों के आधार पर ही समाज में उनकी स्थिति का निर्धारण होता है। शिक्षालय में पढ़ाने वाले को शिक्षक, दुकान पर काम करने वाले को व्यापारी कह दिया जाता है। समाज में इस प्रकार अनेक समूह बन जाते हैं। समाज विभिन्न समूहों में विभाजित हो जाता है। ''समाज का विभिन्न समूहों में विभाजित होने को ही समाजिक विभेदीकरण अथवा सामाजिक विविधता कहा जाता है।''

15.4 विविधता अथवा विभेदीकरण की परिभाषा

मार्टिन न्यूमेयर ने सामाजिक विभेदीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया है–''सामाजिक विभेदीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तियों और समूहों में प्राणिशास्त्रीय,वंशानुक्रम और शारीरिक लक्षणों– आयु, लिंग, प्रजाति, सपिण्डी या व्यक्तित्व के अर्जित लक्षण तथा कार्य और सामाजिक सम्बन्ध व समूह संरचना में भेदों के कारण सामाजिक भिन्नतायें उत्पन्न होती हैं। सामाजिक भिन्नताएं, विभेदीकरण की प्रक्रिया के चरण एवं उत्पत्ति दोनों है।''

श्री एफ0 लूम्ले ने विभेदीकरण को परिभाषित करते हुए लिखा है, ''विभेदीकरण से हामरा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति भिन्नताओं का पोषण करतें हैं, जिन्हे (विभिन्नताओं) एक साथ रखने पर आरकेस्ट्रा के विभिन्न बालकों की तरह एक पूर्ण सामजस्य समग्रता की रचना होती है।

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से विभेदीकरण की निम्नलिखित विशेषताएं दृष्टिगोचित होती है–

I. सामाजिक विभेदीकरण एक तटस्थ प्रणाली है क्योंकि यह प्रणाली यह नहीं बताती कि समाज में कौन छोटा है और कौन बड़ा है। उदाहरण के लिए लिंग के आधार पर समाज में दो वर्ग होते हैं–पुरूष वर्ग और स्त्री वर्ग। लेकिन इनमें कौन बड़ा है और कौन छोटा इसका संकेत नहीं मिलता।

II. यह एक चेतन प्रक्रिया है।

III. यह अवैयक्तिक प्रक्रिया है क्योंकि विभिन्न समूह के लोग एक दूसरें के प्रति विरोध की भावना नहीं रखते।

IV. यह एक सर्वव्यापी प्रक्रिया है।

15.5 विविधता के तत्व

भारत अपने वैभव, सम्पन्नता, धर्म, नीति सस्कृति, दर्शन के कारण प्राचीनकाल से ही विश्व की प्रमुख सभ्यताओं में समृद्धिशाली रहा है। यहां की सम्पन्नता को देखकार शुरू से ही विदेशी आक्रमणकारियों, साम्राज्यवादियों की नियति खराब रही है। परिणामतः उन्होने पहला निशाना भारत की विविधतापूर्ण अनेकता में विद्यमान एकता को बनाया क्योंकि वे यह जानते थे कि विभिन्नता में निहित एकता के विखण्डन से ही भारत के वैभव, धन– सम्पदा को प्राप्त किया जा सकता है। भारत एक ऐसा देश है जहां लम्बे समय तक विदेशियों ने शासन किया, सभी ने अपने–अपने तरीके से देश का शोषण किया तथा देश की संस्कृति को तहस–नहस कर दिया। भारत में विदेशी आक्रमणकारियों के सफल होने का एक प्रमुख कारण भारत में विविधता या विभिन्नता का होना रहा है। किसी भी समाज मे अनेक प्रकार की विविधता पायी जाती है जिसके प्रमुख तत्वों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है–

15.5.1 जाति के आधार पर विविधता

विविधता या विभिन्नता का एक प्रमुख तत्व या कारण जातिवाद हैः भारत में अनेक प्रकार की जातियाँ निवास करती है और प्रत्येक जाति अपने स्वार्थपूर्ति हेतु दूसरे जाति को नीचा दिखाने का प्रयास करती रहती है। ऐसा माना जाता है कि हिन्दू धर्म में प्रचलित वर्ण व्यवस्था की आरम्भ वैदिक काल से माना जाता है वैदिक काल को दो भागों में बांटा गया है–

a. ऋग्वैदिक काल

b. उत्तर वैदिक काल

ऋग्वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था 'कर्म' पर आधारित थी अर्थात जैसा कर्म वैसा वर्ण। कर्म के अनुसार वर्ण का आरोपण होता था, किन्तु उत्तर वैदिक काल में धीरे–धीरे इस स्थिति में परिवर्तन आने लगा। अब वर्ण व्यवस्था का आधार कर्म' न होकर जन्म' हो गया। उत्तर वैदिक काल में पिता के वर्ण में जन्म लेने वाले सन्तान का वर्ण भी वही हो गया जो कि उसके पिता का था। वर्ण पर आधारित इस जाति व्यवस्था ने भारतीय समाज की एकता को छिन्न– भिन्न कर दिया। एकता का स्थान विविधता ने ले लिया। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने इस विविधता का फायदा उठाया और भारतीय संस्कृति, शिक्षा, आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को गम्भीर क्षति पहुँचाया।

भारतीय समाज की यह विविधता नगरों की अपेक्षा ग्रामों में अधिक दिखायी देती है गाँवों में आज भी अन्तरजातीय विवाह को मान्यता नहीं मिलती है जबकि नगरों में अब अन्तरजातीय विवाह होने लगे हैं यद्यपि अभी भी इसमें कमी दिखयी पड़ती है किन्तु पूर्व की तुलना में अब शहरों में जातिगत बंधन टूटते दिखाई पड़ रहे हैं। जातिगत भेदभाव देश की राजनीतिक दलों का गठन हो रहा है और चुनाव के समय तो खुलकर जाति विशेष का नाम लेकर वोट मांगा जाता है। उत्तर प्रदेश की राजनीति में जातिवाद का अत्यधिक बोल बाला है। विविधता को दूर करना है हम लोगों को जाति से उपर उठकर राष्ट्रहित के बारे में सोचना होगा।

15.5.2 धर्म के आधार पर विविधता

भारतीय समाज और जनजीवन में धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक विभिन्नता भी बहुत है। विश्व के सभी धर्मों के अनुयायी भारत में निवास करते हैं और अपनी धार्मिक मान्यताओं को कायम करने का प्रयास करते है भारत के एक धर्म निरपेक्ष देश है जहां सभी धर्म के लोगों को अपने धर्म को मानने एवं प्रचार प्रसार करने का अधिकार है और यही अधिकार समाज में विविधता को उत्पन्न करने के कारण बनती है। एक धर्म का व्यक्ति

दूसरे धर्म के व्यक्ति को नीचा दिखाने का प्रयास करता है और अपने धर्म को श्रेष्ठ साबित करना चाहता है। धार्मिक विविधता को बढ़ाने में जातिगत विविधता का भी योगदान है। हिन्दू धर्म में चार वर्ण माने गये है और ये वर्ण भी अनेक उपजातियों में बंटे हुए है ऊँची जाति के लोग स्वयं को श्रेष्ठ समझकर छोटी या नीची जाति के लोगों से भेदभाव करते है, उन्हे सामाजिक अधिकारों से वंचित करते हैं। इस भेदभाव से तंग आकर नीची जाति वाले धर्म परिवर्तित कर अन्य धर्मों को स्वीकार कर लेते है जिसका परिणाम यह होता है कि दूसरे के धर्म को अपनाने पर उस धर्म वाले भी उन्हे सम्मान की दृष्टि से नहीं देखते हैं। जिसका परिणाम यह होता है कि समाज में धार्मिक विविधता और बढ़ावा देता है परिणामतः आन्तरिक कलह, ईर्ष्या, द्वेष की भावना पैदा हो जाती है। साम्प्रदायिक दंगा, झगड़ा प्रारम्भ हो जाता है जिससे देश की एकता को क्षति पहुँचती है।

15.5.3 भाषा के आधार पर विविधता

यद्यपि हमारे संविधान में हिन्दी को राज–भाषा घोषित किया गया है परन्तु इसके साथ अनेक क्षेत्रीय भाषाओं को भी मान्यता दी गयी है। इसलिए हमारे देश के नागरिक क्षेत्रीय भाषाओं की संकीर्णता में फसे हुए और राष्ट्रभाषा की अवहेलना कर रहे हैं। उत्तर भारत के लोग हिन्दी भाषा एवं हिन्दी भाषी दोनों को विरोध करते हैं। महाराष्ट्र में हिन्दी भाषियों को भगाने का प्रचलन शुरू हो गया था, वहां राजनैतिक पार्टियों का गठन भी हिन्दी भाषियों के विरोध एवं मराठी भाषियों के समर्थन में होने लगा है। भाषा के नाम पर दिन–प्रतिदिन झगड़े हो रहे है सब अपनी अपनी भाषा को श्रेष्ठ साबित करने में लगा हुआ है। कुछ स्वार्थी लोगों ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए भाषा के प्रश्न को अत्यंत जटिल बना दिया है। यह भाषावाद लागों में कटुता एवं मनोमालिन्य उत्पन्न करता रहता है। यह संस्थिति राष्ट्रीय एकता के मार्ग में रूकावट उत्पन्न करती है।

15.5.4 प्रान्त के आधार पर विविधता

भारत एक विशाल राष्ट्र है जो अनेक राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में बटा हुआ है प्रत्येक राज्य की अपनी एक विशेषता है हर राज्य भाषा, रहन–सहन, खान–पान, बोल–चाल इत्यादि में दूसरे राज्य से भिन्न है। जो व्यक्ति जिस प्रान्त अथवा राज्य में जन्म लेता है उसे उसकी संस्कृति, भाषा, रीति–रिवाज से प्रेम होना स्वाभाविक है किन्तु जब यह प्रेम दूसरे राज्य और उसके निवासियों के लिए आलोचना में बदल जाए तो यह विविधता किसी भी राष्ट्र के लिए अहितकारी हो सकती है। भारतीय संविधान की धारा 370 एक विभेदकारी अनुच्छेद या जो प्रान्तीय विभिन्नता उत्पन्न करता था।

यह अनुच्छेद एक विघटनकारी कार्य करता था जो जम्मू और कश्मीर के निवासियों को ए विशाल गर्व की धकेलने का कार्य कर रहा था किन्तु अगस्त 2019 में इस अनुच्छेद को हटाकर विभिन्नता में एकता स्थापित करने का प्रया किया गया है।

15.5.5 राजनीतिक दल के कारण विविधता

आजादी के बाद भारत में अनेक राजनैतिक दलों का गठन हुआ। इन राजनीतिक दलों का गठन राजनीतिक चेतना एवं जनतंत्र के निर्माण हेतु किया गया किन्तु दुर्भाग्यवंश ऐसा नहीं हुआ। कुछ ऐसे राजनीतिक दल है जो देश के विकास के बारे में सोचते है किन्तु अधिकांश राजनीतिक दल स्वार्थपूर्ति का साधन मात्र बनकर रह गये है। ये राजनीतिक दल जाति, धर्म, सम्प्रदाय, क्षेत्र एवं भाषाके नाम पर लोगोंको भड़काकर कर अपनी राजनीतिक रोटियां सेक रहे हैं। तथा जनता का एक सच्चा हमदर्द एवं रहनुमाई करने का लुभावना प्रलोभन देकर अनेक बीच कटुता उत्पन्न करते है। जन सामान्य की भावनात्मक संवेदनात्मक गुट बन जाते है। इससे परिवार, समाज में कटुता का माहौल पनपता है जिससे राष्ट्र में विविधता की भावना उत्पन्न होती है और एकता की भावना छिन्न–भिन्न हो जाती है।

15.5.6 संवैधानिक भ्रान्तियों के कारण विविधता

भारत का संविधान नागरिकों को 6 मूल अधिकार प्रदान करता है जिससे समानता के अधिकार हेतु कुछ विशेष संवैधानिक प्राविधान किये गये है, समाज के वंचित वर्गों एस0सी0, एस0टी0, ओ0बी0सी0, इत्यादि को विशेष सहूलियत प्रदान की गई है। कई बार वर्ग विशेष हेतु कुछ नयी नितियों इत्यादि की घोषणा होती है जिसे

दूसरा वर्ग नाराज हो जाता है तथा इन वर्गों से द्वेष रखने लगता है जिससे उत्पन्न विविधना से राष्ट्रीय एकता को क्षति पहुँचती है।

15.5.7 नेतृत्व के अभाव के कारण विविधता

किसी किसी भी राष्ट्र के विकास के लिए उचित नेतृत्व का होना परम आवश्यक है अच्छा नेतृत्व राष्ट्र को एक सूत्र में बांधकर रखता है। कई बार ऐसा देखा जाता है कि स्थानीय नेता अपने निजी स्वार्थों को पूरा करने के लिए जनता में जातीयता, साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता आदि अवांछनीय भावनाओं को भड़काते रहते है जिससे आपसी भेद–भाव को बढ़ावा मिलता है और राष्ट्रीयता खतरे में पड़ जाती है। अच्छे नेतृत्व के अभाव में राष्ट्रहितकारी नीतियां लागू नहीं हो पाती, जिससे लोगों में असंतोष से लोगों में वैमनस्य एवं कलह को बढ़ावा मिलता है।

उपरोक्त कारको के अतिरिक्त बेरोजगारी, दलवाद, आदर्शों एवं मूल्यों का पतन, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति तथा राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का अभाव भी विविधता को बढ़ाने में योगदान देता है। भारत में औद्योगीकरण, मशीनीकरण का जितना अधिक विस्तार हो रहा है, उस मात्रा में जनसामान्य को रोजगार नहीं मिल रहा है, जिससे युवा वर्ग कुंठा, तनाव, दबाव, संत्रास, निराशा एवं असंतोष का शिकार हो रहा है। परिणामतः रोजी को चलाने के लिए कुछ लोग विघटनकारी शक्तियों से मिलकर गलत कार्यों की ओर उन्मुख हो रहे है और देश विरोधी कार्य करके आपसी भेद–भाव को बढ़ावा दे रहे हैं। आदर्शों एवं मूल्यों के पतन से भी विघटनकारी शक्तियों को बढ़ावा मिल रहा है। व्यक्तिवादिता, स्वार्थपरता, फैशनपरस्ती के कारण नैतिक एवं अनैतिक रूप से धनोपार्जन करना व्यक्ति का चरम लक्ष्य बनता जा रहा है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

1. विभेदीकरण का अर्थ एवं परिभाषा बताइए।

.....

.....

2. विविधता के प्रमुख तत्वों की विस्तृत विवेचना कीजिए।

.....

.....

15.6 विविधता को दूर करने में शिक्षा की भूमिका

शिक्षा हमारे विचार एवं व्यवहार में परिवर्तन करने का मुख्य साधन है। शिक्षा राष्ट्र के निर्माण में सहायक होती है। इससे देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक उन्नति होती है और प्रान्तीयता, भाषा तथा जाति भेद को आश्रय नहीं मिलता है। देश के नागरिक एकता के सूत्र में बंध जाते है। परस्पर द्वेष–भाव एवं स्वार्थ को छोड़कर राष्ट्र की सेवा के लिए तैयार रहते हैं। वे राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझते है और उन्हे निभाने का भरसक प्रयत्न करते हैं। शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा प्रजातांत्रिक मार्ग अपनाकर विविधता को दूर किया जाा सकता है विविधता को दूर करने के लिए शिक्षा का प्रारूप कैसा हो? इसके लिए शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा की रूपरेखा तैयार की है जो इस प्रकार है–

15.6.1 शिक्षा के उद्देश्य

- राष्ट्रीय एकता उत्पन्न करना तथा शिक्षकों एवं छात्रों में उचित विचार, विश्वास एवं आचरण का सृजन कना।

- छात्रों को विभिन्न संस्कृतियों का सही ज्ञान देना तथा उनके प्रति सम्मान का भाव पैदा करना।
- छात्रों में संघर्षात्मक तत्वों को समाप्त करना एवं उनमें वांछनीय व्यवहार का विकास करना।
- छात्रों में भावात्मक एकता के गुणों का विकास करना।

15.6.2 शिक्षा का पाठ्यक्रम

- वर्तमान पाठ्यक्रम में अन्तरसांस्कृतिक सम्बन्धों पर विशेष जोर देना।
- राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता देना और पक्षपातपूर्ण पाठ्यवस्तु का बहिस्कार करना।
- तथ्यों को बिना छोड़े संवेगात्मक शब्दों द्वारा उचित संवेगात्मक भावना का विकास करना।

15.6.3 शिक्षण विधि

विविधता को दूर करने के लिए व्यक्तिगत शिक्षण विधि की तुलना में सामूहिक शिक्षण विधि ज्यादा उपयोगी है। इस विधि के प्रयोग से पारस्परिक स्नेह, सहयोग एवं सहनशीलता के गुणों का विकास होता है।

15.6.4 शिक्षक की भूमिका

विविधता को दूर करने में शिक्षकों का विशेष उत्तरदायित्व है। शिक्षक का आचरण छात्रों के लिए प्रेरणास्त्रोत होता है। अतः अध्यापक को चरित्रवान एवं जाति, धर्म, भाषा दलबंदी के दायरे से मुक्त तथा विशाल दृष्टिकोण वाला होना चाहिए। शिक्षक अगर विविधता से ज्यादा एकता के मूल्यों में विकास करने वाला होगा तो वह छात्रों में भी ऐसे ही विचारों का आरोपण कर सकेगा।

15.7 विविधता को दूर करने हेतु शैक्षिक कार्यक्रम

माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53) में विविधता को दूर कर राष्ट्रीय एकता स्थापित करने हेतु निम्नलिखित चार बातों पर बल दिया गया है–

1. देश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक निष्पत्तियों का मूल्याकंन।
2. देश की निर्बलताओं को स्वीकार करने की तत्परता।
3. राष्ट्रहित हेतु स्वःहित का त्याग।
4. योग्यतानुकूल देश सेवा।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर शिक्षा का कार्यक्रम तैयार करना होगा जिसका अर्थ है कि शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए एक विशेष पाठ्यक्रम का निर्माण करना होग। पाठ्य का निर्माण इस प्रकार किया जा सकता है–

प्राथमिक स्तर (Primary stage)–

प्राथमिक स्तर पर पाठ्य पर पाठ्यवस्तु की क्रियाओं को सम्मलित किया जाए–

1. छात्रों को विभिन्न क्षेत्रों के लोक–गीतों, कहानियों एवं महापुरूषों की जीवनियों से परिचित कराया जाय।
2. छात्रों को मानव भूगोल का ज्ञान कराया जाए। इससे बालकों में दूसरों के प्रति सद्भावना आयेगी।
3. राष्ट्रगीत, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्र चिन्ह, राष्ट्रीय पुष्प, राष्ट्रीय पक्षी आदि के विषय में बालकों को जानकारी कराया जाय एवं उसका महत्व बताया जाय।
4. बालकों को लोकगीतों तथा विभिन्न क्षेत्रों की कहानियों को सुनाया जाये एवं सामाजिक जीवन की सरल बातों का ज्ञान कराया जाये।

माध्यमिक स्तर (Secondary stage)– इस स्तर पर निम्न प्रकार की पाठ्यवस्तु का अध्ययन कराया जाये–

1. बालकों को देश के सामाजिक एवं ऐतिहासिक तथ्यों की पूर्ण जानकारी करायी जाये।

2. राष्ट्र–भाषा के साथ–साथ एक अन्य हिन्दुस्तानी भाषा की शिक्षा दी जाये।
3. राष्ट्रीयता के सम्बन्ध में महापुरूषों के व्याख्यान कराये जाये तथा बालकों को भारतीय संस्कृति से परिचित कराया जाए।

विश्वविद्यालय स्तर (University stage)– विश्वविद्यालय स्तर पर बालकों में निम्नलिखित प्रकार के कार्यक्रमों का बोध कराया जाना चाहिए–

1. देश के आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं पर विचार–विमर्श किया जाए।
2. समय–समय पर विचार गोष्ठियों एवं अध्ययन गोष्ठियों का आयोजन किया जाए तथा विभिन्न क्षेत्रों के छात्रों को आमंत्रित किया जाए।
3. छात्रों को देश के विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों एवं पराम्पराओं ाक तुलनात्मक अध्ययन कराया जाये।

भारत विविधताओं से भरा राष्ट्र है जहां विभिन्न धर्मों, भाषाओं, जातियों, सम्प्रदायों को मानने वाले लोग रहते हैं। कई बार यह विविधता राष्ट्र के हित में होतीहै परन्तु जब विविधता में कट्टरता आने लगती है तो यह राष्ट्र के लिए अहितकारी साबित होता है। शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा विविधता को दूर किया जा सकता है तथा राष्ट्रीय एकता की स्थापना की जा सकती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

(क) निम्नलिखित बोध प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

(ख) इकाई के अंत में दिए गए बोध प्रश्नों के उत्तर से अपने उत्तर का मिलान कीजिए।

3. विविधता को दूर करने में शिक्षक की भूमिका वर्णन कीजिए।

.....

.....

4. विविधता को दूर करने हेतु प्रस्तावित शैक्षिक कार्यक्रमों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

15.8 सरांश

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि किसी राष्ट्र की सुरक्षा, समृद्धि, विकास में उस राष्ट्र के निवासियों में परस्पर स्नेह–भाव, सहयोग, मित्रता, भाईचारा सह अस्तित्व एवं रागात्मकता का विशेष महत्व होता है। इससे राष्ट्र आन्तरिक कलह से मुक्त होकर विकास की ओर अग्रसर होता है। उपर्युक्त पाठ में विभेदीकरण का अर्थ एवं परिभाषा का वर्णन किया गया है। श्री एफ0 लूम्ले के अनुसार ''विभेदीकरण से हमारा तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा व्यक्ति भिन्नताओं का पोषण करते हैं जिन्हे (विभिन्नताओं) एक साथ रखने पर आरकेस्ट्रा के विभिन्न बालकों की तरह एक पूर्ण सामंजस्य व समग्रता की रचना होती है। ''विविधता का वर्गीकरण कई प्रकार से किया गया है– जाति के आधार पर विविधता, धर्म के आधार पर विविधता, भाषा के आधार पर विविधता, राजनीतिक दल के कारण विविधता, संवैधानिक भ्रांतियों के कारण विविधता तथा नेतृत्व के अभाव में विभिन्नता। विविधता को शिक्षा द्वारा दूर करने के लिए शिक्षाशास्त्रियों ने रूपरेखा तैयार की है। जिसके अनुसार, शिक्षा के उददे्श्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण–विधि तथा शिक्षक द्वारा विविधता को दूर किया जा सकता है। विविधता को दूर करने के लिए शिक्षा के प्रत्येक स्तर, प्राथमिक, माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर शैक्षिक कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता है।

15.9 अभ्यास के प्रश्न

1. विभेदीकरण के अर्थ एवं परिभाषाओं को लिखें।
2. जाति एवं धर्म के आधार पर विविधता का वर्णन कीजिए।
3. भाषा के आधार पर विभिन्नता के कारण बताए।
4. विविधता को दूर करने में शिक्षा की भूमिका की व्याख्या कीजिए।
5. विविधता को दूर करने हेतु उपयोग में लाये जाने वाले शैक्षिक कार्यक्रमों की विवेचना कीजिए।

15.10 चर्चा के बिन्दु

1. विविधता के तत्वों, विविधता दूर करने में शिक्षा की भूमिका एवं शैक्षिक कार्यक्रमों के सम्बन्ध में चर्चा कीजिए।

15.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. विभेदीकरण अंग्रेजी भाषा के शब्द Differntiation का हिन्दी अनुवाद है। जिसका अर्थ होता है– To distingusish by difference- अर्थात् भिन्नता के आधार पर अलग करना। प्राचीन समाज में भिन्नता का आधार आयु तथा लिंग को माना गया,लेकिन जैसे–जैसे समाज का विकास होता गया व्यवसाय, जाति, प्रजाति धर्म, राजनीति आदि को भिन्नता का आधार माना गया।

2. विविधता के प्रमुख तत्व– जाति के आधार पर विविधता, धर्म के आधार पर विविधता, भाषा के आधार पर विविधता, प्रान्त के आधार पर विविधता, संवैधानिक भ्रातिंयों के कारण तथा नेतृत्व के अभाव में विविधता इत्यादि।

3. विविधता को दूर करने में शिक्षक की भूमिका– शिक्षा के उद्देश्यों एवं पाठ्यक्रम में इस विषय को शामिल करके शिक्षक द्वारा सही तरीके से क्रियान्वयन करने पर विविधता को दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

4. विविधता को दूर करने हेतु प्रस्तावित शैक्षिक कार्यक्रम– विभिन्न स्तरों पर जैसे– प्राथमिक स्तर, माध्यमिक स्तर, उच्च स्तर पर बालकों के व्यक्तिगत भिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जाना चाहिए।

15.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. गुप्ता रत्ना, मौर्या गीतान्जलि (प्रथम नवीनतम संस्करण), पाठ्यचर्या के सैद्धांतिक आधार, लखनऊ : शैक्षिक पुस्तक प्रकाशन।
2. एन0सी0एफ0 (2005), राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिसर।
3. माथुर, एस0एस0 (2010–2011), शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन।
4. गुप्त, लक्ष्मी नारायन (2008–2009), शिक्षा एवं दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार, इलाहाबाद : न्यू कैलाश प्रकाशन।
5. पाण्डेय, के0पी0 (2005), शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजिक आधार, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन।
6. शुक्ला रमा, सिंह मधुरिमा, (तृतीय नवीनतम संस्करण), शिक्षा के दार्शनिक आधार, लखनऊ : आलोक प्रकाशन।
7. मालवीय राजीव, विजिलिंग फैकेल्टी (2012), शिक्षा के मूल सिद्धांत, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन।
8. सारस्वत मालती, गौतम एस0एल0 (नवीनतम संस्करण), भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्याएं, लखनऊ : आलोक प्रकाशन।

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज – 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

प्रयागराज

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333